बिसरि गई गति-भाँति देह की, सुनति न स्रवननि टेरें।
मिलि जु गईं मानौ पै-पानी, निबरतिं नाहिं निबेरें॥
लागीं संग मतंग मत्त ज्यौं, घिरति न कैसेहुँ घेरें।
सूर प्रेम-आसा-अंकुस जिय, वे नहिं इत-उत हेरें॥

(श्यामसुन्दरको मथुरा) जाते जानकर व्रजकी स्त्रियाँ ऐसी (निस्पन्द होकर) देख रही हैं, मानो चित्रकारद्वारा वे चित्रित की गयी हैं। जो जहाँ थी, वहीं एकटक देखती स्थिर रह गयी और उनके नेत्र हटानेसे भी नहीं हटते। उन्हें अपने शरीरकी गति-विधि भूल गयी और पुकारनेपर भी वे कानोंसे सुन नहीं रही थीं मानो (श्यामके साथ) दूधमें पानीके समान मिल गयी हों, जो पृथक् करनेपर पृथक् नहीं हो सकता। जैसे मतवाले गजराजके समान (उन्मत्त भावसे) साथ लगी हों, (वे अब) किसी प्रकार रोकनेसे रुकती नहीं हैं। सूरदासजी कहते हैं कि जिनके चित्तपर प्रेमकी आशाका अंकुश (नियन्त्रण) है, वे (प्रेमास्पदको छोड़कर) इधर-उधर नहीं देखते।

(५)

अब देखि लै री, स्याम कौ मिलनौ बड़ौ दूरि।
मधुबन चलन कहत हैं सजनी, इन नैननि की मूरि॥
ठाढी चितवैं छाहँ कदम की, उड़त न रथ की धूरि।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, बिरह रह्यौ मन पूरि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) 'अरी सखी! अब (इन्हें) देख ले, श्यामसुन्दरका मिलना बड़ा दूर (बहुत कठिन) हुआ जाता है। सखी! अब इन नेत्रोंकी संजीवनी जड़ी श्रीकृष्ण मथुरा जानेको कहते हैं।' वे सब कदम्बकी छायामें खड़ी देख रही हैं कि (अब तो) रथकी धूलि उड़ती भी नहीं दीखती। स्वामी! तुम्हारे दर्शनके बिना अब हमारा मन वियोग-दुःखसे पूर्ण हो रहा है।'

राग सारंग

(६)

सब मुरझानीं री, चलिवे की सुनत भनक।
गोपी-ग्वाल नैन जल ढारत, गोकुल ह्वै रह्यौ मूँद चनक ॥
बसन मलीन, छीन देखियत तन, एक रहति जो बनी बनक।
जाके हैं पिय कमल-नैन-से, बिछुरे कैसैं रहत दिनक ॥
यह अक्रूर कहाँ तैं आयौ, दाहन लाग्यौ देह कनक।
सूरदास-स्वामी के बिछुरत, घट नहिं रहिहैं प्रान तनक ॥

(मोहनके मथुरा) चलनेकी चर्चा सुनते ही सब (गोपियाँ) म्लान हो (मुरझा) गयीं। गोपी और गोप—सभी नेत्रोंसे अश्रु ढुलका रहे हैं तथा गोकुल भाड़में पड़े चनेके समान हो रहा है। जो (गोपियाँ) पहिले सजी-बजी रहती थी, (आज) उनके वस्त्र मैले हैं और शरीर दुर्बल दिखायी पड़ते हैं, कमलसे लोचनवाले श्यामसुन्दर जिनके प्रियतम हैं, उनसे वियोग होनेपर कुछ दिन भी कैसे रहा जायगा। सूरदासजी कहते हैं—'यह अक्रूर (पता नहीं) कहाँसे आ गया, जो उनकी स्वर्णके समान देहको जलाने लगा। स्वामीका वियोग होनेपर (उनके) शरीरमें प्राण थोड़ी देर भी नहीं रहेंगे।'

राग रामकली

(७)

अनल तैं बिरह-अगिनि अति तातो।
माधौ चलन कहत मधुबन कौं, सुनें तपति अति छाती ॥
न्याइहिं नागरि नारि बिरह-बस, जरतिं दिया ज्यौं बाती।
जे जरि मरीं प्रगट पावक परि, ते तिय अधिक सुहाती ॥
ढारतिं नीर नैन भरि-भरि सब, ब्याकुलता मदमाती।
सूर बिथा सोई पै जानै, स्याम-सुभग-रँग-राती ॥

(एक गोपी कह रही है—'सखी !) वियोगकी अग्नि प्रत्यक्ष अग्निसे भी अधिक उष्ण (गरम) है । श्यामसुन्दर मथुरा जानेको कहते हैं, जिसे सुनकर हृदय अत्यन्त संतप्त होता है ।' व्रजकी नागरी स्त्रियाँ वियोगके वश (ऐसे) जल रही हैं जैसे दीपकमें बत्ती जलती हो—यह उचित ही है । जो (सती) स्त्रियाँ (पतिके साथ) प्रत्यक्ष अग्निमें पड़कर जल मरती हैं, वे अधिक सुखी हैं (इस नित्य वियोगमें जलनेसे वे बहुत अच्छी रहीं) । वे सब प्रेममें उन्मत्त हुई, व्याकुल होकर बार-बार नेत्रोंमें अश्रु भर-भरकर ढुलका रही हैं । सूरदासजी कहते हैं—जो श्यामसुन्दरके प्रेममें रँगी हैं, उनकी पीड़ा वे ही समझ सकती हैं ।

राग आसावरी

(८)

स्याम गएँ सखि प्रान रहैंगे ?
अरस-परस ज्यौं बातैं कहियत, तैसैं बहुरि कहैंगे ?
इंदु-बदन खग नैन हमारे, जानति और चहैंगे ?
बासर-निसि कहुँ होत न न्यारे, बिछुरनि हृदय सहैंगे ?
एक कहौं तुम आगैं बानी, स्याम न जाहिं, रहैंगे ।
सूरदास-प्रभु जसुमति कौं तजि, मथुरा कहा लहैंगे ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! श्यामसुन्दरके चले जानेपर (क्या) हमारे प्राण रह सकेंगे ? (अर्थात् नहीं रहेंगे ।) जैसे इस समय हम परस्पर बातें कर रही हैं वैसे (ही) फिर (बातें) कर सकेंगी ? उस मुखको चन्द्र जाननेवाले हमारे नेत्र-चकोर क्या दूसरे किसी औरको (देखना) चाहेंगे ? जो दिन-रात कहीं (मोहनसे) पृथक् नहीं होते, (क्या) उनका वियोग अब हमारे हृदय सह सकेंगे ! तुम्हारे आगे, बस, एक बात कहती हूँ कि श्यामसुन्दर नहीं जायँगे, यहीं रहेंगे ।

हमारे स्वामी (यहाँ) यशोदा मैयाको छोड़कर मथुरा जाकर क्या पायेंगे ?

राग मलार

(९)

हरि मोसौं गौन की कथा कही।
मन गह्वर मोहि उतर न आयौ, हौं सुनि सोचि रही॥
सुनि सखि! सत्य भाव की बातै, बिरह-बेलि उलही।
करवत चिह्न कहे हरि हम सौं, ते अब होत सही॥
आजु सखी सपने मैं देख्यौ, सागर पालि ढही।
सूरदास-प्रभु तुम्हरौ गवन सुनि, जल ज्यौं जात बही॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामने मुझसे (अपने) चले जानेकी बात कही, उसे सुनकर (मेरा) मन गम्भीर हो गया और मुझसे उत्तर देते नही बना, मैं चिन्तामे पड़ी रह गयी। सखी ! सच्चे भावकी बातें सुन। वियोगरूपी लता अब उमड़कर बढ़ चली है। श्यामसुन्दरने हमसे जो (हाथमें) आरेके समान चिह्न (और उसके फल—वियोग) की बात कही थी, वह अब सच होने जा रही है। सखी ! आज मैंने स्वप्नमें देखा है कि समुद्रका कगार ढह (गिर) पड़ा है। मेरे स्वामी! आपके जानेकी बात सुनकर मैं जलके समान बही जा रही हूँ।

राग मारू

(१०)

बहुत दुख पेयत है इहिं बात।
तुम्ह जु सुनत हौ माधौ, मधुबन सुफलक-सुत सँग जात॥
मनसिज-बिथा दहति दावानल, उपजी है या गात।
सूधैं कहौ तब कैसैं जीहैं, जौ चलिहौ उठि प्रात॥

जौ पै यहै कियौ चाहत है, मीचु-विरह-सर-घात।
सूर स्याम तौ तब कत राखीं, गिरि कर लै दिन सात॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—) माधव ! तुम अक्रूरके साथ मथुरा जा रहे हो, यह बात सुनकर मैं बहुत व्यथित हूँ। काम (प्रेम) की पीडारूपी दावाग्नि इस शरीरमें उत्पन्न हो गयी है और वह इसे जला रही है। सीधे बताओ कि तब हम कैसे जीवित रहेंगी, जब सवेरे ही उठकर तुम स्वयं चल दोगे ? यदि यही करना चाहते थे— वियोगरूपी बाणके आघातसे ही हमें मारना चाहते थे तो श्यामसुन्दर ! उस समय हाथपर सात दिनतक गिरिराज (गोवर्धन) को उठाये रहकर हमे बचाया ही क्यों ?

राग सारंग

(११)

(मेरे) कमलनैन प्राननि तैं प्यारे।
इन्है कहा मधुपुरी पठाऊँ, राम कृष्न दोऊ जन बारे॥
जसुदा कहै सुनौ सुफलक-सुत, मैं इन बहुत दुखनि सौं पारे।
ए कहा जानैं राजसभा कौं, ए गुरुजन विप्रहु न जुहारे॥
मथुरा असुर-समूह बसत है, कर-कृपान, जोधा हत्यारे।
सूरदास ए लरिका दोऊ, इन्ह कब देखे मल्ल-अखारे॥

सूरदासजीके शब्दोमें यशोदाजी कहती है—'ये कमल-समान नेत्रवाले (दोनो) मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, इन्हे (मैं) कैसे मथुरा भेजूँ। (ये) राम-कृष्ण दोनों ही तो बालक है। अक्रूरजी ! सुनो, मैंने बहुत कष्ट उठाकर इनका पालन किया है। ये, भला, राजसभा (के शिष्टाचार) को क्या जानें, इन्होंने तो (अभी) गुरुजनो और ब्राह्मणोको भी प्रणाम करना नही सीखा है। मथुरामें असुरोके समूह रहते है, वे योधा हत्या करनेवाले

हैं तथा हाथोंमें सदा तलवार लिये रहते हैं और ये दोनों लड़के हैं, इन्होने अखाड़ेके पहलवानोको भला कब देखा है।'

(१२)

व्रजवासिनि के सरबस स्याम।
यह अक्रूर क्रूर भयौ हम कौं, जिय के जिय मोहन-बलराम॥
अपनौं लाग लेहु लेखौ करि, जो कछु राज-अंस कौ दाम।
और महर लै संग सिधारौ, नगर कहा लरिकन कौ काम॥
तुम्ह तौ साधु परम उपकारी, सुनियत बड़ौ तिहारौ नाम।
सूरदास-प्रभु पठै मधुपुरी, को जीवै छिन-बासर-जाम॥

(श्रीयशोदाजी कह रही हैं—) श्यामसुन्दर (तो) व्रजवासियोंका सर्वस्व है। ये अक्रूर हमारे लिये क्रूर (कठोर) हो गये हैं। (अरे अक्रूरजी ! ये) बलराम और घनश्याम हमारे प्राणोंके भी प्राण हैं। जो कुछ राजाके करका अवशिष्ट भाग हो, वह हिसाब करके ले लीजिये और व्रजराजको साथ लेकर पधारिये। भला, नगरमे लड़कोंका क्या काम। आप तो साधु पुरुष है, अत्यन्त परोपकारी है, आपका बहुत नाम (सुयश) सुना जाता है। सूरदासके स्वामीको मथुरा भेजकर एक दिन या एक प्रहरकी तो कौन कहे, क्षणभर भी कौन जीवित रह सकता है।

राग मलार

(१३)

सखी री हौं गोपालहिं लागी।
कैसैं जिएँ बदन बिनु देखें, अनुदिन छिन अनुरागी॥
गोकुल कान्ह कमल-दल-लोचन, हरि सबहिनि के प्रान।
कौन न्याव, तुम्ह कहत जो इन कौं मथुरा कौं लै जान॥

तुम्ह अक्रूर बड़े के ढोटा, अति कुलीन, मति-धीर।
बैठत सभा बड़े राजन की, जानत हौ पर-पीर॥
लीजै लाग इहाँ तै अपनौ, जो कछु राज कौ अंस।
नगर बोलि ग्वालन के लरिका, कहा करैगौ कंस॥
मेरैं बलरामै धन माई, माधौ ही सब अंग।
बहुरि सूर हौं कापै माँगौं, पठै पराए संग॥

(सूरदासजीके शब्दोमे यशोदाजी कह रही है—) 'सखी! मेरा प्राण तो गोपालमें ही लगा है। जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण (जिसके प्रति) आसक्त है, वे उसका मुख देखे बिना कैसे जीवित रह सकते है। यह कमलदलके समान नेत्रोवाला श्यामसुन्दर गोकुलमे सबका प्राण है। फिर यह कहाँका न्याय है कि आप इनको मथुरा ले जानेकी बात कहते है। अक्रूरजी! आप बड़ेके पुत्र है, अत्यन्त उच्चकुलमे उत्पन्न हुए हैं, बुद्धिमान् एवं धैर्यवान् है; (यही नही) आप बड़े राजा (कंस) की सभामें बैठते है (राजसभासद् है), अत. दूसरेकी पीडाको समझते है। जो कुछ राजाका (कर) लगता हो, वह अपना भाग यहाँसे ले लीजिये। भला, गोपोके बालकोको नगरमे बुलाकर राजा कस क्या करेगा। सखी! बलराम ही मेरे धन है और माधव ही मेरा पूरा शरीर है। (इन्हें) दूसरेके साथ भेजकर फिर किससे (इन्हे) मांगूंगी ?'

राग रामकली

(१४)

मेरौ माई निधनी कौ धन माधौ।
बारंबार निरखि सुख मानति, तजति नही पल आधौ॥
छिन-छिन परसति अंकम लावति, प्रेम प्रकृत ह्वै बाँधौ।
निसिदिन, चंद-चकोरी अँखियनि, मिटै न दरसन-साधौ॥

करिहै कहा अक्रूर हमारौ, दैहैं प्रान अबाधौ।
सूर स्यामघन हौ नहिं पठवौं, अबै कंस किन्ह बाँधौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही है—) सखी ! मेरे लिये माधव रंकके धनकी तरह प्रिय है। बार-बार उसका मुख देखकर सुखी होती हुई आधे पलको भी उसे छोड़ती नही हूँ। बार-बार उसे गोदमें लेकर हृदयसे लगाती हूँ; (क्योंकि) मेरा प्रेम वास्तविक रूपमे (उसमे) बँध गया है; रात-दिन आँखें (इस) चन्द्रमाको चकोरीके समान देखती रहती हैं; फिर भी देखनेकी लालसा मिटती नही। अक्रूर हमारा क्या कर लेगा ? बिना किसी बाधाके हम प्राण दे देंगी; कंस भले मुझे इसी क्षण क्यों न बाँध ले, पर घनश्यामको मैं (मथुरा) नही भेजूंगी।

राग सोरठ

(१५)

नहिं कोउ स्यामहि राखै जाइ।
सुफलक-सुत बैरी भयौ मोकौं, कहति जसोदा माइ॥
मदनगुपाल बिना घर-आँगन, गोकुल काहि सुहाइ।
गोपी रहीं ठगी-सी ठाढ़ी, कहा ठगौरी लाइ॥
सुंदर स्याम-राम भरि लोचन, बिनु देखें दोउ भाइ।
सूर तिन्हैं लै चले मधुपुरी, हिरदै सूल बढ़ाइ॥

सूरदासजीके शब्दोंमे माता यशोदा कह रही हैं—ऐसा कोई नही है, जो श्यामको जाकर रोक ले ? (हाय !) श्वफल्कका पुत्र (अक्रूर) मेरे लिये शत्रु हो गया। मदनगोपालके बिना यह घर, यह आँगन और यह गोकुल किसे अच्छा लगेगा ? गोपियाँ (भी) मन्त्र-मुग्ध-सी (चुपचाप) खड़ी रह गयीं, पता नही, इन्हे क्या जादू लगा दिया। श्यामसुन्दर और बलराम दोनों भाइयोंको हम नेत्रभर देख (ही) नही पाये थे कि हमारे हृदयमें वेदना बढ़ाकर उनको (अक्रूर) मथुरा ले चला है।

(१६)

जसोदा बार-बार यौं भाखै।
है कोउ ब्रज मैं हितू हमारौ, चलत गुपालै राखै॥
कहा काज मेरे छगन-मगन कौ, नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक-सुत मेरे प्रान हरन कौं, काल-रूप ह्वै आयौ॥
बरु यह गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदि लै मेलै।
इतनौई सुख कमल-नैन मेरी अँखियनि आगै खेलै॥
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अंकम लाऊँ।
तिहिं बिछुरत जौ जियौं करम-बस, तौ हँसि काहि बुलाऊँ॥
कमल-नैन-गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंद की रानी॥

यशोदाजी बार-बार यो कहती है—'व्रजमें ऐसा कोई हमारा हितैषी है, जो जाते हुए गोपालको रोक (रख) ले? राजा (कंस) ने मेरे छोटे-से प्यारे बच्चेको न जाने किस कामसे मथुरा बुलाया है। यह अक्रूर (तो) मेरे प्राण लेनेके लिये कालरूप बनकर आया है। भले ही कंस यह सब (मेरा) गोधन हरण कर ले और मुझे भी (भले ही) पकड़कर कारागारमें डाल दे, किंतु मुझे इतना ही सुख दे दे कि कमललोचन (मोहन) मेरे नेत्रोंके सम्मुख (ही) खेलता रहे। दिनमें मैं उसका मुख देखते हुए जीती रहूँ और रातको उसे गोदमे चिपका लूँ; (क्योंकि) उसका वियोग होनेपर यदि प्रारब्धवश जीवित रही तो हँसकर किसे बुलाऊँगी?' सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार कमललोचन श्यामसुन्दरके गुण गाते-गाते (यशोदा मैयाके) ओठ और मुख सूख गये, (मैं) उन अत्यन्त दुखित नन्दरानीकी दशाका प्रत्यक्ष वर्णन कहाँतक करूँ।

यशोदा-वचन श्रीकृष्णके प्रति

(१७)

(गुपाल राई) किहिं अवलंबन रहिहैं प्रान।
निठुर बचन कठोर कुलिसहुँ तैं, कहत मधुपुरी जान॥
क्रूर नाम, गति क्रूर, क्रूर मति, काहें गोकुल आयौ।
कुटिल कंस नृप बैर जानि कैं, हरि कौं लैन पठायौ॥
जिहिं मुख तात कहत ब्रजपति सौं, मोहि कहत है माइ।
तिहिं मुख चलन सुनत जीवति हौं, विधि सौं कहा बसाइ॥
को कर-कमल मथानी धरिहै, को माखन अरि खैहै;
बरषत मेघ बहुरि ब्रज ऊपर, को गिरिबर कर लैहै॥
हौं बलि-बलि इन्ह चरन-कमल की, छाई रहौ कन्हाई।
सूरदास अवलोकि जसोदा, धरनि परी मुरझाई॥

(यशोदाजी कहती है—) 'मेरे राजा गोपाल ! मेरे प्राण (तुम्हारे विना) किसके सहारे रहेंगे, वज्रकी अपेक्षा भी निर्मम एवं कठोर मथुरा जानेकी बात निष्ठुर बनकर (क्यों) कहते हो। इसका तो नाम (अक्रूर नहीं) क्रूर है, इसकी गति क्रूर (कठोर) है और बुद्धि भी क्रूर है, यह किसलिये गोकुल आया ? (अवश्य ही) कुटिल राजा कंसने (हमसे) वैर मानकर श्यामसुन्दरको लेनेके लिये (इसे) भेजा है। जिस मुखसे व्रजराज (नंदराय) को (श्यामसुन्दर) पिता और मुझे मैया कहते हैं, (इनके) उसी मुखसे (मथुरा) जानेकी बात सुनकर भी मैं (आज) जीवित हूँ ! (क्या किया जाय) विधातासे क्या वश चल सकता है। अब कौन अपने कमल-समान हाथोसे मथानी (दही विलोनेका भाजन) पकड़ेगा, कौन हठ करके मक्खन खायगा और (फिर) जब मेघ व्रजके ऊपर . . . कौन गिरिराज (गोवर्धन) को

उठायेगा ? कन्हैया ! मैं तुम्हारे इन चरण-कमलोपर बार-बार बलिहारी जाती हूँ, तुम यहीं रहो।' सूरदासजी कहते हैं—(यह कहती हुई) यशोदाजी (मोहनको) देखती हुई पृथ्वीपर मूर्छित होकर गिर पड़ी।

(१८)

मोहन ! इतौ मोह चित धरिऐ।
जननी दुखित जानि कैं, कबहूँ मथुरा गवन न करिऐ ॥
यह अक्रूर क्रूर कृत रचि कै, तुम्हहि लैन है आयौ।
तिरछे भए करम कृत पहिले, बिधि यह ठाट बनायौ ॥
बार-बार जननी कहि मोसौं, माखन माँगत जौन।
सूर तिन्है लैबे कौं आए, करिहैं सूनौ भौन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कहती हैं—) मोहन ! चित्तमें इतना मोह (स्नेह) तो रखो कि (मुझ) माताको दुःखित समझकर कभी मथुरा न जाना। यह अक्रूर क्रूर (निष्ठुर) योजना बनाकर तुम्हें लेने आया है ! (आज) विधाताने यह विधान (कैसा) बना दिया कि जो (मेरे) पूर्वकृत कर्म अनुकूल थे, वही टेढ़े हो गये। सूरदासजी ! जो बार-बार मुझसे मैया-मैया कहकर मक्खन माँगता था, उसीको ये अक्रूर लेने आये हैं, मेरे घरको ये सूना बना देंगे।

राग बिहागरौ

(१९)

जसुमति अतिहीं भई बिहाल।
सुफलक-सुत यह तुमहि बूझियत, हरत हमारे बाल !
ए दोउ भैया जीवन हमरे, कहति रोहिनी रोइ।
धरनी गिरति, उठति अति ब्याकुल, कहि राखत नहिं कोइ ॥

निठुर भए जब तैं यह आयौ, घरहू आवत नाहिं।
सूर कहा नृप पास तुम्हारौ, हम तुम्ह बिनु मरि जाहिं॥

सूरदासजी कहते हैं—यशोदाजी (श्यामसुन्दरके जानेकी बात सुनकर) अत्यन्त व्याकुल हो गयी और 'अक्रूरजी ! आपके लिये (यह क्या) उचित है कि जो आप हमारे बालकोंको हरण कर (ले जा) रहे है ?' 'ये दोनों भाई (तो) हमारे जीवन हैं।' इत्यादि कहकर रोहिणी माता भी रोने लगी। वे पृथ्वीपर गिर पड़ती है, फिर अत्यन्त व्याकुल होकर उठती हैं और कहती है—'कोई (श्यामसुन्दरको) रोकता नही। (हाय !) जबसे यह (अक्रूर) आया है, तबसे वे भी निष्ठुर हो गये है। (दोनों भाई) घर भी नहीं आते, अरे ! राजाके पास तुम्हारा क्या काम ? हम तुम्हारे बिना मर जायँगी।'

राग सोरठ

(२०)

यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।
कहा अक्रूर ठगौरी लाई, लिऐं जात दोउ भ्राता॥
बिरध समयकी हरत लकुटिया, पाप-पुन्न-डर नाहीं।
कछू नफा है तुम कौ यासैं, सोचौ धौं मन माहीं॥
नाम सुनत अक्रूर तुम्हारौ, क्रूर भए हौ आइ।
सूर नंद-घरनी अति व्याकुल, ऐसैंहि रैनि बिहाइ॥

सूरदासजी कहते हैं—यह (श्यामसुन्दरके जानेकी बात) सुनकर माता लड़खडाकर पृथ्वीपर गिर पडी (और कहने लगी—) 'पता नही (इन) अक्रूरजीने क्या जादू कर दिया जो दोनों भाइयोंको (वशमे करके) लिये जाते हैं। (हमारी) वृद्धावस्थाकी लठिया (सहारा) छीननेमें (इन्हे) पाप-पुण्यका भी भय नही है। अरे ! अपने मनमे (कुछ तो) सोचो कि इसमें तुमको कुछ लाभ है ? तुम्हारा नाम हम अक्रूर सुनती है, पर यहाँ आकर

(तो तुम) क्रूर हो गये हो।' नन्दरानीने (ऐसे ही) अत्यन्त व्याकुल हो (विलाप करते-करते) वह रात्रि विता दी।

गोपिका-वचन परस्पर

राग रामकली

(२१)

सुने हैं स्याम मधुपुरी जात।
सकुचन कहि न सकति काहू सौं, गुप्त हृदयकी वात॥
संकित वचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।
नींद न परै, घटै नहिं रजनी, कब उठि देखौं प्रात॥
नंद-नँदन तौ ऐसे लागे, ज्यौं जल पुरइनि-पात।
सूर स्याम सँग तैं विछुरत हैं, कब ऐहैं कुसलात॥

(एक गोपी कह रही है—सखी !) सुना है श्यामसुन्दर मथुरा जा रहे है, (मैं) संकोचके मारे (अपने) हृदयकी गुप्त वात किसीसे कह नहीं सकती। आधी रातको ही कोई शङ्काभरी (उनके जानेकी) भविष्यकी वात जो कह गया सो न तो नींद आती है और न रात ही (शीघ्र) समाप्त होती है, कब सवेरा होनेपर उठकर (मोहनको) देखूँगी। (मुझे) नन्दनन्दन तो ऐसे (तटस्थ) लगते हैं जैसे (जलमें) कमलके पत्ते। सूरदासजी ! अब श्यामसुन्दर हमारे साथसे विछुड़ते हैं, कब कुशलपूर्वक लौट आयेंगे ?

(२२)

चलन कौं कहियत हैं हरि आज।
अबहीं सखी, देखि आई है, करत गमन कौ साज॥
कोउ इक कंस कपट करि पठयौ, कछु सँदेस दै हाथ।
सु-तौ हमारौ लिऐं जात है, सरवस अपने साथ॥

सो यह सूल नाहिं सुनि सजनी ! सहिऐ धरि जिय लाज ।
धीरज जात, चलौ अबहीं मिलि, दूरि गऐं कह काज ॥
छाँड़ौ जग-जीवन की आसा, अरु गुरुजन की कानि ।
बिनती कमल-नैन सौं करिऐ, सूर समै पहिचानि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) कहा जाता है कि श्यामसुन्दर आज (मथुरा) जानेवाले है, अभी (एक) सखी उन्हे जानेकी तैयारी करते देख आयी है । कंसने कपट करके किसी एक व्यक्तिको उसके हाथ कुछ संदेश देकर भेजा है, सो वह तो अपने साथ हमारा सर्वस्व ही लिये जा रहा है । सखी ! सुनो, सो यह कष्ट चित्तमे लज्जा रखकर नही सहन कर लेना चाहिये । मेरा धैर्य छूट रहा है । चलो अभी मिलें, उनके दूर चले जानेपर क्या काम होगा । अब जगत्मे जीनेकी आशा और गुरुजनोंका संकोच छोड़ दो । (अब तो) समयको पहिचान (समझ) कर कमललोचन (श्यामसुन्दर) से ही (न जानेकी) प्रार्थना करनी चाहिये ।

राग रामकली

(२३)

चलत हरि, धिक जु रहत ए प्रान ।
कहँ वह सुख, अब सहौं दुसह दुख, उर करि कुलिस समान ॥
कहँ वह कंठ स्यामसुंदर भुज, करति अधर-रस पान ।
अँचवत नैन चकोर सुधा-बिधु, देखत मुख छबि आन ॥
जाकौ जग उपहास कियौ तब, छाड़्यौ सब अभिमान ।
सूर सुनिधि हम तैं है बिछुरत, कठिन है करम-निदान ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामके चल देनेपर यदि प्राण रह जायें तो इन्हे धिक्कार है । कहाँ वह (उनके साथका) सुख और कहाँ अब हृदयको वज्रके समान बनाकर असहनीय दुःख सहना । कहाँ हम अपने गलेमें श्यामसुन्दरकी भुजाओको रखकर उनके

अधरामृतका पान करती थीं और उस मुखचन्द्रकी अलौकिक शोभा देखते हुए (हमारे) नेत्ररूपी चकोर उस (चन्द्रमा) के अमृतको पीते थे। तब जिसके कारण संसारके लोगोने हमारी हँसी उड़ायी थी तथा हमने भी सब अभिमान छोड़ दिया था, (आज) वही उत्तम सम्पत्ति हमसे बिछुड़ रही है, कर्म (प्रारब्ध) का भोग कठिन है।

राग कल्यान

(२४)

स्याम चलन चहत कह्यौ सखी एक आई।
बल-मोहन बैठे रथ, सुफलक-सुत चढ़न चहत, यह सुनि कैं भइ चकित, बिरह-दव लगाई॥
घुकि-घुकि सब धरनि परीं, ज्वाला-झर लता गिरी, मनौ तुरत जलद बरपि सुरति नीर परसीं।
आईं सब नंद-द्वार, बैठे रथ दोउ कुमार, जसुमति लोटति भुव पै, निठुर रूप दरसीं॥
कौन पिता, कौन मात, आपु ब्रह्म जगत धात, राख्यौ नहिं कछू नात, नैकु चित्त माहीं।
आतुर अक्रूर चढ़े, रसनाँ हरि नाम रढ़े, सूरज प्रभु कोमल तन, देखि चैन नाहीं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) श्यामसुन्दर (आज मथुरा) जाना चाहते हैं, (यह अभी) एक सखीने आकर कहा है (और कहा है—) मोहन और बलराम (जानेके लिये) रथपर बैठ गये हैं तथा अक्रूर (उसपर) चढ़ना चाहते हैं। यह सुनकर (वह गोपी) विरहवश (इस प्रकार) स्तम्भित रह गयी (मानो किसीने उसे) आग लगा दी हो। (और जो वहाँ थी, वे इस प्रकार) चक्कर खा-खाकर धरती (पृथ्वी) पर गिर पड़ी मानो आगकी लपटसे (झुलसकर) लताएँ

गिर पड़ी हों। फिर क्या था, शीघ्र ही मेघने बरसकर सुरति (ध्यान) के जलसे उनका स्पर्श कराया। (अब वे सब-की-सब उठकर) श्रीनन्दजीके द्वारपर आयीं और उन्होंने देखा दोनो कुमार रथपर बैठे हैं और यशोदाजी पृथ्वीपर लोट रही हैं। इस प्रकार श्यामसुन्दरका निष्ठुर रूप उन्होंने देखा। (वे देखकर परस्पर कहने लगीं—अरे! इनके) कौन पिता और कौन माता है, सम्पूर्ण सृष्टिके रचनेवाले ब्रह्मा तो ये ही हैं (इसीलिये इन्होंने) किसीके साथ किसी सम्बन्धकी स्मृति नहीं रखी, (इतनेमें ही) अक्रूर भी वाणीसे श्रीभगवन्नाम लेते हुए रथपर शीघ्रतासे चढ बैठे। प्रभुके कोमल शरीरको देखकर (वे गोपियाँ) बेचैन हो रही हैं।

राग सारंग

(२५)

बिनु परवै उपराग आज हरि, तुम्ह है चलन कह्यौ।
को जानै उहिं राहु रमापति! कत ह्वै सोध लह्यौ॥
वह तकि बीच नीच नैननि मिलि, अंजन रूप रह्यौ।
बिरह-संधि बल पाइ मनौ हठि, है तिय-बदन गह्यौ॥
दुसह दसन मनु धरत स्रमित अति, परस परत न सह्यौ।
देखौ देव! अमृत अंतर तैं, ऊपर जात बह्यौ॥
अब यह ससि ऐसौ लागत, ज्यौं बिनु माखनहिं मह्यौ।
सूर सकल रसनिधि दरसन बिन, मुख-छबि अधिक दह्यौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) श्यामसुन्दर! तुमने जो जानेकी बात कही सो यह (तो) विना पर्व (पूर्णिमा) के ही (आज) ग्रहण लग गया। हे रमाकान्त! पता नही, वह राहु कहाँसे (इस चन्द्रमाका) पता पा गया। (जान पड़ता है) वह नीच (अपना अवसर) [illegible] के बीच अंजनके साथ मिलकर [illegible]या, सो (उस [illegible] [illegible]मा और प्रतिपदाको)

पाकर मानो हठपूर्वक गोपियोके मुखचन्द्रको ग्रस लिया। (और वह) अत्यन्त थका होनेपर भी अपने असहनीय दाँत (हमारे मुखोंपर) रख रहा है जिसके कारण उसका स्पर्श सहा नही जाता। इसीसे, हे देव! देखो, (मुखचन्द्रके) भीतरसे स्नेहामृत (अश्रुरूपमे) ऊपर वहा जा रहा है। अव यह चन्द्रमा ऐसा निस्तेज, फीका लगता है जैसे विना मक्खनका मट्ठा हो। समस्त रसोके निधान आपके दर्शनके विना (इन गोपियोंके) मुखकी शोभाने इन्हे अधिक जलाया (दुखी किया) है।

राग धनाश्री

(२६)

हरि की प्रीति उर माहिं करकै।
आइ अक्रूर चले लै स्यामहि, हित नाहीं कोउ हरकै॥
कंचन कौ रथ आगैं कीन्हौ, हरहि चढ़ाए वर कै।
सूरदास-प्रभु सुख के दाता, गोकुल चले उजरि कै॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी!) श्यामकी प्रीति हृदयमें चुभ रही है। अक्रूर आकर श्यामको ले जा रहे हैं; किंतु ऐसा कोई हमारा हितैषी नही है, जो उन्हे (जानेसे) रोके। इस अक्रूरने सोनेका रथ आगे लाकर खडा कर दिया और वलपूर्वक श्यामको उसपर चढ़ा लिया। सुखके दाता हमारे स्वामी (इस प्रकार) गोकुलको उजाड़कर चले जा रहे हैं।

राग सारंग

(२७)

सब ब्रज की सोभा स्याम।
हरि के चलत भई हम ऐसी, मनैं कुसुम निरमायल दाम॥
देखियत हौ तुम क्रूर विपम से, सुन्यौ सूर अक्रूरहि नाम।
बिचरत हौ न आन गृह-गृह क्यौं, सिसु लाइक नृप कौ कह काम॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) श्याम-सुन्दर पूरे व्रजकी शोभा हैं। मोहनके जाते ही हम ऐसी हो गयीं, जैसे निर्माल्य (देवतापरसे उतारकर फेंकी गयी) पुष्पोंकी मालामें लगा धागा। (अरे अक्रूर !) तुम्हारा नाम तो अक्रूर सुना था, किन्तु तुम तो अत्यन्त क्रूर एवं भयंकर-से दिखायी देते हो। दूसरोंके घरोंमें क्यों नहीं जाते ? राजाको इन बालकोंके योग्य ऐसा कौन-सा काम है (जिसके लिये उसने श्याम-बलरामको मथुरा बुला भेजा है।) ?

यशोदा-विलाप

राग बिलावल

(२८)

गोपालहि राखहु मधुबन जात।
लाज किएँ कछु काज न सरिहै, पल बीतै जुग सात॥
सुफलक-सुत के सँग न दीजिऐ, सुनौ हमारी बात।
गोकुल की सोभा सब जैहै, बिछुरत नँद के तात॥
रथ-आरूढ़ होत बल-केसव, ह्वै आयौ परभात।
सूरदास कछु बोल न आयौ, प्रेम पुलक सब गात॥

(यशोदाजी कह रही हैं—कोई) 'मथुरा जाते हुए (मेरे) गोपालको रोक लो। (इस समय) लज्जा करनेसे कुछ काम नहीं बनेगा; (क्योंकि यह) क्षण सात युग (के समान) बीत रहा है। हमारी बात सुनो ! अक्रूरके साथ इन्हें मत (जाने) दो, नन्दके लालका वियोग होते ही गोकुलकी सारी शोभा चली जायगी।' श्याम और बलरामके रथपर चढ़नेके साथ ही सवेरा हो आया। सूरदासजी कहते हैं—(श्रीयशोदाजीसे इसके आगे) कुछ बोला नहीं गया और (उनका) सम्पूर्ण शरीर प्रेमसे रोमाञ्चित हो गया।

(२९)

मोहन नैकु बदन तन हेरौ।
राखौ मोहि नात जननी कौ, मदनगुपाल लाल मुख फेरौ॥

पाछै चढ़ौ बिमान मनोहर, बहुरौ, ब्रज में होत अँधेरौ।
बिछुरन भेंट देहु ठाढ़े ह्वै, निरखौ घोष जनम कौ खेरौ॥
समदौ सखा स्याम यह कहि-कहि, अपने गाइ ग्वाल सब घेरौ।
गए न प्रान सूर ता औसर, नंद जतन करि रहे घनेरौ॥

(माता कह रही हैं—) मोहन ! तनिक मेरे मुखकी ओर तो देखो, मेरा तुम्हारे साथ जो माताका सम्बन्ध है, उसकी रक्षा करो। मदनगोपाल लाल ! (मेरी ओर) तनिक मुख तो घुमा लो, सुन्दर रथपर पीछे चढ़ना। देखो (तुम्हारे बिना) व्रजमें अँधेरा हो रहा है, (अत) लौट आओ। खड़े होकर वियोगके समयकी भेंट (अंकमाल) दो और अपने जन्मके ग्राम इस व्रजको देखो। श्यामसुन्दर ! 'गोपकुमारो ! अब सब अपनी-अपनी गायें घेर लो'—यह कहकर उन्हे गायें सँभला दो। सूरदासजी कहते है कि उस समय (माताके) प्राण नन्दजीके बहुत प्रयत्न करने (समझाने) के कारण नही गये।

राग नट

(३०)

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ीं।
हरि के चलत देखिअत ऐसी, मनौं चित्र लिखि काढ़ी॥
सूखे बदन, स्रवत नैनन तैं जल-धारा उर बाढ़ी।
कंधनि बाँह धरें चितवति मनु, द्रुमनि बेलि दव-दाढ़ी॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत, जैसैं दूध बिनु साढी।
सूरदास अक्रूर कृपा तै, सही बिपति तन गाढी॥

जो (गोपियाँ) जहाँ थी, वही खड़ी रह गयी। वे श्यामसुन्दरके चलते समय ऐसी दिखायी पडती थी, मानो चित्रमे चित्रित की गयी हों। उनके मुख सूख गये, नेत्रोसे गिरती हुई प्रबल अश्रुधारा हृदयतक बह चली है। एक दूसरीके कंधोपर भुजा रखे (इस भाँति) देख रही है मानो वृक्षपर फैली हुई लताएँ दावाग्निसे झुलस गयी हो। अक्रूरने इन्हें

इस प्रकार नीरस बनाकर छोड़ दिया है, जैसे मलाईसे रहित दूध। सूरदासजी कहते हैं कि अक्रूरकी कृपा (निष्ठुरता) से (वे) अपने शरीरपर (यह) महान् विपत्ति सह रही हैं।

राग सारंग

(३१)

चलतहुँ फेरि न चितए लाल।
नीकैं करि हरि-मुख न बिलोक्यौ, यहै रह्यौ उर साल॥
रथ बैठे दूरहि तैं देखे, अंबुज-नैन बिसाल।
मीड़त हाथ सकल गोकुल जन, बिरह-बिकल बेहाल॥
लोचन पूरि रहे जल महियाँ, दृष्टि परी जिहिं काल।
सूरदास-प्रभु फिरि नहिं चितए, अंबुज-नैन रसाल॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे माता कह रही है—सखी !) चलते समय लालने लौटकर देखा भी नहीं; हृदयमे यह वेदना रह गयी कि श्यामका मुख भली प्रकार देख न पायी। उन कमलके समान विशाल नेत्रवालेको रथपर बैठे दूरसे ही देखा। गोकुलके सभी लोग वियोगसे व्याकुल एवं बेहाल होकर हाथ मल रहे (पछता रहे) हैं। जिस समय (उनपर मेरी) दृष्टि पड़ी, उस समय (मेरे) नेत्रोमें जल भर आया, इससे कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले श्यामसुन्दरको फिर देखा नहीं जा सका।

राग बिलावल

(३२)

बिछुरत श्रीब्रजराज आज, इनि नैननि की परतीति गई।
उड़ि न गए हरि संग तबहिं तैं, ह्वै न गए सखि स्याममई॥
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछुवै न भई।
साँचे क्रूर कुटिल ए लोचन, बृथा मीन-छबि छीन लई॥

अब काहें जल मोचत, सोचत, समौ गए तैं सूल नई।
सूरदास याही तै जड़ भए, पलकनिहूँ हठि दगा दई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) श्रीव्रजराज-का वियोग होनेपर आज इन नेत्रोंका भी विश्वास चला गया। सखी ! ये तत्काल श्यामसुन्दरके साथ उडकर नही गये और न श्याममय ही हुए। (ये) सौन्दर्यके रसिक एवं लोभी कहे जाते थे, किंतु इस ख्यातिके अनुरूप कुछ काम इनसे नही हो सका। सचमुच ये नेत्र क्रूर तथा कुटिल है, व्यर्थ ही इन्होंने मछलियोकी शोभा छीनी है। अब क्यो चिन्ता करते और आँसू गिराते है, अवसर बीत जानेपर नवीन व्यथा होती ही है। इन पलकोंने भी हठपूर्वक (हमें) धोखा दिया है। इसीलिये तो ये जड हो गयी है।

राग धनाश्री

(३३)

केतिक दूरि गयौ रथ, माई ?
नंद-नँदन के चलत सखी हौं, हरि कौं मिलन न पाई॥
एक दिवस हौ द्वार नंद के, नाहिं रहति बिन आई।
आज बिधाता मति मेरी हरी, भवन-काज बिरमाई॥
जब हरि ऐसौ साज करत हे, काहु न बात चलाई।
ब्रज नहीं बसत बिमुख भइ हरि सौं, सूल न उर तैं जाई॥
मोवत ही सुपने की संपति, रही जियहिं सुखदाई।
सूरदास-प्रभु बिन ब्रज बसिबौ, एकौ पल न सुहाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! रथ कितनी दूर गया होगा ? (हाय !) नन्दनन्दन श्यामसुन्दरसे चलते समय मैं मिल भी नही सकी। (वैसे तो) मैं नन्दरायजीके द्वारपर आये बिना एक दिन भी नही रहती थी; किन्तु आज ब्रह्माने मेरी बुद्धि हरण कर ली, मैं घरके काममे रुकी रह गयी। जब श्यामसुन्दर इस प्रकारकी (यहाँसे जानेकी)

तैयारी कर रहे थे, तब (मुझसे) किसीने भी चर्चा नहीं की (और इस प्रकार) व्रजमे रहती हुई भी मै मोहनसे विमुख हो गयी—यह वेदना हृदयसे जाती नही है। जैसे सोते समय स्वप्नमें मिली सम्पत्ति (स्वप्नमे ही) चित्तके लिये सुखदायक होती है (जागनेपर नही)। अतः अब सूरदासके स्वामीके विना व्रजमे रहना एक पल भी अच्छा नहीं लगता।

राग मलार

(३४)

सखी री, वह देखौ रथ जात।

कमल-नैन काँधे पै, न्यारौ पीत बसन फैहरात॥

लए जात जब ओट अटनि की, बचन-हीन कृत गात।

छिति परकंप, कनक-कदली कहँ, मानौ पवन बिहात॥

मधु छँड़ाइ सुफलक-सुत लै गए, ज्यौं माखी बिललात।

सूर सुरूप नीर-दरसन बिन, मनहुँ मीन जलजात॥

(एक दूसरी गोपी कह रही है—) 'सखी ! देखो, वह रथ जा रहा है, कमललोचन श्यामसुन्दरके कधेका पीताम्बर अलौकिक छटासे उड़ रहा है। जब अटारियोकी आड़में (अक्रूर) रथ ले जाते हैं, तब (गोपियोंका) शरीर वाणीरहित बन जाता है (अर्थात् वे बोल नहीं पाती)। भूमिपर वे ऐसी काँपने लगती है मानो सोनेके बने केलेको वायु हिला रहा हो। अक्रूर (उनके) मधु (माधुर्यरूप श्याम) को छीनकर ले गये और वे (सब गोपियाँ) मधुमक्खीके समान व्याकुल हो रही है। सूरदासजी कहते है—अब (उनकी ऐसी दशा है) मानो उस सुन्दररूप-रूपी जलके दर्शनके बिना मछली या कमल हो।

राग सारंग

(३५)

पाछैं ही चितवत मेरे लोचन, आगें परत न पाय।

मन लै चली माधुरी मूरति, कहा करौ ब्रज जाय॥

मथनेमे ही भूली रही। अब नव-निधियोंको लेकर भी क्या किया जाय, वह (प्राणोंका) दूत तो दूर चल गया। उस समय सभी अज्ञान (मूर्ख) हो गयी थी, किसीने भी रथको पकड़ा नही। अपने स्वामीसे व्यर्थ लज्जा करके (हमने) असहनीय वियोग (स्वयं) प्राप्त किया है।

राग नट

(३७)

तब न विचारी ही यह बात।
चलत न फैंट गही मोहन की, अब ठाढ़ी पछितात ॥
निरखि-निरखि मुख रही मौन ह्वै, थकित भई पल-पात।
जब रथ भयौ अदृश्य अगोचर, लोचन अति अकुलात ॥
सबै अजान भई उहिं औसर, ढिगहिं जसोमति मात।
सूरदास स्वामी के बिछुरें, कौड़ी भर न बिकात ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! तब यह बात मेरे ध्यानमे नही आयी। चलते समय तो मोहनका फेंटा पकड़ा नहीं (उन्हे हठ करके रोका नही) और अब खडी-खडी पश्चात्ताप कर रही हूँ। उस समय बार-बार उनका मुख देखकर चुप हो रही थी, पलकोंका गिरना भी रुक गया था और जब (उनका) रथ नेत्रोंसे ओझल—अदृश्य हो गया, तब नेत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहे है। उस समय सभी अज्ञान हो गयी थी, माता यशोदा भी पास ही थी (फिर भी उन्हे किसीने रोका नही)। अब स्वामीसे वियोग हो जानेपर हममेसे कोई कौड़ीके मूल्य भी नही बिकेगा।

राग सारंग

(३८)

अब वे बातैं हीं ह्वाँ रहीं।
मोहन मुख मुसकाइ चलत कछु, काहूँ नाहिं कही ॥
सखि, सुलाज बस समुझि परसपर, सनमुख सूल सही।

अब वे सालत हैं उर महियाँ, कैसैंहुँ कढ़ति नहीं ॥
ज्यौं-त्यौं सल्य करन कौं सजनी, काहें फिरति बही।
हरि चुंबक जहँ मिलैं सूर-प्रभु मो लै जाहु तहीं ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) अब वे बातें भर (उनकी स्मृतिमात्र) यहाँ रह गयीं, जब श्याम अपने श्रीमुखसे तनिक मुस्कराकर जाने लगे, तब किसीने कुछ नही कहा। सखी ! उत्तम लज्जाके वश होकर (सभीने) परस्पर समझकर सम्मुख ही यह शूल सह लिया। अब वह (शूल) हृदयमें पीडा दे रहा है और किसी प्रकार निकलता ही नही। सखी ! जिस-तिस प्रकारसे शल्य-चिकित्सा करानेके लिये क्यों (इधर-उधर) भटकती फिरती है ? हमारे स्वामी श्यामसुन्दर-रूपी चुम्बक (जो उस शूलको खींच लें) जहाँ मिलें, मुझे वही ले चल।

राग नट

(३९)

मेरी बज्र की छाती किन बिदरि-बिदरि जाति।
हरिहिं चलत चितवति मग, ठाढ़ी पछिताति ॥
बिद्यमान बिरह-सूल, उर मै जु समाति।
प्राननाथ बिछुरे सखि, जीवत न लजाति ॥
ज्यौं ठग निधि हरत, रंच गुर दै किहुँ भाँति।
इमि फिरि मुसकानि सूर, मनसा गइ माति ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मेरा हृदय वज्रका है—(नही तो) वह टुकडे-टुकडे होकर फट क्यो नही जाता ? श्यामसुन्दरके जाते समय (तो) मैं मार्गमे खड़ी देखती रही और अब (खड़ी) पश्चात्ताप कर रही हूँ। वियोगका शूल हृदयमे है और (वह) गहरा धँसता ही जाता है। सखी ! प्राणनाथका वियोग होनेपर भी जीवित रहनेमें मुझे (आज) लज्जा नहीं आती। जैसे ठग किसी प्रकार किसी

बटाऊके हाथमें तनिक-सा गुड़ देकर (उसकी) सम्पत्ति छीन लेता है, उसी प्रकार मोहनका घूमकर मुस्कराना था जिससे मैं (उस समय) मनसे मतवाली हो गयी ।

राग गौरी

(४०)

आज रैनि नहिं नीद परी ।
जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोबिंद हरी ॥
वह चितवन, वह रथकी बैठन, जब अक्रूर की बाँह गही ।
चितवति रही ठगी-सी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु काम दही ॥
इते मान व्याकुल भइ सजनी, आरज-पंथहुँ तैं बिडरी ।
सूरदास-प्रभु जहाँ सिधारे, कितिक दूर मथुरा नगरी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) आज रातभर मुझे नींद नहीं आयी, जागते हुए आकाशके तारे गिनती और जीभसे 'गोविन्द हरि' (यह नाम) रटती रही । (मोहनकी) वह देखनेकी भङ्गी, वह रथपर बैठनेका उनका ढंग जब कि उन्होने अक्रूरका हाथ (रथपर चढ़नेके लिये) पकड़ा, (वह सब मैं) मन्त्रमुग्ध-सी खड़ी देखती रही और कामदेवसे जलायी जानेके कारण कुछ कह नहीं सकी । सखी ! (मैं) इतनेमें ही व्याकुल हो गयी और आर्यपथसे भी भ्रष्ट हो गयी (अपने स्वामीके साथ न जा सकी) । हमारे स्वामी जहाँ गये हैं, वह मथुरा नगरी (यहाँसे) कितनी दूर है ?

राग सारंग

(४१)

हरि बिछुरत फाट्यौ न हियौ ।
भयौ कठोर वज्र तैं भारी, रहि कैं पापी कहा कियौ ॥
घोर हलाहल सुनि री सजनी, तिहि अवसर काहें न पियौ ।
मन सुधि गई सँभार न तन की, पूरौ दाँव अक्रूर दियौ ॥

कछु न सुहाइ गई निधि जब तै, भवन-काज कौ नेम लियौ।
निसि-दिन रटत सूर के प्रभु बिन मरिबौ, तऊ न जात जियौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दर-का वियोग होनेपर (यह मेरा) हृदय फट नही गया, यह तो वज्रसे भी अधिक कठोर हो गया है। (किंतु) रहकर ही इस पापीने क्या किया ? सखी ! सुन, (तू कह सकती है कि) उस समय मैंने हलाहल विष घोलकर क्यो नही पी लिया। किन्तु (बात यह हुई कि मैं) मनसे (उस समय) अपनी सुधि (ही) भूल गयी, (जिससे) शरीरकी सम्हाल नही रही। इसीसे अक्रूरने पूरा दाव दिया (पूरी चोट की)। जबसे वह श्यामसुन्दर-रूपी) सम्पत्ति गयी है, तबसे कुछ अच्छा नही लगता। घरके काम करनेका नियम बना लिया है। रात-दिन स्वामीके बिना मृत्युके लिये रट लगाये हूँ; पर मृत्यु नही आती और न जीवित ही रहा जाता है।

राग नट

(४२)

हरि बिछुरत प्रान निलज्ज रहे री।
पिय-समीप-सुख की सुधि आवै, सूल सरीर न जात सहे री॥
निसि-बासर ठाढ़ी मग जोवति, ए दुख हम न सुने न चहे री।
गमन करत देखन नहिं पाए, नैन नीर भरि बहसि बहे री॥
वे बातें बसि रहीं हिए में, उलटि अवधि के बचन कहे री।
सूर स्याम बिन परब बिरह बस, मानौ रबि-ससि राहु गहे री॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दर-का वियोग होनेपर भी ये निर्लज्ज प्राण रह गये है। प्रियतमके पास रहनेके आनन्दका जब स्मरण आता है, तब यह वेदना शरीरसे सही नही जाती। रात-दिन खड़ी (उनका) मार्ग देखती हूँ। ये दु:ख हमने न सुने थे और न देखे थे। जाते समय भी (मोहनको) देख नही पायी; क्योकि

आँखोंमे आँसू भर आये और मानो होड़ बदकर बह चले। (अब) लौटकर (अपना मुख हमारी ओर घुमाकर) अवधि बीतनेपर वापस आनेकी जो बात (श्यामसुन्दरने) कही थी, वही बात हृदयमे बस रही है। श्यामसुन्दरके विना हम ऐसी वियोगके वशीभूत हो रही है मानो बिना र्व (अमावस्या-पूर्णिमा) के ही राहुने सूर्य तथा चन्द्रमाको ग्रस लिया हो।

राग अड़ानो

(४३)

सुंदर वदन सुख-सदन स्याम कौ, निरखि नयन-मन थाक्यौ।
तारक इन्ह बीथिनि ह्वै निकसे, उझकि झरोखे झाँक्यौ॥
उन्ह इक कछू चतुरई कीन्ही, गैंद उछारि जु ताक्यौ।
मारौं लाज भई मोहि वैरिनि, मैं गँवारि मुख ढाक्यौ॥
कछु करि गए तनिक चितवनि सें, रहत प्रान मद छाक्यौ।
सूरदास-प्रभु सरवस लै गए, हँसत-हँसत रथ हाँक्यौ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) श्यामसुन्दरके सुखके निवास सुन्दर मुखको देखकर मेरे नेत्र एवं मन विमुग्ध हो गये हैं। एक बार वे इस गलीसे निकले थे कि मैंने खिडकीमेसे सिर बाहर निकालकर (उनकी ओर) झाँका (देखा)। उन्होने भी कुछ थोड़ी चतुराई की और गेंद उछालकर (मेरी ओर) देखा। मै इस लज्जाको जला दूँ, वह (उस समय) मेरे लिये शत्रु हो गयी, जो मुझ मूर्खाने मुख ढक लिया। किंतु तनिक देखनेमें ही वे कुछ ऐसा कर गये कि मेरे प्राण मद (प्रेम) से छके (परितृप्त) रहते है। वे मेरे स्वामी मेरा सर्वस्व ले गये और हँसते-हँसते (उन्होने) रथ हांक (चला) दिया।*

---

* श्रीसूरका यह पद वल्लभसम्प्रदायमे सुन्दरताकी चोटीका माना जाता है और रथ-यात्रा (आषाढ़ शुक्ला—प्रतिपदा) के दिन शयन-समय गाया जाता है। इसलिये इसकी पाठ-परम्परा अविचल है, किन्तु पूर्व बन्धुओने इसे विकृत बनाकर भावशून्यताके साथ संयोग-शृंगारसे हटाकर

राग सारंग

(४४)

री मोहि भवन भयानक लागै माई, स्याम बिना।
काहि जाइ देखौं भरि लोचन, जसुमति के अँगना॥
को संकट सहाइ करिबे कौ, मेटै बिघन घना।
लै गयो क्रूर अक्रूर साँवरौ, ब्रज कौ प्रान-धना॥
काहि उठाइ गोद करि लीजे, करि-करि मन मगना।
सूरदास मोहन-दरसन बिन, सुख-संपति सपना॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी! श्यामसुन्दरके बिना मुझे घर भयावना लगता है, (अब) यशोदाजीके आँगनमें जाकर किसे भर नेत्र देखूं? विपत्तियोंमें सहायता करनेके लिये कौन बहुत-से विघ्नोंको हटायेगा? व्रजके प्राणधन श्यामसुन्दरको तो निर्दय अक्रूर ले गया। बार-बार प्रफुल्ल-चित्त होकर (अब) किसे गोदमें उठाया जाय? मोहनके दर्शन बिना (तो) सुख-सम्पत्ति स्वप्न हो गयी है।

राग सोरठ

(४५)

कहा हौं ऐसैं ही मरि जैहौं।
इहिं आँगन गोपाल लाल कौ, कबहुँ कि कनियाँ लैहौं॥

वियोगमें बैठाकर सुरुचिका परिचय नहीं दिया है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

सुन्दर बदन सदन सोभा को निरखि नैन-मन थाक्यौ।
हौं ठाढ़ी बीथिन ह्वै निकसे, उझकि झरोखे झाँक्यौ॥
मोहन इक चतुराई कीन्ही, गेंद उछारि गगन मिस ताक्यौ।
बारी री लाज बैरिन भइ मोकौं, हौं गँवारि मुख ढाँक्यौ॥
चितवन में कछु करि गए टौना, क्यौं राखूँ मन राख्यौ।
'सूरदास' प्रभु सरबस लै चले, हँसत-हँसत रथ हाँक्यौ॥

कब वह मुख बहुरौ देखौंगी, कब वैसौ सचु पैहौं।
कब मोपै माखन माँगैगे, कब रोटी धरि दैहौ॥
मिलन आस तन प्रान रहत हैं, दिन दस मारग ज्वैहौ।
जौ न सूर आइहैं इते पर, जाइ जमुन धँसि लैहौं॥

(सूरदासजीके शब्दोमें यशोदाजी कहती हैं—सखी !) क्या मैं ऐसे ही मर जाऊँगी ? इस आँगनमे गोपाल लालको (क्या) फिर कभी गोदमें लूँगी ? कब फिर वह मुख देखूँगी और (बताओ) वैसा आनन्द (फिर) कब पाऊँगी ? कब (श्याम) मुझसे मक्खन माँगेंगे और कब रोटीपर (मक्खन) रखकर उन्हे दूँगी ? (उनसे) मिलनेकी आशामें ही (मेरे) शरीरमें प्राण टिक रहे हैं, दस दिनतक और उनका मार्ग देखूँगी। यदि इतनेपर भी (वे) नहीं आयेंगे तो जाकर यमुनामें डूब जाऊँगी।

(४६)

गुपालराइ, हौ न चरन तजि जैहौं।
तुमहि छाँड़ि मधुबन मेरे मोहन, कहा जाइ ब्रज लैहौं॥
कहिहौं कहा जाइ जसुमति सौं, जब सनमुख उठि ऐहै।
प्रात समै दधि मथत छाँड़ि कै, काहि कलेऊ दैहै॥
बारह बरस दियौ हम ढीठौ, यह प्रताप बिन जाने।
अब तुम्ह प्रकट भए बसुधौ-सुत गर्ग-बचन परमाने॥
रिपु हति काज सबै कत कीन्हौ, कत आपदा बिनासी।
डारि न दियौ कमल कर तैं गिरि, दबि मरते ब्रजबासी॥
बासर संग सखा सब लीन्हे, टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यौं रहिहैं मेरे प्रान दरस बिनु, जब संध्या नहिं ऐहौ॥
ऊरध साँस चरन-गति थाकी, नैन नीर मरहाइ।
सूर नंद-बिछुरत की बेदनि, मो पै कही न जाइ॥

(श्रीनन्दजी कहते हैं—) 'गोपाल राय ! मैं तुम्हारे चरण छोड़कर (व्रज) नहीं जाऊँगा। मेरे मोहन ! तुम्हें मथुरा छोड़कर व्रजमें जाकर मैं क्या लूँगा ? जब यशोदा उठकर मेरे सामने आयेगी, तब जाकर उससे क्या कहूँगा ? वह सवेरेके समय दही मथना छोड़कर किसे कलेऊ देगी ? तुम्हारा यह प्रताप जाने बिना बारह वर्षतक हमने तुम्हारे साथ धृष्टताका व्यवहार किया, अब तुम गर्ग (मुनि) के वचनोंके प्रमाणसे वसुदेवजीके पुत्र प्रख्यात हो गये। शत्रुओंको मारकर क्यों तुमने हमारे सब काम किये और क्यों सब विपत्तियाँ नष्ट कीं। (यही करना था तो पहिले ही) अपने कमलके समान हाथपरसे गोवर्धन पर्वतको क्यों नहीं गिरा दिया, जिससे सब व्रजवासी (उसी समय) दबकर मर जाते। अब दिनमें सखाओंको साथ लिये पुकार-पुकारकर गायें नहीं चराओगे ? और जब (वनसे घरको) संध्याके समय नहीं लौटोगे, तब मेरे प्राण तुम्हारा दर्शन किये बिना कैसे रहेंगे ?' सूरदासजी कहते हैं—(यह कहते-कहते नन्दरायकी) ऊर्ध्व (मृत्यु-समय जैसी) श्वास चलने लगी, चरणोंकी गति रुक गयी, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और उनकी मरणासन्न (-जैसी) दशा हो गयी। (श्यामसुन्दरसे) वियुक्त होते समय नन्दजीको जो वेदना हुई, उसका वर्णन मुझसे नहीं हो पाता।

राग सोरठ

(४७)

(मेरे) मोहन तुमहिं बिना नहिं जैहौं।
महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौं ॥
माखन मथि राख्यौ ह्वै है, तुम्ह हेत, चलौ मेरे बारे।
निठुर भए मधुपुरी आइ कै, काहें असुरन मारे ॥
सुख पायौ बसुदेव-देवकी, औ सुख सुरन दियौ।
यहै कहत नँद गोप सखा सब, बिदरन चहत हियौ ॥

तव माया जड़ता उपजाई, निठुर भए जदुराइ।
सूर नंद परमोधि पठाए, निठुर ठगौरी लाइ॥

(श्रीनन्दजी कह रहे हैं—) 'मेरे मोहन ! तुम्हारे विना मैं (व्रज) नही जाऊँगा। व्रजरानी जब दौड़कर आगे आयेंगी; तब मैं उनसे क्या कहूँगा ? मेरे बच्चे ! चलो, उन्होंने तुम्हारे लिये (दही) मथकर मक्खन निकाल रखा होगा। मथुरा आकर (तो) तुम निष्ठुर हो गये। यदि यही करना था तो (व्रजमे आये) असुरोको क्यो मारा ? वसुदेव और देवकीने (तुमसे) सुख पाया और देवताओको भी (तुमने) सुख दिया; तब तो (पहिले) हमसे मोह करके (हममे) जडता (विमुग्धभाव) उत्पन्न की और यादवनाथ ! अब निष्ठुर हो गये ? श्रीनन्दजी और सब गोप-सखा यही कह रहे हैं कि अब (हमारा) हृदय फटना चाहता है।' सूरदासजी कहते हैं कि (श्यामसुन्दरने) निष्ठुरतापूर्वक कुछ टोना-सा लगाकर और नन्दरायजीको आश्वासन दे (उन्हे व्रज) भेज दिया।

राग नट

(४८)

नंदहि कहत हरि व्रज जाहु।
कितिक मथुरा व्रजहि अंतर, जिय कहा पछिताहु॥
कहा व्याकुल होत अतिहीं, दूर हौं कहुँ जात ?
निठुर उर में ग्यान बरत्यौ, मानि लीन्ही बात॥
नंद भए कर जोरि ठाढ़े, तुम्ह कहैं व्रज जाउँ।
सूर मुख यह कहत बानी, चित नहीं कहुँ ठाँउ॥

श्यामसुन्दर श्रीनन्दजीसे कहते है—'आप व्रज पधारें ! मथुरा और व्रजमे दूरी ही कितनी है, अतः मनमे (आप) क्यो पछता रहे है ? क्यो अत्यन्त व्याकुल हो रहे है। क्या मै कही दूर जा रहा हूँ ?' (यह सुनकर श्रीनन्दरायके) निष्ठुर हृदयमे ज्ञानने अपनी क्रिया की, जिससे

(व्रजरायने श्यामसुन्दरकी) बात मान ली। (फिर क्या था) नन्दजी हाथ जोड खड़े होकर (बोले—मैं) 'तुम्हारे कहनेसे व्रज जाता हूँ।' सूरदासजी कहते हैं कि मुखसे ही वे यह बात कहते हैं, किंतु उनका चित्त कहीं (इस बातपर) स्थिर नहीं होता।

राग धनाश्री

(४९)

चले नंद व्रज कौ समुहाइ।
गोप सखा हरि बोधि पठाए, सबै चले अकुलाइ ॥
काहू सुधि न रही तन की कछु, लटपटात परैं पाइ।
गोकुल जात फिरत पुनि मधुवन, मन तिन्ह उतहिं चलाइ ॥
बिरह-सिन्धु में परे चेत बिन, ऐसैहिं चले बहाइ।
सूर स्याम-बलराम छाँड़ि कै, व्रज आए नियराइ ॥

नन्दजी सबको एकत्र करके व्रजकी ओर चले। श्यामसुन्दरने गोप और सखाओंको समझाकर भेजा, अतः वे व्याकुल होकर चल पड़े। किसीको भी (अपने) शरीरकी कुछ सुधि नहीं रही, उनके पैर लड़खड़ाते हुए पड़ रहे हैं। जा रहे हैं गोकुल, पर बार-बार मथुराकी ओर लौट पड़ते हैं; (क्योंकि उनका) मन तो उसी ओर चला जाता है। वियोगके समुद्रमें बिना चेतनाके पडे हैं और इसी प्रकार बहते जा रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—श्याम-बलरामको छोडकर वे व्रजके समीप पहुँच गये।

राग भैरव

(५०)

बार-बार मग जोवति माता। व्याकुल बिन मोहन बल-भ्राता ॥
आवत देखि गोप-नँद साथा। बिवि बालक बिन भई अनाथा ॥
धाई, धेंनु बच्छ ज्यौं ऐसैं। माखन बिना रहे धौं कैसैं ॥
व्रज-नारी हरषित सब धाईं। महरि जहाँ-तहँ आतुर आईं ॥

हरषित मात रोहिनी आई। उर भरि हलधर लेउँ कन्हाई ॥
देखे नंद, गोप सब देखे। बल-मोहन कौं तहाँ न पेखे ॥
आतुर मिलन काज ब्रज-नारी। सूर मधुपुरी रहे मुरारी ॥

माता (यशोदा) बार-बार मार्ग देख रही हैं, वह मोहन और उनके भाई बलरामके बिना व्याकुल है। गोपोंके साथ नन्दजीको दोनों बालकोंके बिना आते देख वह अनाथ हो गयी। जैसे बछड़ेके लिये गाय दौड़ती है, (वह) उसी प्रकार दौड़ी (और बोली—) पता नहीं मक्खनके बिना (मेरे लाल इतने दिन) कैसे रहे। व्रजकी सब स्त्रियाँ (भी) प्रसन्न होकर दौड़ पड़ी और जहाँ व्रजरानी थीं, वहीं शीघ्रतापूर्वक आ गयीं। हर्षित होकर माता रोहिणी यह सोचती हुई आयीं कि 'बलराम और कन्हैयाको हृदयसे लगा लूँ।' उन्होंने व्रजराज नन्दजीको देखा, सब गोपोंको देखा; किंतु बलराम और श्यामसुन्दर वहाँ दिखायी नही पड़े। सूरदासजी कहते हैं कि जिनसे मिलनेके लिये व्रजस्त्रियाँ आतुर (व्याकुल) थीं, वे श्रीमुरारि (तो) मथुरा ही रह गये।

नन्द-व्रजागमन

राग सोरठ

(५१)

नंदहि आवत देखि जसोदा, आगैं लैन गई।
अति आतुर गति कान्ह लैन कौं, मन आनंदमई ॥
कहँ नवनीत-चोर छाँड़े बिन देखत नार नई।
तेहि खन घोष सरोवर मानौ पुरइनि हैम-हई ॥
गर्ग कथा तब कहि जो सुनाई, सो अब प्रकट भई।
सूर मोहि फिरि-फिरि आवत गहि झगरत नेति रई ॥

नन्दजीको आते देखकर यशोदाजी उन्हें लेने आगे गयीं, वे कन्हैयाको लेनेके लिये चित्तमें अत्यन्त आनन्दपूर्ण होती हुई अति आतुर गतिसे चलीं; किंतु (नन्दजीकी) गर्दन झुकी और (उन्हें) कन्हैयाके बिना देखकर बोली—'मेरे माखनचोरको तुमने कहाँ छोड़ दिया ?' उस समय व्रजकी ऐसी दशा हुई, मानो सरोवरमें कमलोंको पालेने नष्ट कर दिया हो। गर्गजीने तब (नामकरणके समय) जो कथा कहकर सुनायी थी (कि श्रीकृष्ण-बलराम वसुदेवजीके पुत्र हैं) वह अब प्रकट हो गयी। यशोदाजी फिर बोलीं—मोहन (मेरे पास) बार-बार आता और मथानी एवं डोरी पकड़कर मुझसे (मक्खनके लिये) झगड़ता था।

राग कल्यान

(५२)

स्याम-राम मथुरा तजि, नंद ब्रजहिं आए।
बार-बार महरि कहति, जनम धिक कहाए॥
कहूँ कहति सुनी नहीं, दसरथ की करनी।
यह सुनि नँद ब्याकुल ह्वै, परे मुरछि धरनी॥
टेरि-टेरि पौहौमि परति, ब्याकुल ब्रज-नारी।
सूरज-प्रभु कौन दोष, हम कौं जु बिसारी॥

श्यामसुन्दर और बलरामको मथुरा छोड़कर नन्दजी व्रज आ गये। व्रजरानी बार-बार (उनसे) कहती हैं—'तुम्हारा जीवन धिक्कारने योग्य कहा जायगा। क्या कहीं किसीके द्वारा (तुमने) महाराज दशरथकी करनी (पुत्र-वियोगमें देह-त्याग-जैसा कार्य) कहते नहीं सुना था ?' यह सुनकर नन्दजी व्याकुल हो गये और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। व्रजकी स्त्रियाँ बार-बार पुकारती (क्रन्दन करती) और व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ती हैं। वे कहती हैं—'हमारे स्वामीने किस दोषके कारण हमें विस्मृत कर दिया !'

राग सारंग

(५३)

उलटि पग कैसैं दीन्हौ नंद।
छाँड़े कहाँ उभै सुत मोहन, धिक जीवन मतिमंद ॥
कै तुम्ह धन-जोवन-मद-माते, कै तुम्ह छूटे बंद।
सुफलक-सुत बैरी भयौ हम कौं, लै गयौ आनँदकंद ॥
राम-कृष्न बिनु कैसैं जीजै, कठिन प्रीति कै फंद।
सूरदास मैं भई अभागिन, तुम्ह बिनु गोकुलचंद ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही हैं—) 'नन्दजी ! आपने घूमकर इधर (व्रजकी ओर) पैर ही कैसे रखा ? मेरे मनको मोहनेवाले दोनों पुत्र कहाँ छोड़ दिये ? अरे मंदबुद्धि (नन्दजी) ! आपके जीवनको धिक्कार है। या तो आप धन और युवावस्थाके मदसे मतवाले हो गये या आप कहीं कैदसे छूटे थे ? (अन्ततः यहाँ आनेकी इतनी क्या शीघ्रता थी ?) हमारे लिये (तो) अक्रूर शत्रु हो गया (जो) वह यहाँसे आनन्दकंद (श्यामसुन्दर) को ले गया। अब राम-कृष्णके बिना कैसे जीवित रहा जा सकता है; क्योंकि यह प्रेमका बन्धन अत्यन्त कठिन है। हे गोकुलचन्द्र ! तुम्हारे बिना मैं भाग्यहीना हो गयी।'

राग मलार

(५४)

दोउ ढोटा गोकुल-नाइक मेरे।
काहैं नंद छाँड़ि तुम आए, प्रान-जिवन सब केरे ॥
तिन के जात बहुत दुख पायौ, रोर परी इहिं खेरे।
गोसुत, गाइ फिरत हैं दहुँ दिसि, वे न चरैं तृन घेरे ॥
प्रीति न करी राम-दसरथ की, प्रान तजे बिन हेरे।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, प्रबल पाप सब मेरे ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीयशोदाजी कह रही हैं—) 'नन्दजी ! मेरे दोनो पुत्र गोकुलके नायक हैं, वे सभीके प्राण एवं जीवन हैं; (उन्हें) आप छोड़ क्यो आये ? उनके जाते समय ही बहुत दुःख हुआ था, (जिससे) इस ग्राममें क्रन्दन-ध्वनि गूँज गयी थी । (उनके वियोगके कारण अब) बछडे और गायें दसों दिशाओमे घूम रही हैं। वे रोकनेपर भी घास नहीं चरती । जैसे महाराजा दशरथने श्रीरामसे प्रेम किया था और उनको देखे बिना प्राण त्याग दिये थे, वैसा प्रेम आपने नही किया !' यशोदाजी नन्दजीसे कह रही है—'यह सब मेरा ही बलवान् पाप (का फल) है ।'

राग नट

(५५)

नंद, कहौ हो कहँ छाँड़े हरि ।
लै जु गए जैसैं तुम्ह ह्याँतैं, ल्याए किन वैसैंहिं आगैं धरि ॥
पालि-पोषि मैं किए सयाने, जिन मारे गज, मल्ल, कंस-अरि ।
अब भए तात देवकी-बसुद्यौ, बाहँ पकरि ल्याए न न्याव करि ॥
देखौ दूध, दही, घृत, माखन, मैं राखे सब वैसैं ही धरि ।
अब को खाइ नंद-नंदन बिनु, गोकुल-मनि मथुरा जु गए हरि ॥
श्रीमुख देखन कौं ब्रजबासी, रहे ते घर आँगन मेरे भरि ।
सूरदास-प्रभु के जु सँदेसे, कहे महर आँसू गदगद करि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही हैं—) नन्दजी ! बताइये तो (मेरे) श्यामसुन्दरको आपने कहाँ छोड़ा ? आप जैसे उन्हें यहाँसे ले गये थे, वैसे ही आगे करके क्यों नही ले आये ? जिन्होंने हाथी (कुवलयापीड), पहलवान (चाणूर आदि) तथा शत्रु कंसको मारा, (उन्हें) मैंने (बड़ी कठिनतासे) पाल-पोसकर बड़ा किया था । अब (उनके) देवकी और वसुदेव माता-पिता बन गये, अतः (तुम) न्याय (पूर्ण निर्णय) कराकर (उन्हें) बाँह पकड़कर (अपने साथ) क्यों नही

ले आये ? देखो तो मैंने (यह) दूध, दही, घी, मक्खन—सब वैसे ही रख छोड़ा है; (इन्हें) अब नन्दनन्दनके विना कौन खायगा ? (इन्हे खानेवाले) गोकुलके शिरोमणि तो मथुरा चले गये, उनके श्रीमुखको देखनेके लिये समस्त व्रजवासी मेरे घर एवं आँगनमें भरे है (उन्हे अब क्या कहूँ ? तव) व्रजराजने (नेत्रोंमे) आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे सूरदासके स्वामीका संदेश कहा ।

राग विहागरो

(५६)

यह मति नंद तोहि क्यौं छाजी ।
हरि-रस बिकल भयौ नहिं तिहिं छिन, कपट कठोर कछू नहिं लाजी ॥
राम-कृष्न तजि गोकुल आए, छतिया छोभ रही क्यौं साजी ।
कहा अकाज भयौ दसरथ कौ, लै जु गयौ अपनी जग वाजी ॥
बातैं ही पै रहति कहन कौं, सब जग जात कालकी खाजी ।
सूर जसोदा कहति सो धिक मति जो गिरिधरन बिमुख ह्वै भाजी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही हैं—) 'नन्दजी ! आपको (मेरे मोहनके छोड़ आनेकी) मति कैसे शोभा दे सकी ? (तुम्ह) उस समय श्यामसुन्दरके प्रेममे व्याकुल नही हो गये ? कपटपूर्ण कठोरता करते (तुम्हे) कुछ लज्जा नही आयी ? वलराम और श्रीकृष्णको छोड़कर (जव) गोकुल आये, (तव) तुम्हारा हृदय उस शोकमे ठीक कैसे वना रहा (फट क्यो नही गया) ? महाराज दशरथकी (श्रीरामके वियोगमें शरीर छोड़नेसे) क्या हानि हो गयी ? (वे) संसारसे अपनी जीती बाजी ले गये । ऐसी वातें (ही) यहाँ (संसारमें) कहनेको रह जाती है, (नहीं) तो सारे संसारको कालका भोजन वनना ही पड़ता है । (नन्दजीसे यशोदा कहती हैं—) तुम्हारी इस वुद्धिको धिक्कार है, जिससे (तुम) गिरिधरलालसे विमुख होकर भाग आये ।

राग सोरठ

(५७)

जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तुम्हारी चारौ, कैसै मारग सूझै॥
इक तौ जरी जात बिनु देखें, अब तुम्ह दीन्हौ फूँक।
यह छतिया मेरे कान्ह कुँवर बिनु, फटि न भई द्वै टूक॥
धिक तुम्ह धिक ए चरन अहो पति, अध बोलत उठि धाए।
सूर स्याम-बिछुरन की हम पै, दैन बधाई आए॥

सूरदासजी कहते हैं—यशोदाजी 'कान्ह कहाँ? कान्ह कहाँ?' (यही) पूछती है। (वे कहती हैं—) 'तुम्हारे चारों नेत्र (बाहरी नेत्र और ज्ञान-नेत्र) फूट क्यो नही गये, तुम्हें (व्रजका) मार्ग कैसे दिखायी पड़ा? एक तो वैसे ही (मोहनको) देखे बिना मैं जली जा रही थी, उसपर अब तुमने फूंक मार दी! (हाय!) मेरे कुंवर कन्हैयाके बिना यह हृदय (आज) फटकर दो टुकड़े (क्यो) नही हो गया? हे पतिदेव! तुम्हे धिक्कार है! तुम्हारे इन चरणोको धिक्कार है, जो आधे बोलते (तनिक लौट जानेकी बात मथुरावालोके कहते) ही उठकर दौड़ते हुए श्यामसुन्दरके वियोगकी बधाई देने हमारे पास आ गये।

(५८)

नंद, हरि तुम्ह सौं कहा कह्यौ।
सुनि-सुनि निठुर बचन मोहन के, कैसैं हृदै रह्यौ॥
छाँड़ि सनेह चले मंदिर कित, दौरि न चरन गह्यौ।
दरकि न गई बज्र की छाती, कित यह सूल सह्यौ॥
सुरति करत मोहन की बातै, नैननि नीर बह्यौ।
सुधि न रही अति गलित गात भयौ, मनु डसि गयौ अह्यौ॥

उन्हैं छाँड़ि गोकुल कित आए, चाखन दूध-दह्यौ।
तजे न प्रान सूर दशरथ-लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही हैं—) 'नन्दजी ! श्यामसुन्दरने तुमसे (व्रज आते समय) क्या कहा ? तुम्हारा हृदय बार-बार मोहनकी निर्दयताभरी बातें सुन-सुनकर कैसे रह गया (फट क्यों नहीं गया) ? उनका प्रेम छोड़कर घरको क्यों लौट पड़े, क्यों न दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये ? अरे ! तुम्हारा वज्रका बना हृदय (उस समय) फट नहीं गया, कैसे यह वेदना सहन की गयी ?' मोहनकी बातोंका स्मरण करके (यशोदा माताके) नेत्रोंसे अश्रु बहने लगे, शरीरको सुधि नहीं रह गयी और (उनकी) देह ऐसी क्षीण हो गयी (मूर्छित होकर गिर पड़ी) मानो सर्पने काट लिया हो। (फिर बोलीं—'तुम) उन्हें (मथुरा) छोड़कर गोकुल किस लिये आये, दूध-दही खाने ? (अरे ! महाराज) दशरथके समान तुमने अपने प्राण (उसी समय) क्यों न छोड़ दिये, जिससे जीवन सार्थक हो जाता।

(५९)

मेरौ अति प्यारौ नँद-नंद।
आए कहाँ छाँड़ि तुम्ह उन्ह कौं, पोच करी मतिमंद॥
बल-मोहन दोउ पीड़ नैन की, निरखत ही आनंद।
सरवर घोष, कुमोदिन ब्रज-जन, स्याम-बदन बिनु चंद॥
काहें न पाइँ परे बसुद्यौ के, घालि पाग गर-फंद।
सूरदास-प्रभु अब कैं पठवहु, सकल लोक-मुनि-बंद॥

(यशोदाजी कह रही हैं—) 'नन्दजी ! वह तुम्हारा बेटा मेरा अत्यन्त प्यारा लाल था, उसको तुम कहाँ छोड आये ? हे मन्दबुद्धि ! तुमने यह बहुत बुरा (कार्य) किया। दोनों बलराम-श्याम (तो) मेरी आँखोंके आभूषण थे, जिन्हें देखते ही आनन्द होता था। यह (गोकुल—) ग्राम सरोवर और व्रजवासी कुमुदिनीके समान हैं, जो श्यामसुन्दरके मुख-

रूपी चन्द्रमासे रहित (हो गये) हैं। अपनी पगड़ीका फंदा गलेमें डालकर वसुदेवजीके पैरपर (यह कहते हुए) क्यों नहीं गिर पड़े कि—'इस बार समस्त लोको एवं मुनियोंके वन्दनीय हमारे स्वामीको (व्रज) भेज दीजिये।'

राग सारंग

(६०)

कहाँ रह्यौ मेरौ मन-मोहन।
वह मूरति जिय तैं नहिं बिसरति, अंग-अंग सब सोहन॥
कान्ह बिना गौवैं सब व्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन।
माखन खात खवावत ग्वालन, सखा लिए सब गोहन॥
जब वै लीला सुरति करति हौं, चित चाहत उठि जोहन।
सूरदास-प्रभु के बिछुरे तैं, मरियत है अति छोहन॥

(सूरदासजीके शब्दोमें यशोदाजी कह रही हैं—'नन्दरायजी !) मेरा मनको मोहनेवाला कहाँ रह गया ? जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सभी सुहावने थे, (आज) वह मूर्ति हृदयसे विस्मृत नहीं होती। कन्हैयाके बिना सब गायें व्याकुल हैं, अब (उन्हें दुहकर-दूधसे) दोहनी भरकर कौन लायेगा ? वह तो सब सखाओंको साथ लिये (स्वयं) मक्खन खाता था और गोप-कुमारोको खिलाता था। (आज) जब मैं उन लीलाओंका स्मरण करती हूँ, तभी चित्त चाहता है कि उठकर उसे देखूँ। मैं तो सूरदासके स्वामीका वियोग हो जानेपर उनके अत्यन्त स्नेहमें मरी जा रही हूँ।'

नन्द-वचन यशोदाके प्रति

राग रामकली

(६१)

तब तू मारिबोई करति।
रिसनि आगैं कहि जु आवति, अब लै भाँड़े भरति॥

रोस कै कर दाँवरी लै, फिरति घर-घर धरति।
कठिन यह करी तब जो बाँध्यौ, अब वृथा करि मरति ॥
नृपति कंस बुलाइ पठयौ, बहुत कै जिय डरति।
यह कछुक बिपरीति मो मन, माँझ देखि जु परति॥
होनहारी होइहै सोइ, अब इहाँ कत अरति।
सूर तब किन्ह फेरि राखे, पाइँ अब किहि परति॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीनन्दरायजी कह रहे हैं—'व्रजरानी ! जब श्यामसुन्दर यहाँ थे) तब तो तुम्ह उन्हे (नित्य) मारा-पीटा करती थीं, क्रोधके कारण पहिले उन्हें बहुत कुछ (बुरा-भला) कहने-सुननेमें आता था, अब (दही-मक्खन) लेकर बर्तनोंको (भली प्रकार) भरती रहो। (उस समय) क्रोध करके हाथमें रस्सी लिये (उन्हे) घर-घरमें पकडती घूमती थी और उस समय (तो) तुमने बड़ी निष्ठुरता की कि उन्हें (ऊखलसे) बाँध दिया। अब व्यर्थ मर (चिन्ता कर) रही हो। राजा कंसने उन्हें बुला भेजा, इससे मैं मनमे बहुत डरता था तथा मेरे मनमें यह (राम-कृष्णका मथुरा बुलाया जाना) कुछ उलटा (आशंका-पूर्ण) दिखाई पडा था। जो कुछ होनेवाला होगा, वही होगा; अब इसमें हठ क्यों करती हो ? (जब मोहन यहाँसे जाने लगे थे) तभी (तुमने) उन्हें लौटा (रोक) क्यों नहीं लिया, अब किसके पैर पडती हो ?'

यशोदा-विलाप

राग अड़ानो

(६२)

कह ल्यायौ, तजि प्रानजिवन-धन।
राम-कृष्न कहि मुरछि परी धर, जसुदा देखत ही पुर लोगन॥
विद्यमान हरि बचन स्रवन सुनि, कैसैं गए न प्रान छूटि तन।
सुनी न कथा राम-दसरथ की, अहो न लाज भई तेरे मन॥

मंद-हीनमति भयौ नंद अति, होत कहा पछिताने छन-छन ।
सूर नंद फिरि जाहु मधुपुरी, ल्यावहु सुत, करि कोटि जतन घन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता कह रही हैं—व्रजराय !) मेरे प्राणोंके जीवनघनको (मथुरा) छोड़कर (वहाँसे आप) क्या लेकर आये ? (यह कहती हुई) बलराम और श्रीकृष्णका नाम ले-लेकर व्रजके लोगोंके देखते-देखते यशोदाजी मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं । (फिर कुछ चेतना लौटनेपर बोली—) श्यामसुन्दरके सामने रहते, (उनके न लौटनेकी) बात सुनकर (आपके) शरीरसे प्राण कैसे न छूटे ! क्या आपने श्रीराम (के वियोगमें दशरथ महाराजके प्राण त्यागने) की कथा नहीं सुनी ? अहो ! आपके मनमें (लौटते हुए) लज्जा (भी) नही आयी ! नन्दराय ! आप (उस समय) विचारहीन और मन्दबुद्धि हो गये ? अब क्षण-क्षणपर पश्चात्ताप करनेसे क्या होता है ? व्रजराज ! (तुम) फिर मथुरा जाओ और करोड़ो ठोस प्रयत्न करके मेरे (आनन्दघन) पुत्रोंको ले आओ ।

व्रजवासी-वचन

राग केदारौ

(६३)

कहौ नंद, कहाँ छाँड़े कुमार ।
कैसै प्रान रहे सुत-बिछुरत, पूछत हैं गोपी अरु ग्वार ॥
करुना करै जसोदा माता, नैनन नीर बहै असरार ।
चितवत नंद ठगे-से ठाढ़े, मानौ हारयौ हेम जुआर ॥
मुरली-धुनि नहिं सुनियत ब्रज में, सुर-नर-मुनि नहिं करत कवार ।
सूरदास-प्रभु के बिछुरे तैं, कोउ न झाँकन आवत द्वार ॥

(व्रजवासी पूछते हैं—) 'नन्दजी ! बताइये तो, (आपने अपने) कुमारोंको कहाँ छोड़ा ?' (फिर) गोपियाँ और गोप पूछते हैं—'पुत्रोंसे

वियोग होनेपर आपके प्राण कैसे रहे ?' माता यशोदा क्रन्दन कर रही है और उनके नेत्रोंसे अविरल आँसुओंकी धारा बह रही है तथा नन्दजी ठगे हुए-से (स्तम्भित) खड़े-खड़े (इस भाँति) देख रहे हैं, मानो जुआरी (जुएमे) सोना (सब धन) हार गया हो। व्रजमे अब वंशीध्वनि नहीं सुनायी पड़ती और न देवता तथा मुनिगण यशोगान ही करते हैं। सूरदासके स्वामीका वियोग हो जानेसे (अब) कोई (नन्दभवनके) द्वारपर झाँकता भी नहीं।

व्रज-दशा

राग धनाश्री

(६४)

तब तैं मिटे सब आनंद।
या व्रज की सब भाग-संपदा, लै जु गए नँदनंद॥
विह्वल भई जसोदा डोलति, दुखित नंद-उपनंद।
धेनु नहीं पय स्रवतिं रुचिर मुख, चरतिं नहीं तृन-कंद॥
विषम बियोग दहत उर सजनी, बाढ़ि रहे दुख-दंद।
सीतल कौन करै री माई, नाहिं इहाँ व्रज-चंद॥
रथ चढ़ि चले, गहे नहिं काहू, चाहि रही मति-मंद।
सूरदास अब कौन छुड़ावै, परे विरह कें फंद॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कहती है—सखी !) उसी समय-से (व्रजका) सारा आनन्द मिट गया, इस व्रजका सम्पूर्ण सौभाग्य और सम्पत्ति श्रीनन्दनन्दन (अपने साथ) ले गये। माता यशोदा व्याकुल हुई घूमती है, नन्दजी तथा उपनन्दजी दुखी है। गायें प्रसन्न मुखसे दूध नहीं देतीं तथा घास एवं कंद नही चरतीं। सखी ! (श्रीनन्दनन्दनके) दारुण वियोगसे (मेरा) हृदय जल रहा है तथा मनमें दुःख एवं उपद्रव बढ गये हैं। हमारे (हृदयको) शीतल कौन करे, क्योंकि अब

यहाँ व्रजके चन्द्र नहीं हैं। वे जब रथपर चढ़कर चलने लगे थे तब किसीने उन्हें पकड़ा (रोका) नहीं, मंदबुद्धि मैं भी देखती रह गयी। (पूरा व्रज) वियोगके फंदेमें पड़ा है, अब उसे कौन छुड़ाये।

राग कान्हरो

(६५)

अब वह सुरति होत कित राजनि।
दिन दस रहे प्रीति करि स्वारथ, हित रहे अपने काजनि॥
सबै अजान भईं सुनि मुरली, बधिक कपट की बाजनि।
अब मन थक्यौ सिंधु के खग ज्यौं, फिरि-फिरि सरन जहाजनि॥
वह नातौ ता दिन तैं टूट्यौ, सुफलक-सुत सँग भाजनि।
गोपीनाथ कहाइ सूर-प्रभु, मारत अब कित लाजनि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) अब वे (श्याम) राजा हो गये है, अतः उन्हें अब हमारा वह (प्रेम) स्मरण क्यों होगा ? वे अपने स्वार्थवश हमसे दस दिन (अल्प समय) प्रेम किये रहे, जो अपना काम बनानेके लिये (ही) था। जैसे व्याधके बजाये कपटपूर्ण संगीतसे मृग मुग्ध होते हैं, वैसे ही हम सब उनकी वंशीध्वनि सुनकर अनजान हो गयी थी। किंतु अब मन समुद्रके (उस) पक्षीके समान थकित (विमुग्ध) हो गया है, जो बार-बार जहाजकी ही शरण लेता है (बार-बार मनमोहनका ही आश्रय करता है)। जिस दिन वे अक्रूरके साथ भाग गये, उसी दिनसे वह (प्रेमका) सम्बन्ध टूट गया; किन्तु हमारे स्वामी अब गोपीनाथ कहलाकर हमें लज्जासे क्यों मारते हैं।

राग गौरी

(६६)

व्रज री, मनौ अनाथ कियौ।
सुनि री सखी, जसोदानंदन सुख संदेह दियौ॥

तव वह कृपा स्याम सुंदर की, कर गिरि टेकि लियौ ।
अरु प्रतिपाल गाइ-ग्वारनि कौं, जल कालिंदि पियौ ॥
यह सब दोष हमैं लागत है, बिछुरत फट्यौ न हियौ ।
सूरदास प्रभु नँदनंदन बिन, कारन कौन जियौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कहती है—सखी ! श्यामसुन्दरने) व्रजको मानो अनाथ कर दिया । सखी ! सुन, यशोदा-कुमारने जो सुख दिया था, वह संशययुक्त (कपटपूर्ण) था । तब (तो) श्यामसुन्दरकी (हमपर) वह कृपा थी कि (हमारे लिये) हाथपर (गोवर्धन) पर्वत उठा लिया और (विषैले) यमुना-जलको पीकर (मृतप्राय) गायों तथा गोपकुमारोंकी रक्षा की । अब यह सब दोष हमें ही लगता—हमारा ही है कि उनका वियोग होनेपर (हमारा) हृदय फट नहीं गया । स्वामी श्रीनन्दनन्दनके बिना किस लिये हम जीवित रहीं ?

राग केदारौ

(६७)

अब हम निपटहिं भईं अनाथ ।
जैसें मधु तोरे की माखी, त्यौं हम बिनु ब्रजनाथ ॥
अधर-अमृत की पीर मुईं हम, बाल दसा तैं जोरि ।
सो छुड़ाइ सुफलक-सुत लै गयौ, अनायास ही तोरि ॥
जौ लगि पानि पलक मीड़त रहिं, तौ लगि चलि गए दूरि ॥
करि निरंध निबहे दै माई, आँखिन रथ-पद-धूरि ॥
निसि-दिन करी कृपन की संपति, कियौ न कबहूँ भोग ।
सूर बिधाता रचि राख्यौ वह कुबिजा के मुख जोग ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) अब हम सर्वथा अनाथ हो गयीं । जैसे मधुका छत्ता तोड़ लेनेपर मधुमक्खियाँ हो जाती

हैं। व्रजनाथके विना हम भी वैसी ही हो गयी हैं। उनके अधरामृत पानेकी पीड़ा (लालसा) से हम मरती रहीं और उसे वचपनसे सँजोकर रखा था, सो अक्रूर उसे अनायास (विना परिश्रम) ही भङ्गकर (हमसे) छीन ले गया। जवतक हम (आँसू पोछनेके लिये अपने) हाथोसे नेत्रोकी पलकें मलने लगी, तवतक (तो मोहन) दूर चले गये। सखी ! हमारी आँखोंमें रथके पहियोकी धूलि डालकर, हमें अंधी वनाकर वे भाग निकले। कृपण (कंजूस) की सम्पत्तिके समान हमने रात-दिन उसे (श्यामसुन्दरके अधरामृतको) सँभालकर रखा, उसका कभी उपभोग नही किया। (हम उसका उपभोग करते कैसे ?) विधाताने तो उसे कुब्जाके मुखके योग्य (उसके उपभोगके लिये) रच (नियत कर) रखा था !

परस्पर नन्द-यशोदा-वचन

राग गौरी

(६८)

चूक परी हरि की सेवकाई।
यह अपराध कहाँ लौं वरनौं, कहि-कहि नंद-महर पछिताई॥
कोमल चरन-कमल कंटक कुस, हम उन्ह पै वन गाइ चराई।
रंचक दधि के काज जसोदा, वाँधे कान्ह उलूखल लाई॥
इंद्र-प्रकोप जानि व्रज राखे, वरुन-फाँस तैं मोहि मुकराई।
अपने तन-धन-लोभ, कंस-डर, आगैं कै दीन्हे दोउ भाई॥
निकट वसत कवहुँ न मिलि आयौ, इते मान मेरी निठुराई।
सूर अजहुँ नातौ मानत हैं, प्रेम सहित करै नंद-दुहाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें नन्दरायजी कहते हैं—) 'हमसे श्यामसुन्दरकी सेवामें वहुत त्रुटियाँ हुईं, इस अपराधका कहाँतक वर्णन करूँ।' वार-वार यों कहकर व्रजराज नन्दजी पश्चात्ताप करते हैं। 'उनके चरण कमलके समान सुकुमार थे, फिर भी हमने काँटों और कुशोंसे युक्त वनमें उनसे गायें चरवायी। तनिक-से दहीके लिये यशोदाने कन्हैयाको ऊखलसे लाकर वाँध दिया। उन्होंने

(तो) इन्द्रको अत्यन्त क्रुद्ध जानकर (गोवर्धन उठाकर) व्रजकी रक्षा की और मुझे वरुणके पाशसे छुड़ाया; किंतु मैंने अपने शरीर तथा धनके लोभके कारण कंसके भयसे उन दोनों भाइयोंको आगे कर दिया। वे पास ही (मथुरा) में रहते हैं, किन्तु मैं वहाँ जाकर कभी उनसे मिलकर नहीं आया, मेरी निष्ठुरता तो इस परिमाणकी है, (उधर उनकी बात यह है कि) अब भी वे हमसे सम्बन्ध मानते हैं और (अवसर आनेपर) प्रेमपूर्वक बाबा नन्दकी (मेरी) शपथ (ही) करते (खाते) हैं—मुझे ही अपना पिता मानते हैं।

राग सोरठ

(६९)

हरि की एकौ बात न जानी।
कहौ कंत कहँ तज्यौ स्याम कौं, कहति बिकल नँदरानी ॥
अब व्रज सून भयौ गिरिधर बिन, गोकुल मनि बिलगानी।
दसरथ प्रान तज्यौ छिन भीतर, बिछुरत सारँगपानी ॥
ठाढ़ी रहै ठगोरी डारी, बोलति गदगद बानी।
सूरदास-प्रभु गोकुल तजि गए, मथुरा ही मन मानी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें) व्याकुल होकर श्रीनन्दरानी कहती हैं—'(व्रजराज!) मुझे श्यामसुन्दरका एक भी समाचार नहीं मिला। स्वामी! बताओ तो कि तुमने श्यामसुन्दरको कहाँ छोड़ा? अब गिरधरलालके बिना व्रज सूना हो गया। गोकुलकी मणि उससे पृथक् हो गयी। शार्ङ्गपाणि (विष्णुरूप) श्रीरामका वियोग होनेपर महाराज दशरथने तो एक क्षणमें प्राण त्याग दिया था।' वे इस प्रकार खड़ी रहती हैं, जैसे किसीने उनके सिर कुछ जादू डाल दिया हो और गद्गद स्वरमें कहती हैं—'हमारे स्वामी गोकुलको छोड़कर चले गये; अब मथुरा ही उनको प्रिय लगती है।'

राग सारंग

(७०)

लै आवहु गोकुल गोपालहि ।
पाँइन परि, क्यौंहूँ विनती करि, छल-बल बाहु-बिसालहि ॥
अब की बार नैक दिखरावहु, नंद आपने लालहि ।
गाइन गनत ग्वार-गोसुत सँग, सिखवत बैन रसालहि ॥
जद्यपि महाराज सुख-संपति, कौन गनै मनि-लालहि ।
तदपि सूर वे छिन न तजत हैं, वा घुँघुची की मालहि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा नन्दजीसे कहती है—व्रजराज !) पैरो पड़कर, प्रार्थना करके, अथवा छलबलसे—किसी तरह उन विशाल भुजाओंवाले गोपालको गोकुल ले आओ । नन्दजी ! इस बार अपने लालका तनिक-सा दर्शन करा दो । वे यहाँ गोपकुमारोके साथ गायों तथा बछड़ोको गिना करते थे और रसपूर्वक (मधुर वाणीमें) बोलना सखाओंको सिखलाते थे । यद्यपि (अब वे मथुरामें) महाराज हैं और वहाँकी सुख-सम्पत्ति तथा मणियों एवं लालोंकी गिनती कौन कर सकता है; फिर भी वे (यहाँसे गयी) उस गुञ्जाकी मालाको एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ते ।

राग सोरठ

(७१)

सराहौ तेरौ नंद ! हियौ ।
मोहन-सौ सुत छाँड़ि मधुपुरी, गोकुल आनि जियौ ॥
कहा कह्यौ मेरे लाल लड़ैतैं, जब तू बिदा कियौ ।
जीवन-प्रान हमारे ब्रज कौ, बसुधौ छीनि लियौ ॥
कह्यौ पुकार पारि पचि हारी, बरजत गमन कियौ ।
सूरदास-प्रभु स्याम लाल धन, लै पर-हाथ दियौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीयशोदाजी कह रही हैं—) नन्दजी ! तुम्हारे हृदयको (कठोरताको) मैं प्रशंसा करती हूँ। मोहन-जैसे पुत्रको मथुरा छोड़कर गोकुलमें आकर जी रहे हो। मेरे दुलारे लालने जब तुमको विदा किया, तब क्या कहा ? हमारे और व्रजके उस प्राणजीवनको (अब) वसुदेवने छीन लिया। (जाते समय) मैं पुकार-पुकारकर कहती हुई थक गयी; किंतु रोकनेपर भी वे (मथुरा ले) गये और (वहाँ) व्रजके स्वामी (मेरे) श्यामलालरूप धनको दूसरेके हाथ (में) दे दिया।

राग बिलावल

(७२)

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग॥
निसि-बासर छतिया लै लाऊँ, बालक-लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वैहैं, मोहन मोद खवाऊँ॥
जा कारन मुनि ध्यान धरैं, सिव अंग बिभूति लगावैं।
सो बालक-लीला धरि गोकुल, ऊखल साथ बँधावैं॥
बिदरत नाहिं वज्र कौ हिरदै, हरि-बियोग क्यौं सहिऐ।
सूरदास-प्रभु कमल-नैन बिन, कौने बिधि ब्रज रहिऐ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कहती है—) यद्यपि लोग मेरे मनको समझाते (सान्त्वना देते) हैं फिर भी मेरे मोहनके मुख—श्यामके खाने योग्य (ताजा) मक्खन देखकर मुझे वेदना होती है। रात-दिन उसे मैं लेकर हृदयसे लगाये रहती थी और उसकी बाललीलाका गान करती थी; (अब) वैसा भाग्य फिर कब होगा (जब) मोहनको आनन्दपूर्वक खिलाऊँगी ? जिन्हे पानेके लिये मुनिगण ध्यान किया करते हैं और शंकरजी शरीरमें विभूति लगाते है, उन्होने ही लीलासे बालकरूप धारणकर गोकुलमें (अपनेको) ऊखलसे बँधवाया। मेरा हृदय वज्रका है, जो फट नहीं जाता। भला, श्यामसुन्दरका वियोग कैसे सहा

जा सकता है। कमललोचन प्रभुके बिना व्रजमें (अब) कैसे रहा जा सकता है।

राग गौड़ मलार

(७३)

व्रज तजि गए माधौ कालि।
स्यामसुंदर कमल-लोचन, क्यौं बिसारौं आलि॥
बैठि निसि-बासर बिसूरति, बिकल चहुँ दिसि भारि।
कह करौं कृत कर्म अपनौ, काहि दीजै गारि॥
तज्यौ भोजन, भवन, भूषन, अति बियोग बिहाल।
हित नहीं कोउ, काहि पठवौं, करि रही जिय लाल॥
धोखे-ही-धोखैं दगा दै, क्रूर गयौ रथ चालि।
सूर के प्रभु कहति जसुदा, कहा पायौ पालि॥

'व्रजको छोड़कर माधव कल चले गये, सखी! उन कमल-लोचन श्यामसुन्दरको कैसे भुलाऊँ। रात-दिन बैठी चिन्ता करती रहती हूँ, जिससे चारों ओर अत्यन्त व्याकुलता रहती है। क्या करूँ, यह अपना ही किया हुआ कर्म है; अतः गाली (दोष) किसे दी जाय? (उनके) वियोगमें अत्यन्त व्याकुल होकर भोजन, आभूषण, भवन—सब छोड़ दिये; पर कोई ऐसा हितैषी नहीं, किसे (उसके पास) भेजूँ। यही चिन्ता कर रही हूँ—मरी जा रही हूँ। धोखे-ही-धोखेमें अक्रूर (हमें) चकमा दे रथ चलाकर ले गया। यशोदाजी कहती हैं—सूरदासके प्रभुका पालन करके मैंने क्या पाया।'

राग कान्हरौ

(७४)

नंद, व्रज लीजै ठोक-बजाइ।
देहु बिदा, मिलि जाहिं मधुपुरी, जहँ गोकुल कौ राइ॥

नैनन पंथ, कहौ, क्यौं सूझ्यौ, उलटि दियौ जब पाँइ।
रघुपति-दसरथ-कथा सुनी ही, बरु मरते गुन गाइ॥
भूमि मसान बिदित यह गोकुल, मनौ धाइ कैं खाइ।
सूरदास-प्रभु पास जाहिं हम, देखहिं रूप अघाइ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कहती हैं—) नन्दजी ! (अब) अपना व्रज ठोंक-बजाकर (भली प्रकार देखकर) सम्हाल लीजिये; हमें विदा दें, (जिससे) हम सब मिलकर मथुरा जायँ, जहाँ गोकुलका स्वामी है। जब लौटकर तुमने इधर (व्रजकी ओर) पैर रखा, तब नेत्रोंसे मार्ग कैसे सूझा (दीखा)। श्रीरामके वियोगमें दशरथके (देहत्यागकी) कथा तुमने सुन (ही) रखी थी। अतः (लौटनेसे) अच्छा था कि मोहनके गुण गाते-गाते (वहीं) मर जाते। यह गोकुल तो (अब) श्मशानभूमिके समान (ऐसा) लगता है, मानो दौड़कर खा लेगा। हम (तो अपने) स्वामी (श्यामसुन्दर) के पास जायँगी और उनका रूप तृप्त होकर देखेंगी।

राग सोरठ

(७५)

माई, हौ किन संग गई।
हौ ए दिन जानत ही बूड़ी, लोगनि की सिखई॥
मोकौं वैरी भए कुटम सब, फेरि, फेरि व्रज गाड़ी।
जौ हौं कैसैंहु जान पावती, तौ कत आवति छाँड़ी॥
अब हौ जाइ जमुन जल वहिहौ, कहा करौ मोहि राखी।
सूरदास वा भाइ फिरति हौं, ज्यौं मधु तोरैं माखी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें यशोदाजी कह रही हैं—) हाय मैया ! मैं (मोहनके) साथ क्यों नहीं गयी ? यह (उससे वियोगका) दिन आयेगा, यह जानकर भी मैं लोगोंके सिखलाने (समझाने) में आकर डूब गयी (मारी गयी)। मेरे लिये (ये) सब कुटुम्बके लोग शत्रु हो गये।

उन्होने (ही) वार-वार समझाकर मुझे व्रजमें रोक रखा। यदि किसी प्रकार मै यह जान पाती (कि श्यामसुन्दर नही लौटेंगे) तो उसे छोड़कर (मै) क्यो आती ? क्या करूँ, लोगोने मुझे रोक लिया; (इसलिये) अब मैं जाकर यमुनाके जलमे अपनेको प्रवाहित कर दूँगी। जैसे शहद तोड़ लेनेपर मक्खियाँ विचलित हो जाती हैं, उसी भाँति मै घूमती हूँ।

राग मलार

(७६)

हौं तौ माई, मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै वसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौ॥
राखि-राखि एते दिवसनि मोहि, कहा कियौ तुम्ह नीको।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै, तनक खिलौना जी कौ॥
मोहि देखि कैं लोग हसैंगे, अरु किन कान्ह हँसै।
सूर असीस जाइ दैहौ, जनि न्हातहु वार खसै॥

(सूरदासजीके शब्दोमें यशोदाजी कह रही है—व्रजराज !) मै तो मथुराको ही जाऊँगी, वहाँ राजा वसुदेवकी दासी होकर (मनमोहनके) दर्शन करती रहूँगी। इतने दिनोतक मुझे वार-वार रोककर तुमने भला नही किया। मेरे हृदयका जो तनिक-सा खिलौना था, उसे भी तो अक्रूर ले गया। मुझे देखकर (मथुराके) लोग हँसें और कन्हैया भी क्यों न हँसे; किंतु मै वहाँ जाकर उसे यही आशीर्वाद देती रहूँगी कि स्नान करते समय भी (मोहन) का बाल बाँका न हो।

राग सारंग

(७७)

पंथी, इतनी कहियौ बात।
तुम्ह बिन इहाँ कुँवर वर मेरे, होत जिते उतपात॥

बकी-अघासुर टरत न टारे, बालक बनहिं न जात।
ब्रज पिंजरी रूँधि मनौ राखे, निकसन कौं अकुलात ॥
गोपी-गाइ सकल लघु-दीरघ, पीत-बरन, कृस-गात।
परम अनाथ देखियत तुम्ह बिन, केहि अवलंबहिं तात ॥
कान्ह-कान्ह कै टेरत तव धौं, अब कैसैं जिय मानत।
यह व्यवहार आजु लौं है ब्रज, कपट नाट छल ठानत ॥
दसहूँ दिसि तै उदित होत हैं, दावानल के कोट।
आँखिनि मूँदि रहत सनमुख ह्वै, नाम-कवच दै ओट ॥
ए सब दुष्ट हते हरि जेते, भए एकहीं पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब, समझि पुरातन हेट ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कह रही हैं—) पथिक ! इतनी बात (तुम श्यामसुन्दरसे) कह देना–मेरे श्रेष्ठ कुमार ! तुम्हारे बिना यहाँ जितने उत्पात हो रहे है, उनकी क्या चर्चा की जाय । पूतना और अघासुर यहाँसे हटानेपर भी नही हटते और व्रजके बालक अब वनमें नही जाते, मानो वे व्रजरूपी पीजड़ेमें बंद करके रखे गये हो और उससे निकलनेके लिये व्याकुल हो रहे हों। छोटी-बड़ी सब गोपियाँ और गायें पीले रंगकी और दुर्बल-शरीर हो गयी हैं। हे तात ! तुम्हारे विना ये अत्यन्त अनाथ दिखायी पड़ती हैं; भला (अब) ये किसका सहारा लें ? तब तो (ये) 'कन्हैया ! कन्हैया !' कहकर पुकारती रहती थी अब (तुम्हारे बिना) इनका चित्त कैसे मानेगा ? व्रजका आजतक यह व्यवहार है कि यहाँ कपट नही, अपितु छल करने (भर) के लिये यहाँके लोग (उसका) स्वाँग करते है । अब व्रजमे दसो दिशाओसे दावानलकी दीवारें उठा करती है, अतः आँखें बंद करके हम सब तुम्हारे नामरूपी कवचकी आड़ लेकर (उसके) सम्मुख रहती है । श्यामसुन्दर ! तुमने जितने इन सब दुष्टों (असुरों) को मारा था, वे (अब) एक ही माताके पेटसे फिर उत्पन्न

हो गये हैं, इसलिये पुराना प्रेम समझकर हमारी (अब) शीघ्र सहायता करो ।

(७८)

कहियौ, स्याम सौं समुझाइ ।
वह नातौ नहिं मानत मोहन, मनौ तुम्हारी धाइ ॥
एक वार माखन के काजैं राखे मैं अटकाइ ।
वाकौ विलग न मानौ मोहन, लागै मोहि वलाइ ॥
वारहिं बार यहै लौ लागी, गहे पथिक के पाँइ ।
सूरदास या जननी कौ जिय, राखौ वदन दिखाइ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कहती हैं—) 'पथिक ! श्याममुन्दरसे समझाकर कहना—मोहन ! यदि वह (माताका) सम्बन्ध नही मानते तो मुझे अपनी धाय (पालिका) ही मान लो । एक वार मक्खनके लिये मैंने तुम्हे बाँध रखा था, मोहन ! उसका दु ख मत मानना ! मुझे तुम्हारी सब विपत्तियाँ लग जायँ ।' वार-बार यही (उलाहनेकी) धुन उन्हे लगी थी और (यह कहते-कहते) उन्होने पथिकके पैर पकड़ लिये (तथा फिर कहने लगी,) तुम्ही जाकर कहो—'मोहन ! माताको मुख दिखलाकर उसके प्राण रख लो ।'

राग बिलावल

(७९)

जद्यपि मन समुझावत लोग ।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग ॥
प्रात काल उठि माखन-रोटी, को विन माँगें दैहै ।
को मेरे वा कान्ह कुवर कौं, छिन-छिन अंकम लैहै ॥
कहियौ पथिक जाइ, घर आवहु, राम-कृष्न दोउ भैया ।
सूर स्याम कित होत दुखारी, जिन कें मो-सी मैया ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कह रही हैं—सखी !) यद्यपि लोग मेरे मनको समझाते हैं, तथापि मेरे मोहनके मुखयोग्य मक्खन देखकर मुझे वेदना होती है। भला, कौन उसे सबेरे उठनेपर बिना माँगे मक्खन और रोटी देगा और कौन मेरे उस कुँवर कन्हाईको क्षण-क्षणमे गोद लेगा ? पथिक ! जाकर कहना कि तुम दोनों भाई बलराम और कृष्ण (अब) घर आ जाओ। हे श्यामसुन्दर ! जिसके मेरे-जैसी माता है, वह क्यो दुखी हो ?

राग रामकली

(८०)

मेरौ कहा करत ह्वैहै।
कहियौ जाइ, वेगि पठवहिं गृह, गाइनि को द्वैहै॥
दीजै छाँड़ि नगरवारी सब, प्रथम ओर प्रतिपारौ।
हमहूँ जिय समुझैं नहिं कोऊ, तुम्ह तैं हितू हमारौ॥
आजहिं आज, काल्हि-काल्हिहिं करि, भलौ जगत जस लीन्हौं।
आजुहिं कालि कियौ चाहत हौ, राजु अटल करि दीन्हौं॥
परदा सूर बहुत दिन चलतौ, दोहुन फबती लूटि।
अंतहु कान्ह आइहैं गोकुल, जनम-जनम की ऊटि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कह रही हैं—) मेरा लाल क्या करता होगा ? (अरे पथिक !) जाकर (वसुदेवजीसे) कहना कि उसे शीघ्र घर भेज दें, यहाँ उसके बिना गायें कौन दुहेगा ? (मोहन ! अब) सब नगर-नारियोंको छोड़ दो और अपने पहिलेके लोगोंका पालन करो, जिससे हम अपने चित्तमें समझें कि तुमसे अधिक कोई हमारा हितैषी नही है। आज-आज तथा कल-कल (आज आता हूँ, कल आऊँगा) करते हुए तुमने संसारमे अच्छा सुयश लिया, यहाँ (व्रज आनेको) आज-कल (टालमटोल) ही करना चाहते हो और वहाँ राज्य अविचल कर दिया। (तुम्हारा) यह पर्दा (रहस्य) बहुत दिन चलता (कि तुम नन्दके पुत्र हो) और दोनों (व्रज तथा मथुराके लोगों)

के लिये (यह तुम्हारे सुखकी) लूट शोभा (भी) देती, किन्तु कन्हैया जन्म-जन्मकी उमंगोंके कारण अन्तमें गोकुल आयेंगे ही ।

राग सारंग

(८१)

सँदेसौ देवकी सौं कहियौ ।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ ॥
जदपि टेव तुम्ह जानति उन्ह की, तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैं, माखन-रोटी भावै ॥
तेल-उबटनौ अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते ।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती, क्रम-क्रम करि कैं न्हाते ॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैनि-दिन, बढ्यौ रहत उर सोच ।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन, ह्वैहै करत सँकोच ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कह रही हैं—पथिक !) देवकीसे यह सदेश कहना कि मैं तो तुम्हारे पुत्रकी धाय हूँ, अतः मुझपर कृपा ही करती रहना । यद्यपि तुम उन (अपने पुत्र) का स्वभाव जानती हो, फिर भी मुझसे यह कहे बिना नही रहा जाता कि मेरे दुलारे लालको सवेरा होते ही मक्खन-रोटी प्रिय लगती है ! वे तेल, उबटन और गरम पानी देखकर भाग जाते थे; अतः जो-जो वह माँगता था, वही-वही मैं देती थी और इस प्रकार धीरे-धीरे करके स्नान कराती थी । अरे पथिक ! सुन, मुझे रात-दिन यही सोच बढा रहता है कि मेरा अत्यन्त दुलारा मोहन (वहाँ मथुरामें) संकोच करता होगा ।

राग सोरठ

(८२)

मेरे कान्ह, कमल-दल-लोचन ।
अब की बेर बहुरि फिरि आवहु, कहा लगे जिय सोचन ॥

यह लालसा होति मेरे जिय, बैठी देखत रैहौं।
गाइ चरावन कान्ह कुँवर सौं, बहुरि न कबहूँ कैहौं॥
करत अन्याइ न बरजौं कबहूँ, अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नैन भरि देखौं, हरि-हलधर की जोरी॥
दिवस चारि मिलि जाहु साँवरे, कहियौ यहै सँदेसौ।
अब की वेर आनि सुख दीजै, सूर मिटाइ अँदेसौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा कह रही है—) मेरे कमलदलके समान नेत्रोवाले कन्हैया! (तुम) अपने चित्तमे क्या सोचने लगे हो? अरे, इस बार फिर (व्रज) लौट आओ! मेरे मनमे यही लालसा जाग्रत् रहती है कि तुम्हे बैठी देखती रहूँ और (अपने) कुँवर कन्हैयासे फिर कभी गायें चरानेको न कहूँ। कोई भी अनीति—यहाँतक कि मक्खनकी चोरी करते भी उन्हे कभी रोकूँ नही; बस, अपने जीते-जी आँखें भरकर श्याम-बलरामकी जोड़ी देखा करूँ। पथिक! यही संदेश कहना कि श्यामसुन्दर! चार दिनके लिये आकर मिल जाओ। इस बार आकर (हमे) आनन्दित कर दो, जिससे (हमारा) सोच मिट जाय—दूर हो जाय।

(८३)

अब कै लाल, होहु फिरि बारे।
कैसैं टेव मिटति मन-मोहन, आँगन डोलत फिरत उघारे॥
माखन कारन आरि करत जो, उठि पकरत दधि-माठ सकारे।
कछुक भाजि लै जात जु भावत, सुख पावत जब खात ललारे॥
जा कारन हौं भरमति बिह्वल, लै कर लकुट फिरत गुन हारे।
सूरदास-प्रभु तुम्ह मनमोहन, भूप भए देखति हौं प्यारे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे माता यशोदा कह रही हैं—) लाल! इस बार फिर बालक बन जाओ। मनमोहन! मेरे आँगनमे तुम नंगे घूमते

फिरते थे, वह स्वभाव तुम्हारा कैसे छूट जायगा ? याद करो—मक्खनके लिये तुम किस प्रकार मचला करते थे और सवेरे ही उठकर दहीका मटका पकड़ लेते थे और जो तुम्हे प्रिय लगता था, वही थोडा-सा लेकर भाग जाते थे तथा जब तुम इस प्रकार खाते थे लाल ! तब मै सुखी होती थी। जिसके लिये मै हाथमे छडी लेकर अपने (लज्जादि) गुण त्यागकर व्याकुल होकर भटकती-फिरती थी, वही मनमोहन प्यारे ! तुम (अब) राजा हो गये हो, यह मै देखती हूँ।

पंथी-वचन देवकीके प्रति

राग आसावरी

(८४)

हौं यहाँ गोकुल ही तै आई।
देवकि माइ पाँइ लागति हौं, जसुमति मोहि पठाई॥
तुम सौं महर जुहार कह्यौ है, पालागन नँद-नारी।
मेरे हूतौ राम-कृष्न कौ भैंट्यौ भरि अँकवारी॥
औरौ इक संदेस कह्यौ है, कहौ तौ तुम्हैं सुनाऊँ।
बारक बहुरि तुम्हारे सुत कौ, कैसैहु दरसन पाऊँ॥
तुम्ह जननी-जग-बिदित सूर प्रभु, हम हरि की हैं धाइ।
कृपा करौ पठवौ इहि नातें, जीवैं दरसन पाइ॥

(पथिक नारी कह रही है—) मै यहाँ गोकुलसे ही आयी हूँ। माता देवकी ! मै आपके चरण स्पर्श करती हूँ, मुझे यशोदाजीने भेजा है। आपसे श्रीव्रजराजने प्रणाम और नन्दपत्नीने चरणस्पर्श कहा है (और उन्होने कहा है कि आप) मेरी ओरसे बलराम तथा श्रीकृष्णको भुजाओंमें भर तथा हृदयसे लगाकर मिलना। (उन्होने) और भी एक संदेश कहा है, यदि आप आज्ञा दें तो आपको सुनाऊँ—(वह यह कि) 'किसी प्रकार आपके पुत्रका हम एक बार फिर दर्शन पा जायँ। यह तो संसारमें

विख्यात है कि आप श्यामसुन्दरकी माता और मैं श्यामसुन्दरकी धाय हूँ; अतः कृपा करके इसी सम्बन्धसे उन्हें (एक वार यहाँ) भेज दीजिये, जिससे (हम) उनका दर्शन पाकर जीवित रहें।'

राग सारंग

(८५)

जौ पै राखति हौ पहिचानि।
तौ अव कैं वह मोहनि मूरति, मोहि दिखावौ आनि॥
तुम्ह रानी वसुदेव-गेहिनी, हम अहीर ब्रजवासी।
पठै देहु मेरे लाल लड़ैतैं, वारौं ऐसी हाँसी॥
भली करी कंसादिक मारे, सव सुर-काज किए।
अव इन्हि गैयन कौन चरावै, भरि-भरि लेति हिए॥
खान-पान, परिधान, राज-सुख, जो कोउ कोटि लड़ावै।
तदपि सूर मेरौ वाल कन्हैया, माखनहीं सचु पावै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीयशोदाजीका संदेश पथिक-नारी फिर कहती है—देवकी रानी !) यदि आप (पूर्वकी) पहिचान (सम्बन्ध—परिचय) मानती हैं तो वह (श्यामसुन्दरकी) मोहिनी मूर्ति अबकी वार आकर मुझे दिखा जायँ। आप श्रीवसुदेवजीके घरकी रानी हैं और हम ब्रजवासी अहीर, मेरे दुलारे लालको (अव) यहाँ भेज दीजिये। यह परिहास (जो आप मोहनको अपना पुत्र कहा करती हैं) ठीक नहीं। उसने अच्छा किया कि कंस आदि (राक्षसों) को मार देवताओंका सब काम कर दिया; किन्तु अब इन गायोंको कौन चरायेगा ? इनका हृदय तुम्हारे लिये वार-वार भर आता है। भोजनकी, पीनेकी और वस्त्रादि पहिननेकी सामग्रीके साथ राज्यके दूसरे सुखोंसे (उसे) कोई करोड़ों प्रकारसे (ही क्यों न) दुलराये, परन्तु मेरा नन्हा-सा कन्हैया (तो) मक्खनसे ही आनन्दित होता है।

राग सोरठ

(८६)

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कुछ वैसहिं धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै॥
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिन, उरहन कोउ न कहै॥
जो व्रज में आनन्द हुतौ, मुनि मनसाहू न गहै।
सूरदास-स्वामी बिन गोकुल, कौड़ी हू न लहै॥

सूरदासजीके शब्दोमें फिर पथिक-नारी श्रीयशोदाजीका सँदेसा कहती है—'मेरे कुँवर कन्हैयाके विना सब कुछ वैसे ही धरा रखा है (किसी वस्तुको कोई काममें ही नही लाया)। अब सवेरे ही उठकर कौन मक्खन ले और कौन हाथसे मथानीकी रस्सी पकड़े ?' इस प्रकार यशोदाजी अपने सुनसान भवनमें पुत्रके गुण सोच-सोचकर दुःख सहती हैं। (और सोचती है—पहिले तो) प्रत्येक दिन सवेरे उठते ही गोपियाँ मुझे (उलाहना देनेको) घेर लेती थी, पर अब कोई उलाहना नही देती। (उस समय) व्रजमें जो आनन्द था, वह मुनियोके मनकी पकड (ध्यान) में भी नही आता था; किंतु अब अपने स्वामीके विना गोकुल अपने मूल्यमें एक कौड़ी भी नही पाता (वह कौड़ी मूल्यका भी नही रहा)।

गोपी-विरह-वर्णन

राग सारंग

(८७)

चलत गुपाल के सब चले।
यह प्रीतम सौं प्रीति निरन्तर, रहे न अरध-पले॥
धीरज पहिल करी चलिवे की, जैसी करत भले।
धीर चलत मेरे नैननि देखे, तिहिं छिन आँसु हले॥

हैं; किंतु वह उष्ण है या शीतल, इसका पता तो पीछे जाकर पाती है। सभी कहते हैं कि युद्ध करना अत्यन्त सरल है और तलवार तो पुष्पलताके समान है; किंतु जो योद्धा (युद्धमें) अपना मस्तक देता है, वही (युद्धका) व्यवहार (वास्तविक रूप) जानता है।

(८९)

बातन सब कोउ जिय समुझावै।
जिहि बिधि मिलनि मिलै वे माधो, सो बिधि कोउ न बतावै ॥
जद्यपि जतन अनेक सोचि-पचि, तिरिया मन बिरमावै।
तद्यपि हठी हमारे नैना, और न देख्यौ भावै ॥
बासर-निसा प्रान-बल्लभ तजि, रसना और न गावै।
सूरदास-प्रभु प्रेमहिं लगि कैं, कहिऐ जो कहि आवै ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) सब लोग बातोंसे हमारे मनको समझाते हैं; किंतु जिस विधिसे वे माधव मिलें वह विधि (रास्ता) कोई नहीं बतलाता। यद्यपि हम स्त्रियाँ अनेक उपाय सोच-सोचकर थक जाती हैं तथा मनको अनेक कामोंमें लगाकर बहलाती हैं; फिर भी हमारे हठी नेत्रोंको दूसरेका देखना अच्छा नहीं लगता। रात-दिन प्राणवल्लभ (श्यामसुन्दर) को छोड़कर हमारी जीभ किसी दूसरेका गुणगान नहीं करती। अस्तु, स्वामीके प्रेममें लगनेपर (हमें) जिससे जो कहा जाय, (वह) कह ले।

राग सारंग

(९०)

कहि गए थोरे दिन की प्रीति।
कहँ वह प्रीति, कहाँ यह बिछुरनि, कह मधुबन की रीति ॥
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई बिपरीति।
कैसैं प्रान रहत दरसन बिन, मनौ गए जुग बीति ॥

कृपा करौ गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन बिन, भइ भुस पर की भीति॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—मोहन ! तुम) थोड़े दिनका प्रेम करके चले गये। कहाँ तो (आपका) वह प्रेम और कहाँ यह वियोग, क्या मथुराकी (यही) रीति है ? मनमोहन ! अबकी बार मिल जाओ ! (यह) उलटी बात (प्रेमके विरुद्ध निष्ठुरता) बहुत हो गयी। (तुम्हारे) दर्शन बिना (हमारे) प्राण इस प्रकार छटपटाते रहते हैं मानो (दर्शन किये) युग बीत गये। गिरधरलाल ! हमारे ऊपर (अब) कृपा करो; (क्योंकि तुम्हारे) प्रेमने हमारे शरीरपर विजय प्राप्त कर ली (उसे जर्जर कर दिया) है, अतः तुम्हारे मिलनके बिना हम भूसेपर उठायी दीवालके (समान) अब गिरी, तब गिरी-जैसी हो गयी है।

राग धनाश्री

(९१)

प्रीति करि दीन्ही गरें छुरी।
जैसैं बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी॥
मुरली मधुर चेप काँपा करि, मोर-चंद फँदवारि।
बंक बिलोकनि लगीं लोभ-बस, सकीं न पंख पसारि॥
तरफत छाँड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार।
सूरदास-प्रभु संग कलपतरु, उलटि न बैठी डार॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) प्रेम करके (मोहनने हमारे) गलेपर (इस भाँति) छुरी फेर दी, जैसे व्याध पहले कपटपूर्वक दाना चुगाकर पीछे (पक्षीके साथ) घात करता है। (श्यामसुन्दरने) मधुर वंशीध्वनिरूपी गोद लगी छड़ी (पक्षी-फँसानेका बाँस) मे मयूरपिच्छकी चन्द्रिकाका फंदा बनाया। अतः हम उनकी तिरछी

कृपा करौ गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन बिन, भइ भुस पर की भीति॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—मोहन! तुम) थोड़े दिनका प्रेम करके चले गये। कहाँ तो (आपका) वह प्रेम और कहाँ यह वियोग, क्या मथुराकी (यही) रीति है? मनमोहन! अबकी बार मिल जाओ! (यह) उलटी बात (प्रेमके विरुद्ध निष्ठुरता) बहुत हो गयी। (तुम्हारे) दर्शन विना (हमारे) प्राण इस प्रकार छटपटाते रहते हैं मानो (दर्शन किये) युग बीत गये। गिरधरलाल! हमारे ऊपर (अब) कृपा करो; (क्योंकि तुम्हारे) प्रेमने हमारे शरीरपर विजय प्राप्त कर ली (उसे जर्जर कर दिया) है, अतः तुम्हारे मिलनके बिना हम भूसेपर उठायी दीवालके (समान) अब गिरी, तब गिरीं-जैसी हो गयी हैं।

राग धनाश्री

(९१)

प्रीति करि दीन्ही गरें छुरी।
जैसैं बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी॥
मुरली मधुर चेप काँपा करि, मोर-चंद फँदवारि।
बंक बिलोकनि लगीं लोभ-बस, सकीं न पंख पसारि॥
तरफत छाँड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार।
सूरदास-प्रभु संग कलपतरु, उलटि न बैठी डार॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी!) प्रेम करके (मोहनने हमारे) गलेपर (इस भाँति) छुरी फेर दी, जैसे व्याध पहले कपटपूर्वक दाना चुगाकर पीछे (पक्षीके साथ) घात करता है। (श्यामसुन्दरने) मधुर वंशीध्वनिरूपी गोद लगी छड़ी (पक्षी-फँसानेका बाँस) में मयूरपिच्छकी चन्द्रिकाका फंदा बनाया। अतः हम उनकी तिरछी

चितवनके लोभवश (पक्षीके समान) (उसमें) फँस गयो, पंख भी फैला नहीं सकी। (इस प्रकार फँसाकर वे हमे) तड़पती छोड़कर मथुरा चले गये, और फिर देख-भाल (तक) नहीं की, जिससे हम अपने स्वामीके समागमरूपी कल्पवृक्षकी डालपर फिर न बैठ सकी (उनका साथ फिर नही मिला)।

राग मलार

(९२)

देखौ, माधौ की मित्राइ।
आई उघरि कनक-कलई-सी, दै निजु गए दगाइ॥
हम जाने हरि हितू हमारे, उनके चित्त ठगाइ।
छाँड़ी सुरति सबै ब्रज-कुल की, निठुर लोग भए माइ॥
प्रेम निबाहि कहा वे जानै, साँचे ही अहिराइ।
सूरदास बिरहिनी बिकल-मति, कर मींजै पछिताइ॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी!) माधवकी मित्रता (तो) देखो, (किसी वस्तुपर चढी) सोनेकी कलई (मुलम्मे) के उतर जानेपर (असली वस्तु) के प्रकट हो जानेके समान उसका वास्तविक रूप सामने आ गया। वे स्वयं हमें धोखा दे गये। हम तो समझती थी कि श्यामसुन्दर हमारे हितैषी हैं; किंतु उनके चित्तमें (हमे) ठगनेका भाव था। अस्तु, सखी! वे दोनों निष्ठुर हो गये और सभी व्रजकुलका ध्यान (उन्होने) छोड़ दिया। वे, भला, प्रेमका निर्वाह करना क्या जानें, जो नाग (सर्पोंके राजा शेष) हैं। सूरदासजी कहते है कि इस प्रकार वियोगिनीकी बुद्धि व्याकुल हो रही है और वह हाथ मल-मलकर पश्चात्ताप कर रही है।

राग कान्हरो

(९३)

ऐसे हम नहिं जाने स्यामहि।
सेवा करत करी उन्ह ऐसी, गई जाति-कुल-नामहि॥

तन-मन प्रीति लाइ जो तोरै, कौन भलाई तामहिं।
वे का जानैं पीर पराई, लुब्धे अपने कामहिं॥
नगर-नारि-रति के रति-नागर, रते कूबिजा वामहिं।
अंतहुँ सूर सोइ पै प्रगटै, होइ प्रकृति जो जा महिं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) हमने श्यामसुन्दरको ऐसा (निष्ठुर) नही समझा था—उन्होने सेवा करते हुए (हमारे साथ) ऐसा व्यवहार किया, जिससे हम जाति, कुल तथा नाम (यश) से च्युत हो गयीं। जो कोई तन-मनसे प्रेम करके फिर उसे तोड़ दे, उसमें क्या साधुता है? वे, भला, दूसरेकी पीड़ा क्या जानें, जो अपने काम (स्वार्थ) पर ही लुभाये रहते हैं। अब तो (वे) नगरकी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनेमे अत्यन्त क्रीड़ा-चतुर हो गये हैं और कुब्जा (-जैसी) स्त्रीमे अनुरक्त हो गये है। जिसका जैसा स्वभाव होता है, अन्तमे वही सामने आता है।

राग मलार

(९४)

एकहिं बेर दई सब ठेरी।
तब कित डोरि लगाइ, चोरि मन, मुरलि अधर धरि टेरी॥
बाट-घाट बीथी-ब्रज घर-बन, संग लगाए फेरी।
तिन्ह की यह करि गए पलक में, पारि बिरह-दुख-बेरी॥
जौ पै चतुर सुजान कहावत, गही समझियौ मेरी।
बहुरि न सूर पाइहौ हम-सी, बिन दामन की चेरी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) एक ही बार जब हमें सब प्रकारसे धक्का देना था (उपेक्षा कर देनी थी), तब उस समय क्यों ओठोपर वंशी रख तथा उसे बजा प्रेमकी डोरी (फंदा) लगाकर हमारा मन चुराया। (जिनके साथ) मार्गोंमें, घाटोंमें, गलियोंमें, ग्राममें, घरमें एवं वनमें फेरी (चक्कर) लगाया करते थे, उन्हीको

वियोगरूपी दुःखकी बेड़ियाँ डालकर एक क्षणमें यह अवस्था कर गये! यदि वे समझदार एवं चतुर कहाते हों तो यह मेरी (कही) बात पक्की समझना कि हमारे समान बिना मूल्यकी दासियाँ फिर नहीं पाओगे।

राग नट

(९५)

अब तौ ऐसेई दिन मेरे।
सुनि री सखी, दोष नहिं काहू, हरि हित-लोचन फेरे॥
मृग-मद मलय कपूर कुमकुमा, ए सब सत्य तचे रे।
मंद पवन, ससि, कुसुम सुकोमल, तेउ देखियत करेरे॥
बन-बन बसत मोर, चातक, पिक, आपुन दिए बसेरे।
अब सोइ बकत जाहि जोइ भावै, बरजे रहत न मेरे॥
जे द्रुम सींचि-सींचि अपने कर, किए बढ़ाइ बड़ेरे।
तेइ सुनि सूर किसल गिरिवर भए, आनि नैन-मग घेरे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) अब तो मेरे दिन ऐसे ही बीतेंगे। सखी! सुन, इसमें किसीका दोष नहीं; श्यामसुन्दरने ही प्रेमपूर्ण नेत्र (मेरी ओरसे) घुमा लिये। सच कहती हूँ, (उसी दिनसे) कस्तूरी, चन्दन, कपूर और कुंकुम (केसर)—ये सब मुझे तप्त करते हैं और मन्द वायु, चन्द्रमा तथा अत्यन्त कोमल पुष्प भी (मुझे) कठोर दिखायी पड़ते हैं। प्रत्येक वनमें मयूर, चातक और कोकिल बसते हैं, उन्होंने ही (वहाँ इन्हें) बसेरा (निवास) दिया था। (उनमेंसे) जिसे जो अच्छा लगता है, वही अब बकता (बोलता) रहता है; मेरे मना करनेसे कोई मानते नहीं। जिन वृक्षोंको (हमने) अपने हाथोंसे सींच-सींचकर बढ़ाते हुए बड़ा किया था, सुनो, (अब) उनके ही किसलय (नवीन पत्ते) मेरे लिये भारी पर्वत हो मेरे नेत्रोंका मार्ग आकर रोके रहते हैं (उन्हें देखकर नेत्र दुखी होते हैं)।

राग ईमन

(९६)

नाथ, अनाथन की सुधि लीजै ।
गोपी, ग्वाल, गाइ, गोसुत सब, दीन-मलीन दिनहिं दिन छीजै ॥
नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त व्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनौ हमारी, बारकहूँ पतियाँ लिखि दीजै ॥
चरन-कमल-दरसन नव नौका, करुनासिंधु जगत जस लीजै ।
सूरदास-प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन व्रज कीजै ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) नाथ ! हम अनाथोंकी सुधि लो; (अब व्रजमें) गोपियाँ, गोपकुमार, गायें और बछड़े—सब दीन-मलीन होकर दिनो-दिन दुर्बल होते जा रहे हैं । नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा इतनी बढ़ गयी है कि उसमे व्रज डूब रहा है; अतः उसे हाथ पकडकर क्यों नहीं बचा लेते ? (अरे !) हमारी इतनी-सी प्रार्थना सुन लो कि (कम-से-कम) एक बार तो पत्र लिख दो । हे करुणासागर ! आपके चरण-कमलोंका दर्शन ही (हमारे लिये) नवीन नौका है, अतः (उसमें बैठाल अर्थात् दर्शन देकर) संसारमे सुयश लीजिये । आपके मिलनेकी हमें आशा (लग रही) है, (इसलिये) एक बार व्रजमे आ जाइये ।

राग सारंग

(९७)

दिखियति कालिंदी अति कारी ।
अहो पथिक कहियो उन हरि सौं, भई बिरह-जुर-जारी ॥
गिरि-प्रजंक तैं गिरति धरनि धँसि, तरँग तरफ तन भारी ।
तट बारू, उपचार चूर, जल-पूर प्रस्वेद पनारी ॥
बिगलित कच-कुस काँस कूल पर, पंक जु काजल सारी ।
भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, दिसि-दिसि दीन दुखारी ॥

निसि-दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी।
सूरदास-प्रभु जो जमुना-गति, सो गति भई हमारी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) पथिक ! उन श्यामसुन्दरसे कहना कि (आजकल) यमुना अत्यन्त काली दिखायी देती है; क्योंकि वह आपके वियोगरूपी ज्वरके द्वारा जलायी गयी है। वह पर्वतरूपी पलँगसे पृथ्वीमें धँसती-सी गिरती है और उसके शरीरमें तरंगरूपी अत्यन्त तड़पन है। (उसके) तटपर जो रेत है, वही ओषधका चूर्ण है तथा जलका प्रवाह (ही) पसीनेकी धारा बह रही है। उसके किनारे जो कुश तथा काँस हैं, वे ही उसके बिखरे केश और कीचड़ ही (उसकी) मैली साड़ी है। (धारामें) जो भँवरें पड़ती हैं, वही (उसका) उद्भ्रान्त दशामें अत्यन्त दीन तथा दुखी होकर सब दिशाओंमें भटकते फिरना है। रात-दिन चक्रवाकी जो 'पी-पी' रटती है, वही मानो उसकी दशा सूचित करनेवाली है। स्वामी ! जो दशा यमुनाकी है, वही दशा (आपके बिना) हमारी हो गयी है।

(९८)

परेखौ कौन बोल कौ कीजै।
ना हरि ! जाति न पाँति हमारी, कहा मानि दुख लीजै॥
नाहिन मोर-चंद्रिका माथें, नाहिन उर बनमाल।
नहिं सोभित पुहुपन के भूषन, सुंदर स्याम तमाल॥
नंद-नँदन, गोपी-जन-बल्लभ, अब नहिं कान्ह कहावत।
बासुदेव, जादव-कुल-दीपक, बंदी जन बरनावत॥
बिसरयौ सुख नातौ गोकुल कौ, और हमारे अंग।
सूर-स्याम वह गई सगाई, वा मुरली के संग॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) किस बातका पश्चात्ताप करती हो ? श्यामसुन्दर हमारी जाति-पाँतिके तो हैं नहीं,

फिर क्या (सम्बन्ध) मानकर हम दुखी हो। अब न तो उनके मस्तकपर मयूरपिच्छकी चन्द्रिका है और न हृदयपर वनमाला। अब तमाल वृक्षके समान श्यामसुन्दरके सुन्दर शरीरपर पुष्पोके आभूषण शोभित नही होते। (यही नही) अब कन्हैया 'नन्दनन्दन' तथा 'गोपी-जन-वल्लभ' (भी) नहीं कहलाते, अपितु बंदीजनोके द्वारा वासुदेव, यादवकुलके दीपक कहलाकर अपना वर्णन कराते है। उन्हे (अब) गोकुलका सुखद सम्बन्ध तथा हमारे शरीरका ध्यान भूल गया। श्यामसुन्दरके साथ हमारा वह सम्बन्ध तो मुरलीके साथ (जबसे उन्होने मुरली छोड़ी तबसे) ही छूट गया।

(९९)

सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरहिं तैं सिंघासन बैठे, सीस नाइ मुसकात॥
मोर-पच्छ कौ बिजन बिलोकत, बहरावत कहि बात।
जौ कहुँ सुनत हमारी चरचा, चालतहीं चपि जात॥
सुरभी लिखत चित्र की रेखा, सोचें हू सकुचात।
सूरदास जो ब्रजहि बिसारयौ, दूध-दही कत खात॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी!) सुना जाता है कि (वहाँ) श्यामसुन्दर (अब) वंशी देखकर लजा जाते और लोगोमे दूर ही सिंहासनपर बैठे सिर झुकाये मुस्कराते है (खुलकर हँसते भी नही)। मयूरपिच्छका बना पंखा देखकर (अन्य) बातोमे लगकर अपने मनको बहलाते (दूसरी ओर ले जाते) हैं; और यदि कहीं हमारी चर्चा सुनते है तो (उस) चर्चाके चलते ही लज्जित हो जाते है। (यही नही, वे) चित्रकी रेखाओमे बनायी जानेवाली गायकी (बात) सोचकर संकुचित हो जाते है। जिन्होने व्रजको (इस प्रकार) विस्मृत कर दिया है तो (वे) दूध-दही कैसे खाते होंगे (अर्थात् उन्हे देखकर भी डर जाते होगे)।

राग मलार

(१००)

कहा परदेसी कौ पतियारौ ।
प्रीति बढाइ चले मधुबन कौं, बिछुरि दियौ दुख भारौ ॥
ज्यौं जल-हीन मीन तरफत, त्यौं व्याकुल प्रान हमारौ ।
सूरदास-प्रभु के दरसन बिनु, दीपक भौन अँध्यारौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) परदेशीका विश्वास क्या, (वे तो हमसे) प्रेम बढाकर मथुरा चले गये और हमें वियोगका भारी दु:ख दे गये । जैसे जलसे रहित (निकाली हुई) मछली तडपती है, वैसे ही उनके बिना हमारे प्राण व्याकुल हो रहे हैं । (आज) स्वामीके दर्शनरूपी दीपकके बिना (व्रजरूपी) भवनमें अन्धकार हो गया है ।

(१०१)

कहा परदेसी कौ पतियारौ ।
पीछैं ही पछिताइ मिलौगे, प्रीति बढ़ाइ सिधारौ ॥
ज्यौं मृग नाद रीझि तन दीन्हौ, लाग्यो बान बिषारौ ।
प्रीतिहि लिएं प्रान बस कीन्हौ, हरि तुम्ह यहै बिचारौ ॥
बलि अरु बालि सुपनखा बपुरी, हरि तैं कहा दुरायौ ।
सूरदास-प्रभु जानि भले हौं, भरथौ भराइ ढरायौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी !) परदेशीका क्या विश्वास; क्योकि वह प्रेम बढाकर चला (तो) जायगा और पीछे केवल पश्चात्ताप मिलेगा । जैसे हिरनने संगीतके स्वरपर मुग्ध होकर शरीर न्योछावर कर दिया, क्योकि उसे (प्रेमके कारण ही व्याधका) विषैला बाण लगा, उसी प्रकार श्यामसुन्दर ! तुमने हमारे प्राणोको अपने प्रेममें लगाकर वशमे कर लिया (इसका) विचार तो करो । हे हरि ! राजा बलिने, कपिराज बालीने तथा बेचारी शूर्पणखाने (तुम) से क्या छिपाया था

(जो उनके साथ निष्ठुर व्यवहार किया) ? स्वामी ! मैंने भला जानकर (ही तुम्हे अपने अन्तःकरणमें) भरा (संचित किया) था, किंतु (तुमने) अपने स्वरूपको भर (पूर्ण कर) के ढुलका दिया—अपने-आपको खीच लिया ।

राग सारंग

(१०२)

सखी री, हरिहि दोष जनि देहु ।
तातैं मन इतनौ दुख पावत, मेरौइ कपट सनेहु ॥
बिद्यमान अपने इन नैननि, सूनौ देखति गेहु ।
तदपि, सखी ! ब्रजनाथ बिना उर, फटि न होत बड़ बेहु ॥
कहि-कहि कथा पुरातन सजनी, अब नहिं अंतहि लेहु ।
सूरदास तन यौं जु करौंगी, ज्यौं फिरि फागुन मेहु ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई दूसरी गोपी कहती है—) सखी ! श्यामसुन्दरको दोष मत दो, मैं अपने चित्तमे इसीलिये इतना दुःख पाती हूँ कि मेरा प्रेम ही कपटपूर्ण था । अपने इन नेत्रोंके रहते घरको सूना देखती हूँ; फिर भी, सखी ! व्रजनाथके बिना हृदय फटकर बड़ा नहीं हो जाता । सखी ! बार-बार (श्यामसुन्दरके मिलन की) पुरानी कथाएँ कह-कहकर अब प्राण मत लो । अब मैं अपने शरीरको ऐसा बना लूँगी, जैसे फाल्गुनमें फिर वर्षा (अर्थात् जीवनको नये ढंगसे प्रारम्भ करना है, जैसे फाल्गुनमे पुनः वर्षा आ जाती है) ।

राग मलार

(१०३)

अब कछु औरहि चाल चली ।
मदन गुपाल बिना या ब्रज की, सबै बात बदली ॥

गृह कंदरा समान, सेज भइ सिंघहु चाहि बली।*
सीतल चंद सु तौ सखि कहियत, तातैं अधिक जली॥
मृगमद मलय कपूर कुमकुमा, सींचति आनि अली।
एक न फुरत बिरह जुर तै कछु, लागत नाहिं भली॥
अमृत-बेलि सूर के प्रभु विनु, अब बिष फलनि फली।
हरि-बिधु बिमुख नाहिनै विगसत, मनसा कुमुद-कली॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) अब कुछ दूसरी ही चाल (प्रथा) चल पडी है, (देखो न,) मदनगोपालके विना इस व्रजकी सब बात बदल गयी है। घर पर्वतकी गुफाके समान हो गया और शय्या सिंहसे भी अधिक कठोर (असह्य) हो गयी है। सखी ! चन्द्रमा शीतल कहा जाता है, पर मैं उससे अधिक जली (संतप्त) हूँ। सखियाँ (मुझे) कस्तूरी, चन्दन, कपूर, कुंकुम (केसर) लाकर सीचती (उनका लेप करती) हैं; किन्तु वियोगके ज्वरके कारण उनमेसे एक भी लाभ नही करता और न वह अच्छा ही लगता है। स्वामीके विना (प्रेमकी) अमृतलता अब विषके फल फल रही है और न श्यामसुन्दरके चन्द्रमुखके विना मन (रूपी) कुमुदिनीकी कलिका विकसित होती है।

---

* इस पंक्तिके दो पाठ मिलते हैं, प्रथम पाठ है—'गृह कन्दरा समान सेजबिष, सिंघहु चाहि बली।' दूसरा पाठ है—'गृह कन्दरा समान सेज भई, सिंघहु चाहि बली।' 'गिरि-कंदरा०' पाठ किसी प्रतिका नहीं है। ऊपर लिखे दोनो पाठ बहुप्रतिसम्मत है। एक तीसरा पाठ भी मिलता है, जैसे—'दुग्ध-फेन सम सेज भई हरि, गृह आरन्य-थली।' अत. प्रथम पाठके अनुसार यहाँ अर्थ होगा—'घर कंदरा-समान तथा सेज (शय्या) विषके समान अथवा सिंहसे भी अधिक कठोर (असह्य) हो गयी है।' और तीसरे पाठका अर्थ होगा कि 'दूध-फेनके समान (स्वच्छ-शीतल) शय्या हरि—सिंहके समान कठोर अथवा सूर्यके समान तापकारी और घर वनस्थलीके समान डरावना हो चला है।'

(१०४)

अब वे बातैं उलटि गईं।
जिन्ह बातन लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं॥
रजनी जाम स्याम-सुंदर सँग, अरु पावस की गरजनि।
सुख-समूह की अवधि माधुरी, पिय रस-बस की तरजनि॥
मोर-पुकार, गुहार कोकिला, अलि-गुंजार सुहाई।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुँवर कन्हाई॥
चंदन, चंद, समीर अगिन सम, तनहि देत दव लाई।
कालिंदी अरु कमल, कुसुम सब, दरसन ही दुखदाई॥
सरद बसंत, सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई।
पावस जरैं सूर के प्रभु बिन, तरफत रैनि बिहाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) अब वे बातें (ही) उलटी हो गयी हैं; सखी ! जिन बातोंसे (पहिले) सुख मिलता था, वे भी अब दुस्सह (कष्टदायी) हो गयी हैं। श्यामसुन्दरके साथ रातके प्रहरमे रहते समय वर्षाऋतुकी गर्जना भी आनन्दसमूहकी (अपरिमित) सीमा थी तथा प्रियतमका प्रेमवश डाँटना भी बड़ा मधुर लगता था। (यही नहीं, उस समय) मयूरोंका पुकारना (बोलना), कोकिलका कुहकना और भौंरोंकी गुंजार सुहावनी लगती थी; किंतु अब वे ही कुँवर कन्हैयाके बिना सब मेढकके टर्राने-जैसी लगती है। चन्दन, चन्द्रमा और पवन भी अग्निके समान शरीरमें ज्वाला उत्पन्न कर देते हैं तथा यमुना और कमलके पुष्प—सब देखनेमें ही दुःखदायक लगते हैं। शरद्, वसन्त, शिशिर और ग्रीष्म (ऋतुओंमे) हेमन्त ऋतुकी ही अधिकता रहने लगी है तथा वर्षा ऋतुमे (मैं) स्वामीके बिना जलती रहती हूँ तथा तड़पते हुए रात्रि व्यतीत करती हूँ।

जाता। माता-पिताके (साथ अन्य) घरके सब डाँटते हैं कि (तूने) इस कुलकी मर्यादाको मटियामेट कर दिया और बाहरके लोग मुझपर (यह कहकर) हँसते हैं (मेरी हँसी करते हैं) कि 'यह कन्हैयाकी प्रेमिका आयी।' किंतु मेरा चित्त तो सदा (कुम्हारके) चाकपर चढ़ा-जैसा (घूमता) रहता है, उसे न घर अच्छा लगता, न आँगन; क्योंकि प्यारे गिरिधारी लालने हँसकर मुझे गलेसे लगाया था।

(१०७)

इहिं बिरियाँ बन तैं ब्रज आवत।
दूरहि तैं वह बेनु अधर धरि, बारंबार बजावत॥
कबहुँक काहू भाँति चतुर-चित, अति ऊँचे सुर गावत।
कबहुँक लै-लै नाम मनोहर, धौरी धेनु बुलावत॥
इहिं बिधि बचन सुनाइ स्याम घन, मुरछे मदन जगावत।
आगम-सुख उपचार बिरह-जुर, बासर-अंत नसावत॥
रचि रुचि प्रेम पियासे नैननि, क्रम-क्रम बलहि बढ़ावत।
सूर सकल रस निधि सुंदर घन, आनँद प्रगट करावत॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) इस समय ही (मोहन) वनसे व्रज आते थे। दूरसे ही वे ओठोंपर वंशी रखकर बार-बार बजाते थे। वे चतुर-हृदय कभी किसी प्रकार अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गाते और कभी सुन्दर नाम ले-लेकर धौरी (उजली) गायको बुलाते थे। इस प्रकार घनश्याम (अपनी) वाणी सुनाकर (हमारे) मूर्छित (सुप्त) कामको जगाते तथा दिनके अन्तमे (वे) अपने आगमन सुख-रूपी उपचार (औषध) से विरहके ज्वरको नष्ट करते थे। ये घनके समान सुन्दर तथा सम्पूर्ण रसोंकी निधि धीरे-धीरे प्रेमके प्यासे नेत्रोंमे सुरुचि उत्पन्न करके उनके बलको बढ़ाते और आनन्द प्रकट कराते (आते) थे।

(१०८)

मोहन जा दिन बनहिं न जात।
ता दिन पसु-पच्छी, द्रुम-बेली, बिन देखें अकुलात॥
देखत रूप-निधान नैन भरि, तातैं नाहिं अघात।
ते मृग तृन नहिं चरत उदर भरि, भए रहत कृस-गात॥
जे मुरली-धुनि सुनत स्रवन भरि, ते मुख फल नहिं खात।
ते खग बिपिन अधीर कीर-पिक, डोलत हैं बिललात॥
जिन बेलिन परसत कर-पल्लव, अति अनुराग चुचात।
ते सब सूखी परतिं बिटप ह्वै, जीरन से द्रुम पात॥
अति अधीर सब बिरह-सिथिल सुनि, तन की दसा हिरात।
सूरजदास मदन-मोहन बिनु, जुग सम पल हम जात॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी ! सुन,) मोहन जिस दिन वनमे नही जाते थे, उस दिन उन्हे देखे विना (वनके) पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लताएँ भी व्याकुल हो जाती थी। वे उन सौन्दर्यनिधान-को भर नेत्र देखते थे, फिर भी देखकर कभी तृप्त नही होते थे। (अव वे ही वनके) हिरन पेटभर घास नही चरते, अतः (उनके) शरीर दुर्वल बने रहते है। जो (पक्षी पहले) कान भरकर वंशीध्वनि सुना करते थे, (अव वे) मुखसे फल नही खाते और तोते एवं कोकिल आदि पक्षी अव धैर्यहीन होकर वनमें क्रन्दन करते घूमते है। (श्यामसुन्दरके) पल्लव-समान हाथोसे छूनेपर जिन लताओसे अत्यन्त अनुरागके कारण रस टपकता था, वे ही वृक्षोसे सूखकर जीर्ण हुई गिरी जा रही है; (क्योंकि वे) सव अत्यन्त अधीर और वियोगसे शिथिल है। (उनकी यह दशा) सुनकर (मुझे अपने) शरीरकी दशा भूल जाती है। मदनमोहनके विना हमारा एक-एक क्षण युगके समान बीतता है।

राग नट

(१०९)

ते गुन बिसरत नाहीं उर तैं।
जे ब्रजनाथ किए सुनि सजनी, सोचि कहति हौं धुर तैं ॥
मेघ कोपि ब्रज बरषन आयौ, त्रास भयौ पति सुर तैं।
बिह्वल बिकल जानि नँदनंदन, करज धरयौ गिरि तुरतैं ॥
एक समै बन माँझ मनोहर, जाम रैनि रज जुर तैं।
पत्रभंग सुनि सक स्याम घन, सैन दई कर दुरतैं ॥
दैत्य महाबल बहुत पठाए, कंस बली मधुपुर तैं।
सूरदास-प्रभु सबै बधे रन, कछु नहिं सरयौ असुर तैं ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—) सखी ! सुनो, व्रजनाथके वे उपकार जो (कृपापूर्वक उन्होंने हमपर) किये, हृदयसे ओझल नही होते। उन्हें सोचकर प्रारम्भसे कह रही हूँ। क्रोध करके मेघ व्रजपर वर्षा करने आये, अतः देवराज इन्द्रके कारण हम खतरेमें पड़ गये। उस समय नन्दनन्दनने हम सबको व्याकुल समझकर तुरन्त गिरिगोवर्धनको नखपर उठा लिया। एक दिन चित्ताकर्षक वनमें हम सब रातके समय जुटी हुई थीं, उस समय (वहाँ) धूलि उड़ने लगी और पत्ते टूटने लगे। अतः (उन टूटते हुए पत्तोंका शब्द) सुनकर और हमें शंकित देखकर घनश्यामने हाथके इशारेसे ही उस (आँधी) को दूर कर दिया। बलवान् कंसने मथुरासे बहुत-से अत्यन्त बलवान् दैत्य (व्रज) भेजे; किंतु हमारे स्वामीने युद्धमें उन सबको मार दिया, असुर कंससे कुछ भी करते नहीं बन पड़ा।

राग बिलावल

(११०)

इतने जतन काहे कौं किए।
अपनें जान जानि नँदनंदन, बहुत भयन सौं राखि लिए ॥

अघ, बक, बृषभ, बच्छ, बंधन तैं, ब्याल जीति दावागि पिए।
इंद्र-मान मेट्यौ गिरि कर धरि, छिन-छिन प्रति आनंद दिए॥
हरि-बिछुरन की पीर न जानी, बचन मानि हम बादि जिए।
सूरदास अब वा लालन बिन, का न सहत या कठिन हिए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—'सखी !) अपने जन समझकर नन्दनन्दनने बहुत-से भयोसे हमारी रक्षा की; किंतु (जब अन्तमे त्यागना ही था तो हमारी रक्षाके लिये) इतने प्रयत्न (उन्होंने) किस लिये किये ? अघासुर, बकासुर, वृषभासुर, वत्सासुर तथा वरुण-पाशसे बचाया, (यही नही उन्होने) कालियनागको जीता, दावाग्निका पान किया, हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठाकर इन्द्रका अभिमान दूर किया ओर (इस प्रकार) प्रत्येक क्षण हमें आनन्द दिया। किन्तु श्याम-सुन्दरके वियोगकी पीड़ा (उस समय) हमने समझी नहीं और उनके (लौटनेकी) बात मान हम व्यर्थ जीती रहीं। अब उन्हीं लालनके बिना (यह हमारा) कठिन हृदय क्या (कष्ट) नही सहता ?

राग सारंग

(१११)

मिलि बिछुरन की बेदन न्यारी।
जाहि लगै सोई पै जानै, बिरह-पीर अति भारी॥
जब यह रचना रची बिधाता, तबहीं क्यौं न सँभारी।
सूरदास-प्रभु काहे जिवाईं, जनमत ही किन मारी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मिलकर बिछुडनेकी वेदना अलग ही (बहुत दारुण) हुआ करती है, यह वियोग-की अत्यन्त दारुण पीड़ा जिसे लगती (होती) है, वही (उसे) जानता है। जब ब्रह्माने यह (वियोगकी) रचना रची (बनायी) थी, तभी उसका कोई प्रतीकार क्यो नही निश्चित किया और हमारे स्वामीने हमें जीवनदान क्यो दिया, जन्मते ही मार क्यो नही डाला ?

(११२)

बिछुरें स्याम, बहुत दुख पायौ।
दिन-दिन पीर होति अति गाढ़ी, पल-पल बरष बिहायौ॥
व्याकुल भईं सकल ब्रज-बनिता, नैंक सँदेस न पायौ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, नैनन अति झर लायौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) श्यामसुन्दरसे वियोग होनेके कारण मैंने बहुत दुःख पाया। दिनों-दिन (उसकी) पीड़ा अत्यन्त असह्य होती जाती है, जिससे प्रत्येक पल वर्षके समान व्यतीत होता है। (हम) सब व्रजकी नारियाँ व्याकुल हो गयीं, किंतु (उनका) तनिक भी संदेश नहीं मिला। स्वामी! तुमसे मिलनेके लिये (हमारे) नेत्रोंने (अश्रुओंकी) प्रबल झड़ी लगा दी है।

राग बिलावल

(११३)

यह कुमया जौ तबहीं करते।
तौ इन्ह पै कत जियत आजु लौं, गोकुल-लोग उबरते॥
केसी, तृनावर्त, वृषभासुर, कहौ कौन बिधि मरते।
ब्योम, प्रलंब, ब्याल, दावानल, हरि बिन कौन निवरते॥
संखचूर, बक, बकी, अघासुर, बरुन, इंद्र क्यौं टरते।
सूर-स्याम तौ घोष कहा, जौ इती निठुरई धरते॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! वे मनमोहन) यदि यह निष्ठुरता आरम्भसे करते तो, कहो, वे गोकुलके लोग आजतक कैसे जीते बचे रहते? केशी, तृणावर्त, वृषभासुर आदि किस प्रकार मरते और व्योमासुर, प्रलम्बासुर, कालियनाग तथा दावानलसे श्यामसुन्दरके बिना (गोकुलको) कौन बचाता? शंखचूड़, बकासुर, पूतना, अघासुर, वरुण तथा इन्द्र कैसे (व्रजसे) हटते? (इसलिये) यदि श्यामसुन्दर इतनी निष्ठुरता पहले धारण कर लेते तो क्या (यह) व्रज रहता?

राग मलार

(११४)

हरि हम तब काहे कौं राखी ।
जब सुरपति ब्रज बोरन लीन्हौ, दियौ क्यौं न गिरि नाखी ॥
अब लौं हमरी जग मैं चलती, नई-पुरानी साखी ।
सो क्यौ झूठी होइ सखी री, गरग कथा जो भाषी ॥
तौ हम कौ होती कत यह गति, निसि-दिन बरषति आँखी ।
सूरदास यौं भई फिरति ज्यौं, मधु-दूहे की माखी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही है—) श्यामसुन्दर ! (तुमने) हमारी उस समय क्यों रक्षा की ? जब इन्द्र व्रजको डुबाने लगा था (हमारे ऊपर) गिरिराजको (उस समय) क्यो नहीं पटक दिया, (जिससे) अबतक संसारमें हमारी नवीन एवं पुरातन यशोगाथा प्रचलित हो जाती (कि गोपियाँ श्यामसुन्दरकी नित्य अनन्य प्रेमिका हैं, उनसे नित्य अभिन्न हैं) ? किन्तु सखी ! गर्ग मुनिने जो बात कही (कि श्रीकृष्ण वसुदेवपुत्र हैं), वह कैसे झूठी हो सकती थी । (यदि यह बात हम पहले जान लेती) तो हमारी यह दशा क्यो होती (और क्यो) हमारे नेत्र रात-दिन वर्षा करते रहते ? अब हम (उनके बिना) इस प्रकार (आश्रयहीन) घूमती हैं, जैसे शहद निकाल लेनेपर शहदकी मक्खियाँ ।

राग सारंग

(११५)

मधुबन तुम्ह क्यौं रहत हरे ?
दुसह बियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यौं न जरे ॥
मोहन बेनु बजावत तुम्ह तर, साखा टेकि खरे ।
मोहे थावर अरु जड़-जंगम, मुनि-जन ध्यान टरे ॥
वह चितवनि तू मन न धरत है, फिरि-फिरि पुहुप धरे ।
सूरदास-प्रभु बिरह-दवानल, नख-सिख लौं न जरे ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कहती हैं —) अरे व्रजके वन ! तुम हरे कैसे रह पा रहे हो ? श्यामसुन्दरके दारुण वियोगमें खड़े-ही-खड़े भस्म क्यों नही हो गये । मोहन तुम्हारे नीचे तुम्हारी (ही) डालके सहारे खड़े हो वंशी बजाते थे, जिससे स्थिर रहनेवाले (वृक्षादि) मुग्ध हो जाते थे, गतिशील प्राणी जडवत् हो जाते थे और मुनि (भी) ध्यानसे विचलित हो जाते थे । तुम उस चितवनको याद नहीं करते और बार-बार पुष्पित होते हो ! हमारे स्वामीके वियोगरूपी दावानलमें जड़से चोटीतक भस्म क्यों नहीं हो गये ?*

राग केदारौ

(११६)

जौ सखि नाहिनै व्रज स्याम ।
बरष होत न एक पल सम, अब सु जुग बर जाम ॥
वहै गोकुल, लोग वेई, वहै जमुना ठाम ।
वहै गृह जिहिं सकल संपति, बन भयौ सोइ धाम ॥
वहै रति-पति अछत स्यामहि, लै न सकतो नाम ।
सूर-प्रभु बिनु अब कलेवर, दहन लाग्यौ काम ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! अब जब श्यामसुन्दर व्रजमे नहीं हैं, (मिलन-समयके समान) एक वर्ष एक पलके समान नही, अपितु (एक) प्रहर (एक) महायुग (जैसा) व्यतीत होता है । वही गोकुल है, (यहाँके) लोग भी वे ही हैं, वही यमुना है, वही (यह) स्थान है, वही घर है जिसमें सभी सम्पत्ति है; किंतु वही

---

* इस पदकी द्वितीय पंक्ति 'दुसह वियोग श्यामसुदर०'····मे 'दुसह' पाठ किसी भी प्रतिके अनुसार नही है । सर्वत्र "बिरह-वियोग श्यामसुंदर के' पाठ है, अर्थात् 'दुसह' के स्थानपर 'बिरह' पाठ है । इसलिये यहाँ 'बिरह' का अर्थ व्यञ्जनाद्वारा 'अति दुःख' मानना होगा ।

घर अब वन-जैसा हो गया है। वही कामदेव, जो श्यामसुन्दरके रहते हमारा नामतक नही ले सकता था, अब स्वामीके बिना हमारे शरीरको भस्म करने लगा है।

राग जैतश्री

(११७)

हरि न मिले माइ, जनम ऐसैं लग्यौ जान।
चितवत मग द्विवस-निसा, जाति जुग समान॥
चातक-पिक-बचन सखी, सुनि न परत कान।
चंदन अरु चंद किरनि मनौं अमल भान॥
भूषन तन तज्यौ रनहिं आतुर ज्यौं त्रान।
भीषम लौं सहत मदन अरजुन के बान॥
सोखति तन सेज सूर, चल न चपल प्रान।
दच्छिन रवि अवधि अटक, इतनी जिय आन॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) सखी! श्यामसुन्दरसे भेंट नही हो पायी और जीवन ऐसे ही (व्यर्थ) व्यतीत हो रहा है। (उनका) मार्ग देखते दिन और रात्रियाँ युगके समान व्यतीत होती है। सखी! पपीहे और कोकिलके शब्द कानोंसे सुने नही जाते (उनसे बड़ी वेदना होती है) तथा चन्दन और चन्द्रमाकी किरणें ऐसी (उष्ण) लगती हैं, मानो निर्मल सूर्यकी हो। शरीरने आभूषण इस प्रकार त्याग दिये, जैसे युद्धमे व्याकुल (योधा) कवच उतार देता है तथा कामदेवके बाण उसी प्रकार (चुपचाप) सहती हूँ, जैसे (अन्तिम समय) भीष्मपितामहने अर्जुनके बाण सहे थे। शय्यापर पड़ा-पड़ा शरीर सूख गया; (फिर भी) चञ्चल प्राण जाते नहीं, वे चित्तमें सूर्यके दक्षिणायन होनेकी अवधि (श्याम-सूर्यके दक्षिणायन होनेपर छः महीनेमें आयेंगे) समझकर अटके (रुके) हुए है।

राग नट

(११८)

बिचारत ही लागे दिन जान।
तुम्ह बिन नंद-सुवन इहिं गोकुल, निसि भइ कल्प समान ॥
मुरलि सब्द, कल धुनि की गुंजनि, सुनियत नाहीं कान।
चलत न रथ गहि रही स्याम कौं, अब लागी पछितान ॥
है कोउ जाइ कहै माधौ सौं, धीरज धरैं न प्रान।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिन, फुरत नहीं औसान ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) अब तो सोचने-सोचनेमें ही दिन बीते चले जाते हैं। नन्दनन्दन ! तुम्हारे बिना इस गोकुलमें रात्रि कल्पके समान (लम्बी) हो गयी है। (अब वह) मनोहर गूँजनेवाली वंशीकी ध्वनि कानोंसे सुनी नहीं जाती। (हाय !) श्यामसुन्दरके रथमे सवार होकर जाते समय (तो) मैं उनको पकडकर बैठ नही गयी और अब पश्चात्ताप करने लगी हूँ। अरे, कोई ऐसा है जो जाकर माधवसे कहे कि (अब) मेरे प्राण धैर्य धारण नही कर पा रहे हैं, स्वामी ! आपके दर्शन बिना चेतना लुप्त हो रही है।

राग सारंग

(११९)

अब यौं ही लागे दिन जान।
सुमरत प्रीति लाज लागति है, उर भयौ कुलिस समान ॥
लोचन रहत बदन बिन देखें, बचन सुने बिन कान।
हृदै रहत हरि पानि परस बिन, छिदत न मनसिज बान ॥
मानौ, सखी, रहे नहिं मेरे वे पहिले तन-प्रान।
बिधि समेत रचि चले नंदसुत, बिरह-बिथा दै आन ॥
बिधि बछ हरे और पुनि कीन्हे, वैसेइ बेत-बिषान।
सूरदास ऐसीऐ कछु यह, समझत है अनुमान ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! श्यामसुन्दर-के विना) अब ऐसे ही दिन बीत रहे हैं । (उनके अपने प्रति) प्रेमका स्मरण करके मुझे लज्जा आती है (क्योंकि मैं उसके योग्य अपनेको सर्वथा नहीं पाती ।) मेरा हृदय वज्रके समान हो गया है । ये नेत्र (श्याम-सुन्दरका) मुख देखे विना और कान उनकी वाणी सुने विना रह रहे हैं; हृदय श्यामसुन्दरके कर-स्पर्शके विना रह रहा है, (अब वह) कामके बाणोंसे विद्ध नहीं होता । सखी ! मानो मेरा वह पहिला शरीर और प्राण नहीं रहे । नन्दनन्दन (उन्हें) विधिपूर्वक दूसरे देह और प्राण बनाकर वियोगकी पीड़ा दे चले गये । ब्रह्माने जब (बालक और) बछड़े हरण किये थे, तब (श्यामसुन्दरने) फिरसे (उन्हें) छड़ी और शृङ्गके सहित वैसा ही बना दिया था, हम अनुमानसे समझती हैं कि यह बात भी कुछ इसी प्रकारकी है ।

राग धनाश्री

(१२०)

ऐसौ कोउ नाहिंनै सजनी, जो मोहनहिं मिलावै ।
बारक बहुरि नंदनंदन कौं, जो ह्याँ लौं लै आवै ॥
पाइन परि विनती करि मेरी, यह सब दसा सुनावै ।
निसि निकुंज सुख केलि परम रुचि, रास की सुरति करावै ॥
और कौनहू बात की सकुच न, किहुँ विधि की उपजावै ।
पुनि-पुनि सूर यहै कहै हरि सौं, लोचन जरत बुझावै ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! ऐसा कोई नहीं है, जो मोहनको मुझसे मिला दे और जो एक बार फिर नन्दनन्दनको यहाँतक ले आये ? (उनके) चरणोंपर गिरकर प्रार्थना करके (उन्हें) मेरी यह सब दशा सुनाये और उन्हें (यहाँ) अत्यन्त रुचिपूर्वक रात्रिमें की गयी निकुञ्ज-क्रीड़ाके आनन्दके साथ रासलीलाका (भी) स्मरण कराये । किसी भी बातका किसी प्रकारसे संकोच (उनके चित्तमें) उत्पन्न न

करे और बार-बार श्यामसुन्दरसे यही कहे कि (वे मेरे) जलते हुए नेत्रोको शीतल कर दें।

राग केदारौ

(१२१)

बहुरौ देखिबौ इहिं भाँति ।
असन बाँटत खात बैठे, बालकन की पाँति ॥
एक दिन नवनीत चोरत, हौं रही दुरि जाइ ।
निरखि मम छाया भजे, मै दौरि पकरे धाइ ॥
पोंछि कर-मुख लए कनियाँ, तब गई रिस भागि ।
वह सुरति जिय जाति नाहीं, रहे छाती लागि ॥
जिन घरनि वह सुख बिलोक्यौ, ते लगत अब खान ।
सूर बिन ब्रजनाथ देखै, रहत पापी प्रान ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे गोपी कह रही है—सखी !) क्या (मैं) फिर इस प्रकार (श्यामसुन्दरको) देख सकूँगी कि वे बालकोकी पंक्तिमे बैठे भोजन (सखाओंको) बाँटकर खा रहे हो। एक दिन वे (जहाँ) मक्खन चुरा रहे थे, मैं वहीं जाकर छिप रही और जब वे मेरी छाया देखकर भागे तो मैंने (उन्हे) दौड़कर पकड़ लिया और जब उनके हाथ एवं मुखको पोछकर (उन्हे) गोदमें ले लिया तब (मेरा) क्रोध दूर हो गया। जिस अनुरागसे वे मेरी छातीसे चिपट गये थे, उसकी स्मृति चित्तसे जाती नहीं। जिन घरोंमे वह सुख देखा था, वे ही (घर) अब खानेको दौड़ते है। (उन) श्रीव्रजनाथको देखे बिना ये पापी प्राण (कैसे) रह रहे हैं (जान नही पड़ता)।

(१२२)

कब देखौ इहिं भाँति कन्हाई।
मोरन के चँदवा माथे पै, कंध कामरी-लकुट सुहाई ॥

वासर के वीतें सुरभिन सँग, आवत एक महाछवि पाई।
कान अँगुरिया घालि निकट पुर, मोहन राग अहीरी गाई॥
क्यौंहुँ न रहत प्रान दरसन विन, अव कित जतन करैं री माई।
सूरदास-स्वामी नहिं आए, वदि जु गए अवध्यौहुँ भराई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) कन्हैयाको इस प्रकार कब देखूँगी कि उनके मस्तकपर मयूर (पिच्छकी) चन्द्रिका, कंधेपर कम्बल और हाथमें छड़ी सुहाती होगी। दिन बीत जानेपर (संध्याके समय) गायोंके साथ आते हुए वे अत्यन्त सुशोभित होते होंगे। ग्रामके पास पहुँचकर कानोंमें अँगुली डालकर मोहन अहीरी राग (विरहा) गा रहे होंगे। सखी ! अब चाहे कितना भी प्रयत्न कोई क्यों न करे, उनके दर्शनके विना (अब) प्राण किसी प्रकार रहते नहीं; (क्योंकि) हमारे स्वामी (लौटनेकी) जो अवधि निश्चित कर गये थे वह (भी) पूर्ण हो गयी और वे नहीं आये।

राग सारंग

(१२३)

यह जिय हौंसे पै जु रही।
सुनि री सखी, श्यामसुंदर हँसि, वहुरि न वाँह गही॥
अव वे दिवस वहुरि कव ह्वैहैं, ऐसी जात सही।
कहाँ कान्ह हैं कहँ री अव हम, कौन वयारि वही॥
कासौं कहौं, कहत नहिं आवै, दहन न परै कही।
जो कछु हुती हमारी हरि की, हरि के सँग निवही॥
इतनी कहतहिं हिलकी लागी, गोविंद गुनन दही।
सूरदास काटे तरवर ज्यौं, ठाढ़ी रटति रही॥

(एक गोपी कह रही है—) सखी ! सुन, (मेरे) चित्तमें यह लालसा बनी (ही) रह गयी कि श्यामसुन्दरने हँसकर फिर मेरी भुजा नहीं

पकड़ी। वे (मिलनके) दिन (अब) फिर कब होंगे तथा ऐसी दशा कैसे सही जायगी ? क्योंकि कन्हैया कहाँ और अब हम सब (उनसे दूर) कहाँ हैं ! यह कैसी हवा चली। किससे कहूँ, कुछ कहा नही जाता; और कहनेकी चेष्टा करनेपर भी कुछ कहते नही वनता। हमारा श्यामसुन्दरसे जो कुछ सम्वन्ध था, वह श्यामसुन्दरके साथ ही समाप्त हो गया। सूरदासजी कहते हैं कि गोविन्दके गुणो (के स्मरण करने) से दग्ध हुई गोपीको इतना कहते-कहते हिचकियाँ वँध गयी और जैसे कटा हुआ (सूखा) वृक्ष हो, इस प्रकार खड़ी-खड़ी क्रन्दन करती रही।

(१२४)

ब्रज में वै उनहार नहीं।
ब्रज सव गोप रहे हरि विनहीं, स्वाद न दूध-दही॥
ज्यों द्रुम-डार पवन के परसें, दस-दिसि परत वही।
वासर विरह भरी अति व्याकुल, कवहुँ न नींद लही॥
दिन-दिन देह दुखी अति हरि विनु, इहिं तन बहुत सही।
सूरदास हम तब न मुईं, अव ये दुख सहन रहीं॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) व्रजमें अब वह (पहिले-जैसी) दशा नही है। सव गोप व्रजमे श्यामसुन्दरके विना जीवित तो हैं, पर अब (यहाँके) दूध-दहीमे स्वाद नहीं रहा। जैसे आँधीके वेगसे (टूटकर) वृक्षकी डालियाँ दसों दिशाओंमें उड़ती फिरती हैं, वैसे ही मैं दिनभर वियोगसे भरी हुई अत्यन्त व्याकुल रहती हूँ और (रात्रिमे) कभी नीद नही ले पाती। श्यामसुन्दरके विना दिनों-दिन शरीर (दुर्वल एवं) दुखी होता जाता है, इस शरीरने बहुत (कष्ट) सहा। हम उसी समय नही मर गयी, अब यह दुःख सहनेको जीवित रह गयी।

राग जैतश्री

(१२५)

कहाँ लौं मानौं अपनी चूक ।
बिनु गुपाल सखि री, यह छतिया ह्वै न गई द्वै टूक ॥
तन-मन-धन घर-बन अरु जोबन, ज्यौं भुवंग की फूँक ।
हृदय जरत है दावानल ज्यौं, कठिन बिरह की हूक ॥
जाकी मनि सिर तैं हरि लीन्ही, कहा कहै अहि मूक ।
सूरदास ब्रजबास बसीं हम, मनौं सामुहैं सूक ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! हम अपनी भूल कहांतक मानें, गोपालके विना यह हृदय (फटकर) दो टुकड़े नहीं हो गया । शरीर, मन, सम्पत्ति, भवन, वन और युवावस्था—सब ऐसे (दुःखद) हो गये जैसे सर्पकी फुफकार हो । वियोगकी दारुण वेदनासे हृदय इस प्रकार जल रहा है जैसे दावाग्नि । जिसकी मणि (उसके) मस्तकसे छीन ली गयी हो, वह (बेचारा) मूक सर्प क्या कहे ? हम (अब तो) व्रजमें इस प्रकार निवास कर रही है, मानो बाणके सम्मुख (बाणोंकी चोट सहती) हों ।

राग सोरठ

(१२६)

कहा दिन ऐसैं ही चलि जैहैं ।
सुनि सखि मदन गुपाल आँगन मैं, ग्वालन संग न ऐहैं ॥
कबहूँ जात पुलिन जमुना के, बहु बिहार बिधि खेलत ।
सुरति होत सुरभी सँग आवत, पुहुप गहैं कर झेलत ॥
मृदु मुसकानि आनि राख्यौ जिय, चलत कह्यौ है आवन ।
सूर सुदिन कबहूँ तौ ह्वैहै, मुरली-सब्द सुनावन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) क्या

(हमारे) दिन ऐसे ही (श्यामसुन्दरके बिना ही) बीतते जायँगे ? सखी ! सुन, क्या मदनगोपाल गोप-कुमारोंके साथ (फिर कभी) मेरे आँगनमें नहीं आयेंगे ? कभी वे यमुनाके पुलिनपर जाते और अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए खेलते थे, उन दिनोंकी स्मृति (अब) भी होती है, जब वे गायोंके साथ (संध्याको वनसे) हाथमे पुष्प लिये (उसे) उछालते आते थे। चलते समय उन्होंने जिस मन्द मुस्कराहटके साथ व्रजमे लौटनेकी बात कही थी, उसीका स्मरण करके हमने जीवन धारण कर रखा है, वह वंशीका शब्द सुनानेवाला शुभ दिन कभी तो होगा ।

राग मलार

(१२१)

स्याम सिधारे कौने देस ।
तिन कौ कठिन करेजौ सखि री, जिन कौ पिय परदेस ॥
उन्ह माधौ कछु भली न कीन्ही, कौन तजन कौ वैस ।
छिन भरि प्रान रहत नहि उन्ह बिन, निसि-दिन अधिक अँदेस ॥
अतिहिं निठुर पतियाँ नहिं पठई, काहू हाथ सँदेस ।
सूरदास-प्रभु यह उपजत है, धरिऐ जोगिन-बेस ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी !) (न जाने) श्यामसुन्दर किस देश चले गये । अरी सखी ! जिनके प्रियतम विदेश हों, उनका हृदय (बड़ा ही) कठोर है। उन माधवने कुछ अच्छा काम नही किया, यह हमारी कौन-सी त्यागने योग्य अवस्था थी ! उनके बिना प्राण क्षणभर भी नही रहते । रात-दिन अत्यधिक चिन्ता बनी रहती है । वे अत्यन्त निष्ठुर हैं, जिसके कारण उन्होने किसीके हाथ न तो पत्र भेजा और न संदेश । अब तो चित्तमे यही (बात) आती है कि अपने स्वामीके लिये योगिनीका वेश धारण कर लूँ ।

(१२८)

सखी री, दिखरावहु वह देस ।
कहा कहौं या ब्रज बसि हरि बिनु, लह्यौ न सुख कौ लेस ॥
मुख-मीठी अक्रूर जु दीन्ही, हम सिसु दीन्हो जान ।
जानि न बधिक-बिसेसौं मृग ज्यौं, हनत बिसासी प्रान ।
मैं मधु ज्यौं राखे सँचि मोहन, ते भृंगी की रीति ।
दे दृग छाँट अवधि लै गवने, सुनियत जहाँ अनीति ॥
मोहन बिनु हम बसत घोप महँ, भई तीसरी साँझ ।
सूरदास ये प्रान पतित अब, कहा रहत घट माँझ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! वह देश दिखला दो (जहाँ मोहन हैं) । क्या कहूँ, श्यामसुन्दरके बिना इस व्रजमें निवास करके (मुझे) सुखका लेश भी नहीं मिला । अक्रूरने जो मुँह मीठी बात कही, उसपर हमने शिशुओं (राम-श्याम) को (उनके साथ) जाने दिया । (पर उस समय हमने) मृगकी भाँति व्याधके वेशको जाना नहीं, जो विश्वास दिलाकर प्राण ले लेता है । मैंने शहदके समान मोहनको (हृदयमें) संचित करके रखा था; किंतु वे (अक्रूर) भौंरेकी भाँति आये और आँखोंमें अवधिके आश्वासनरूप छींटे डालकर (हमारे सहारेको) वहाँ (मथुरामें) ले गये जहाँ अन्याय सुना जाता है । मोहनके बिना व्रजमें रहते हमें आज तीसरी संध्या (तीसरा दिन) हो गयी, किंतु हमारे ये पतित प्राण अब (भी न जाने) शरीरमें क्यों बने हुए हैं (कुछ समझमें नहीं आता) ।

(१२९)

गोपालहि पावौं धौं किहिं देस ।
सिंगी, मुद्रा, कर खप्पर लै, करिहौं जोगिन-भेस ॥
कंथा पहिरि बिभूति लगाऊँ, जटा बँधाऊँ केस ।
हरि कारन गोरखै जगाऊँ, जैस स्वाँग महेस ॥

तन-मन जारौं, भसम चढ़ाऊँ, बिरहा के उपदेस।
सूर स्याम बिन हम हैं ऐसी, जैसैं मनि बिनु सेस॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) गोपालको, पता नही किस देशमें पाऊँगी। (उन्हें पानेके लिये अब मैं कानोंमे) सीगकी मुद्रा पहिन और हाथमें खप्पर लेकर योगिनीका वेश बनाऊँगी। कंथा (गुदड़ी) धारणकर विभूति (भस्म) रमाऊँगी, बालोंको जटा बनाकर बाँधूँगी और इस प्रकार श्यामसुन्दरके लिये गोरखको जगाऊँगी (नाथ-पंथमें दीक्षा लेकर गोरखनाथके मन्त्रको जाग्रत् करूँगी) और शंकरजीका वेश धारण करूँगी। (अरी) वियोगकी शिक्षा मानकर शरीर तथा मनको जलाकर उसकी भस्म चढ़ाऊँगी: क्योंकि श्यामसुन्दरके बिना (तो) हम ऐसी हो गयी है, जैसे मणिके विना सर्प।

राग केदारौ

(१३०)

फिरि ब्रज आइऐ गोपाल।
नंद-नृपति-कुमार कहिहैं, अब न कहिहैं ग्वाल॥
मुरलिका-धुनि सप्त दिसि-दिसि, चलौ निसान बजाइ।
दिगविजय कौं जुवति-मंडल-भूप परिहैं पाइ॥
सुरभि सखा सु सैन भट सँग, उठैगी खुर-रैन।
आतपत्र मयूर चँद्रिका, लसत है रवि-ऐन॥
मधुप वंदी जन सुजस कहि,मदन आयसु पाइ।
द्रुम-लता-बन कुसुम वानक, बसन-कुटी बनाइ॥
सकल खग-मृग पैक पायक, पौरिया, प्रतिहार।
सूर-प्रभु ब्रज राज कीजै, आइ अब की बार॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) गोपाल ! ब्रजमें फिर आ जाओ। हम तुम्हें महाराज नंदजीका कुमार कहेंगी और अब गोप

नहीं कहेगी। (तुम) सातों स्वरोसे युक्त वंशीध्वनिरूपी नगाड़ा दसों दिशाओंमें बजाते चलो; (क्योंकि) दिग्विजयके लिये (तो) व्रजयुवतियोंका मण्डल-रूपी राजाओंका समुदाय है ही जो तुम्हारे पैर पड़ेगा। गायों और सखाओंके रूपमें श्रेष्ठ योद्धा सैनिक (तुम्हारे) साथ रहेंगे, (तथा घोड़ोंके खुरोंसे उड़नेवाली धूलिके समान) गायोंके खुरोंसे धूलि उड़ेगी। मयूरपिच्छकी चन्द्रिकारूपी छत्र सूर्यबिम्बके समान तुम्हारे सिरपर शोभा देता ही है। भौंरेरूपी वन्दीजन तुम्हारा सुयश गायेंगे, कामदेव तुम्हारी आज्ञा पाकर वनकी वृक्षलताओंके पुष्पोंसे सजाकर वस्त्रका भवन (तम्बू) बना देगा। सभी पशु-पक्षी तुम्हारे आज्ञापालक दूत, द्वारपाल तथा पहरेदार होंगे। हे स्वामी! अबकी बार आकर व्रजपर राज्य कीजिये।

राग जैतश्री

(१३१)

फिरि ब्रज बसहु गोकुलनाथ।
अब न तुम्है जगाइ पठवैं, गोधनन के साथ॥
बरजैं न माखन खात कबहूँ, दह्यौ देत लुटाइ।
अब न देहिं उराहनौ, नँद-घरनि आगें जाइ॥
दौरि दाँवरि देहिं नहिं, लकुटी जसोदा पानि।
चोरी न देहिं उघारि कैं, औगुन न कहिहैं आनि॥
कहिहैं न चरनन दैन जावक, गुहन बेनी-फूल।
कहिहैं न करन सिंगार कबहूँ, बसन जमुना-कूल॥
करिहैं न कबहूँ मान हम, हठिहैं न माँगत दान।
कहिहैं न मृदु मुरली बजावन, करन तुम सौं गान॥
देहु दरसन नंद-नंदन, मिलन की जिय आस।
सूर हरि के रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) गोकुलनाथ! फिर व्रजमें निवास करो। अब हम तुम्हें (सवेरे) जगाकर गायोंके साथ (वनमें) नहीं

भेजेंगी। कभी मक्खन खानेसे और दही ढुलका देनेसे (तुम्हे) रोकेंगी नहीं और न श्रीनन्द-पत्नीके सामने जाकर अब उलाहना ही देंगी। यशोदाजीके हाथमे अब हम (तुम्हें बाँधनेके लिये) न तो रस्सी देंगी न (तुम्हे डरानेके लिये) छड़ी ही; न हम तुम्हारी चोरी प्रकट करेंगी और न तुम्हारे (दूसरे) दोष जाकर उनसे कहेगी। हम अब तुम्हे अपने चरणोंमें महावर लगाने और चोटियोंमे फूल गूँथनेको (भी) नही कहेगी और न कभी यमुना-किनारे अपना शृङ्गार करनेके लिये तुम्हे रुकनेको कहेंगी। (अब) हम कभी (तुमसे) मान नहीं करेंगी और न तुम्हारे दान माँगते समय हठ करेंगी। तुमसे कोमल स्वरमे वंशी बजाने अथवा गानेको (भी) नही कहेंगी। नन्दनन्दन ! (अब हमे) दर्शन दो; (क्योंकि तुम्हारे) मिलनेकी आशा मनमें लग रही है। श्यामसुन्दर (आप) का रूप देखनेके लिये (हमारे) नेत्र प्यासे मर रहे है।

राग सारंग

(१३२)

काहें पीठि दई हरि! मोसौं ?
तुमही पीठि भावते! दीन्ही, और कहा कहि कोसौं ॥
मिलि-बिछुरे की पीर सखी री, राम-सिया पहिचाने।
मिलि-बिछुरे की पीर सखी री, पय-पानी उर आने ॥
मिलि-बिछुरे की पीर कठिन है, कहें न कोऊ मानै।
मिलि-बिछुरे की पीर सखी री, बिछुरयौ होइ सो जानै ॥
बिछुरे रामचंद औ दसरथ, प्रान तजे छिन माहीं।
बिछुरयौ पात गिरयौ तरुवर तें, फिरि न लगै उहि ठाहीं ॥
बिछुरयौ हंस काय घटहू तें, फिरि न आव घट माहीं।
मैं अपराधिनि जीवत बिछुरी, बिछुरयौ जीवत नाहीं ॥
नाद-कुरंग, मीन-जल बिछुरें, होइ कीट जरि खेहा।
स्याम-बियोगिनि अतिहिं सखी री, भई साँवरी देहा ॥

गरजि-गरजि बादर उनए हैं, बूँदनि बरषत मेहा।
सूरदास कहु कैसैं निबहै, एक ओर कौ नेहा॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) श्यामसुन्दर! तुमने मुझसे मुँह क्यो फेर लिया (मेरी उपेक्षा क्यों कर दी)? प्रियतम! जब तुम्हीने मेरी उपेक्षा कर दी तो दूसरे किसीको किन शब्दोंमें बुरा-भला कहूँ? सखी! मिलनके बाद वियोगकी पीड़ा तो सीता और राम ही ठीक जानते हैं। सखी! मिलनके बाद वियोगकी पीड़ाको दूध और पानी हृदयमें रखते हैं (पानीके जलनेपर दूध उफनकर अग्निमें गिरने लगता है)। मिलनके बाद वियोगकी पीड़ा दारुण होती है, (उसे) कहनेसे कोई नही मानेगा। सखी! मिलनके बाद वियोगकी पीड़ा तो जिसे वियोग हुआ हो, वही समझ सकता है। श्रीरामचन्द्र और महाराज दशरथका वियोग हुआ (तो महाराज दशरथने) एक क्षणमें प्राण त्याग दिये। श्रेष्ठ वृक्षसे अलग होकर गिरा हुआ पत्ता फिर अपने उस स्थानपर नही लगता। जीव (रूपी) हंस शरीर (रूपी) घटसे वियुक्त होनेपर फिर शरीरमें नही आता; किंतु मैं अपराधिनी (पापिनी) जीवित (ही अपने प्रियतमसे) वियुक्त हो गयी (मरी नही); क्योंकि बिछुड़ा हुआ (कोई) जीता नहीं। संगीतके स्वरसे वियुक्त होनेपर मृग (मर जाता है), जलसे बिछुड़नेपर मछली (मर जाती है) और पतिंगा (प्रेमके कारण दीपकमें) जलकर भस्म हो जाता है। (इसी प्रकार) सखी! श्यामसुन्दरके वियोगमे मेरा शरीर जलकर अत्यन्त साँवला (काला) हो गया है। बार-बार गर्जना करते हुए बादल उमड़ आये है और बूँदोकी वर्षा करने लगे हैं। (ऐसी दशामे) एक ओरके (एकाङ्गी) प्रेमका, बताओ तो, कैसे निर्वाह हो।

राग जैतश्री

(१३३)

हरि-से पीतम क्यौं बिसराहिं।
मिलन दूरि, मन बसत चंद पै, चित चकोर पछताहिं॥

जल में रहैं, जलहि तैं उपजैं, बिन जलहीं कुम्हिलाहिं।
जल तजि हंस चुग मुकताहल, मींन कहाँ उड़ि जाहिं॥
सोइ गोकुल, गोबरधन सोई, कौन करै अब छाँहिं।
प्रगट न प्रीति करै परदेसी, सुख किहिं देस बसाहिं॥
धरनी दुखित देखि बादर अति, बरषा-रित बरषाहिं।
सूरदास-प्रभु तुम्ह दरसन बिनु, दुख क्यौं हृदै समाहिं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है--सखी !) श्यामसुन्दर-जैसे प्रियतम कैसे भुलाये जा सकते हैं। मिलना दूर होते हुए भी चकोरका चित्त चन्द्रमे ही बसता (आसक्त रहता) है, फिर भी (न मिलनेके कारण वह) चित्तमे पछताया करता है। (मछलियाँ और हंस—दोनों) जलमें ही रहते है, जलसे ही उत्पन्न होते हैं और जलके बिना म्लान हो जाते हैं, फिर भी हंस तो जलको छोड़कर मोती चुग लेता है; पर मछलियाँ (जल छोडकर) उड़कर कहाँ जायँ ? (यही दशा हम सबकी है; क्योंकि) वही गोकुल है, वही गोवर्धन है, किंतु अब (वर्षामें व्रजपर गोवर्धनकी) छाया कौन करे। यदि परदेशी मथुरावासी श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष प्रेम न करें, (तो पता नही) सुख किस देशमें निवास करें। (घने) बादल पृथ्वीको अत्यन्त दुखी देखकर वर्षा ऋतुमे (अवश्य) वर्षा करते हैं; अतः हे स्वामी ! तुम्हारा दर्शन पाये बिना हमारे हृदयमें दुःख कैसे सीमित रहे।

राग मलार

(१३४)

प्रीतम बिनु व्याकुल अति रहियत।
मधुवन जौ जाती हौं हरि सँग, कित एतौ दुख सहियत॥
काहे काम कटुक अँग करतौ, कित बसंत रितु दहियत।
बिनु पावस अति नैन उमँगि जल, कित सरिता उर बहियत॥
जौ जानती बहुरि नहिं आवन, धाइ पीत पट गहियत।
सूरदास प्रभु के बिछुरे तैं, कहूँ नाहिं सुख लहियत॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) प्रियतमके बिना (मैं) अत्यन्त व्याकुल रहती हूँ। यदि मैं श्यामसुन्दरके साथ मथुरा चली जाती तो इतना दुःख क्यों सहना पड़ता। फिर काम मेरे अङ्गोंको क्यों पीड़ित करता और क्यों वसन्तऋतुमें मुझे जलना पड़ता तथा बिना वर्षाके ही नेत्र आँसुओंसे लबालब भरकर हृदयपरसे नदीकी धारा (क्यों) बहाते। यदि (मैं प्रथम) जानती कि (श्यामसुन्दरका) फिर लौटना नहीं होगा तो दौड़कर उनका पीताम्बर पकड़ लेती। (अब तो) स्वामीका वियोग हो जानेसे कहीं सुख नहीं मिलता।

राग जैतश्री

(१३५)

बारक जाइयौ मिलि माधौ।
को जानैं तन छूटि जाइगौ, सूल रहै जिय साधौ॥
पहुनेंहुँ नंद बबा के आवहु, देखि लेउँ पल आधौ।
मिलेंही मैं बिपरीत करी बिधि, होत दरस कौ बाधौ॥
सो सुख सिव-सनकादि न पावत, जो सुख गोपिन लाधौ।
सूरदास राधा बिलपति है, हरि कौ रूप अगाधौ॥

(एक गोपी कह रही है—) 'माधव ! एक बार (तो) मिल जाओ ! कौन जानता है कि शरीर कब छूट जायगा, अतः यह लालसाकी पीडा चित्तमें रह ही जायगी। नन्दबाबाके यहाँ अतिथि बनकर ही आओ, (जिससे तुम्हें) आधे पलके लिये (ही सही,) देख (तो) लूँ। (हाय !) विधाताने मिलनमें (ही) यह उलटी दशा (वियोग) कर दी कि दर्शनमें भी बाधा हो गयी। (नहीं तो) जो आनन्द शिव और सनकादि ऋषिगण भी नहीं पाते, वही आनन्द गोपियोंने पाया था। सूरदासजी कहते हैं कि (इस प्रकार) श्यामसुन्दरके अगाध सौन्दर्यमें निमग्न श्रीराधा विलाप कर रही हैं।

राग मलार

(१३६)

सखी, इन नैननि तैं घन हारे।
बिनहीं रितु बरषत निसि-बासर, सदा मलिन दोउ तारे॥
ऊरध साँस समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
वदन-सदन करि बसे बचन-खग, दुख पावस के मारे॥
दुरि-दुरि बूँद परत कंचुकि पै, मिलि अंजन सौं कारे।
मानौ परनकुटी सिव कीन्ही, बिबि-मूरति धरि न्यारे॥
घुमरि-घुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत अँधियारे।
बूड़त ब्रजहि सूर को राखै, बिन गिरिबरधर प्यारे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! इन नेत्रोंसे (तो) मेघ भी हार गये; (क्योंकि) ये बिना ऋतुके ही रात-दिन वर्षा करते रहते हैं, (जिससे इनमेंके दोनों तारे सदा धुँधले बने रहते हैं। लंबी श्वासरूपी अत्यन्त तेज वायु चलती है, जिसने सुख (रूपी) अनेक वृक्षोंको गिरा दिया है। अतः दुःखरूपी वर्षा ऋतुसे सताये हुए वचनरूपी पक्षी मुखको ही (अपना) घोंसला बनाकर (उसमें) बस गये हैं (बोलना भी प्रायः बंद हो गया है)। अंजनसे मिलकर काली हुई बूँदें छिप-छिपकर कञ्चुकी (चोली) पर (इस भाँति) पड़ रही हैं, मानो शंकरजीने दो मूर्तियाँ बनाकर पृथक्-पृथक् पत्तोंसे बनी कुटियामें धर (बैठा ल) दी हों। घुमड़-घुमड़कर (बार-बार अश्रु भर-भरकर नेत्र) जल गिराते हैं (जिससे आँखोंके आगे छाये) अन्धकारको देखकर (मुझे) भय लगता है। अब, भला, बिना प्रियतम गिरिधरलालके व्रजको डूबनेसे कौन बचा सकता है।

(१३७)

नैना सावन-भादौं जीते।
इनही त्रिषय आनि राखे मनु, समुदनि हूँ जल रीते॥

वे झर लाइ दिना द्वै उघरत, ये न भूलि मग देत।
वे वरषत सब के सुख कारन, ये नँदनंदन हेत॥
वे परिमान पुजें हद मानत, ये दिन धार न तोरत।
यह विपरीति होति देखति हौं, विना अवधि जग बोरत॥
मेरे जिय ऐसी आवत, भइ चतुरानन की साँझ।
सूर विनु मिलें प्रलय जानिबौ, इनहीं द्यौसनि माँझ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) नेत्रोंने श्रावण तथा भाद्रपद (के महीनो) को (भी) जीत लिया है। मानो इन्होंने ही सम्पूर्ण जलको लेकर अपनेमें रख लिया हो, जिससे समुद्र भी जलसे खाली हो गये हैं। वे (मेघ) तो झड़ी लगाकर दो दिनमें खुल जाते हैं, किंतु ये भूलकर भी रास्ता नही देते अर्थात् निरन्तर वर्षा करते रहते हैं। वे (बादल) सबके सुखके लिये वर्षा करते है और ये (नेत्र) नन्दनन्दनके लिये (प्रेममें) बरस रहे है। वे (मेघ) परिमाण (जितनी वृष्टि होनी है उतनी) पूरा करके (वर्षाकी) सीमा मान लेते है और ये किसी दिन अपनी धारा (ही) नही तोड़ते। (साथ ही इनमें) मैं यह उलटी बात होती देख रही हूँ कि ये (नेत्र प्रलयका) समय आये बिनाही संसारको डुबोये दे रहे हैं। मेरे मनमें यह बात आती है कि (अब कदाचित्) ब्रह्माजीका सायंकाल (प्रलयका समय) हो गया है। इसलिये (श्यामसुन्दरसे) मिलन न हुआ तो इन्ही दिनोंमें (नेत्रोकी वर्षाके कारण निश्चित) प्रलय (होना) समझ लेना चाहिये।

(१३८)

निसि-दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहत पावस-रितु हम पै, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन न रहत निसि-बासर, कर-कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे॥

आँसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु इहै परेखौ, गोकुल काहें बिसारे ॥*

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) हमारे नेत्र रात-दिन वर्षा करते हैं; (क्योंकि) जबसे श्यामसुन्दर यहाँसे चले गये है, तबसे हमारे निकट सदा वर्षा ऋतु ही रहती है। आँखोमे (लगाया गया) अञ्जन रात या दिनमें कभी टिक नही पाता, अतः हथेलियाँ और कपोल काले हो गये है और न कञ्चुकी (चोली) का वस्त्र कभी सूखने पाता है; क्योंकि वक्षःस्थलके वीचसे (अश्रुकी) धारा बहती रहती है। पूरा शरीर ही आँसूका जल हो गया है और एक पलको भी (दूर करनेका प्रयत्न करनेपर भी जिसे) क्रोधपूर्वक हटाया नही जा पाता।* स्वामी ! (हमें) यही दुःख (पश्चात्ताप) है कि (आपने) गोकुलको विस्मृत क्यों कर दिया।

---

* (१३८) इस पदकी पाँचवीं पंक्तिके सूरसागरकी विविध हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियोमें कई पाठ-भेद मिलते हैं, जिनमें मुख्य हैं—

'अंसुवा सलिल भए, पग थाके, बहे जात सित तारे।'

यह पाठ सर्वविदित और सूरसागरकी एक-दो प्रतियोको छोड़कर प्रायः सभी प्रतियोको मान्य है। अर्थकी दृष्टिसे भी पूर्व (चौथी) पंक्तिको देखते हुए ऊपर लिखा पाठ ही उचित प्रतीत होता है, किंतु एक बार 'गीताप्रेस' गोरखपुरमें ही कल्याणके सुप्रसिद्ध सम्पादक मान्यवर श्रीपोद्दारजीने इस टिप्पणी-लेखकके सम्मुख एक दूसरा सुन्दर पाठ रखा था, जैसे—

'अंसुवा सलिल बहे, पग थाके, भए जात सित तारे।'

यह पाठ भी अर्थकी समृद्धिसे भरपूर है, जिसके लिये पोद्दारजी धन्यवादके विशेष अधिकारी हैं, परंतु—'काशीनागरी प्रचारणी-सभा' से प्रकाशित सूरसागरके विद्वान् सम्पादकने 'आँसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।' उपर्युक्त पाठ जो व्रजभाषाकी परम्परासे भी दूर है, कहाँ (कौन-सी प्रति) से और कैसे लिया—यह अज्ञात है। इसी

राग सोरठ

(१३९)

तव तैं नैन अनाथ भए।
जव तैं मदन-गुपाल हमारे, व्रज तजि अनत गए॥
ता दिन तैं पावस दल साजत, जुद्ध-निसान हए।
सुभट मोर सायक मुख मोचत, दिन दुख देत नए॥
यह सुनि-सोचि काम अवलनि के, तन-गढ आनि लए।
सूरदास जिन्ह दए संग सुख, तिन्ह मिलि वैर ठए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) तवसे (मेरे) नेत्र अनाथ हो गये, जवसे हमारे मदनगोपाल व्रजको छोड़कर अन्यत्र चले गये हैं। उसी दिनसे वर्षाऋतु (अपना) दल सजाती (सेना वटोरती) युद्धके नगाड़े वजाने लगी है और उसके वीर योवा मयूर अपने मुखसे (वाणीरूपी) वाण छोड़कर हमें दिनो-दिन नये-नये दुःख देते हैं। कामदेवने (भी) यह सुन और विचारकर (हम) अवलाओंके शरीररूपी किले आकर ले लिये (उनपर अधिकार कर लिया)। जिन्होंने श्यामसुन्दरके साथ रहनेपर हमें सुख दिया था, अव उन्होंने ही मिलकर शत्रुता ठान ली है।

राग सारंग

(१४०)

नैनन नाध्यौ है झर।
ऊँचे चढ़ि टेरति आतुर सुर, कहि कहि गिरिधर-गिरिधर॥
फिरति सदन दरसन के काजैं, ज्यौं झख सूखे सर।
कौन-कौन की दसा कहौं सुनि, सव व्रज तिन तैं पर॥

प्रकार द्वितीय पंक्तिका पाठ भी—'सदा रहति 'वरषा' रितु०....' कुछ ठीक प्रयुक्त नहीं है; क्योंकि यहाँ भी सूरसागरकी सभी प्रतियोंमें—'सदा रहत 'पावस' रितु०...' ही पाठ है, जो उचित है और शब्द-मैत्रीसे भी युक्त है। ज० च०।

निसि-दिन कलमलात सुनि सजनी गाजत मनमथ अर।
सूरदास सब रहीं मौन ह्वै, अतिहिं मैन के भर॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी !) मेरे नेत्रोंने (श्यामसुन्दरके दर्शन बिना) झड़ी बाँध दी है। (मैं) ऊँचे (अटारीपर) चढ़कर (अधीर स्वरसे 'गिरधर ! गिरधर !' पुकारती हूँ। (मोहनके) दर्शनके लिये घरमें ऐसे (व्याकुल) घूमती हूँ, जैसे सूखे तालाबमें मछली (तड़पती हो)। किस-किसकी दशा वर्णन की जाय, सुनो ! व्रजमें तो सब जलहीन मछलियोंसे (भी) अधिक व्याकुल हैं। सखी ! सुनो, (श्यामसुन्दरके बिना मैं तो) रात-दिन छटपटाया करती हूँ और कामदेव हठपूर्वक गर्जना करता है। सूरदासजी कहते हैं कि ये गोपियाँ इस प्रकार (कह-कहकर) काम (प्रेम) में अत्यन्त पूर्ण होकर सब चुप हो रहीं।

(१४१)

अति रस-लंपट मेरे नैन।
तृप्ति न मानत पिवत कमल-मुख, सुंदरता-मधु-ऐन॥
दिन अरु रैनि दृष्टि-रसना-रस, निमिप न मानत चैन।
सोभा-सिंधु समाइ कहाँ लौं, हृदय साँकरे ऐन॥
अब यह बिरह अजीरन ह्वै कै, बमि लाग्यौ दुख दैन।
सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी, काहि पठाऊँ लैन॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मेरे नेत्र अत्यन्त रस-लम्पट (सुखके लोभी) हैं, ये सौन्दर्य एवं मधुरिमाके भवन (मोहनके) कमल-सदृश मुखका पान करते हुए तृप्ति (संतोष) नहीं मानते। दिन और रात दृष्टिरूपी जीभके स्वादमें रत रहनेपर भी एक पलके लिये शान्त नहीं होते; किंतु (इनके) छोटे-से हृदयरूप भवनमें (वह) सौन्दर्य-सागर कहाँतक समा सकता है। अब (उसीका) अजीर्ण हो जानेके कारण यह वियोगके अश्रु वमन कर-कर दुःख देने लगा है। (इसके चिकित्सक) वैद्य व्रजनाथ (तो) मथुरा हैं, उन्हें ले आने किसे भेजूँ ?

राग केदारो

(१४२)

हरि-दरसन कौं तरसति अँखियाँ ।
झाँकति झखति झरोखा बैठी, कर मीड़ति ज्यौं मखियाँ ॥
बिछुरीं बदन-सुधानिधि-रस तैं, लगति नाहिं पल पँखियाँ ।
इकटक चितवति उड़ि न सकति जनु, थकित भईं लखि सखियाँ ॥
बार-बार सिर धुनति बिसूरति, बिरह-ग्राह जनु भखियाँ ।
सूर सरूप मिले त जीवहिं, काटि किनारें नखियाँ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मेरी आँखें श्यामका दर्शन करनेके लिये तरस रही हैं, (मैं) झरोखे (खिड़की) पर बैठी हुई (इस भाँति) झाँकती और पछताती रहती हूँ जैसे (मधुहीन) मधुमक्खियाँ हाथ (पंख) मलती हैं। (श्यामसुन्दरके) मुखरूपी सुधानिधिके रससे वियुक्त होनेके कारण इनको पाँखें (पलकें) एक पलको भी लगती नहीं और सदा एकटक (ही) देखती और इस भाँति उड़नेमें असमर्थ (सी) जान पड़ती हैं, मानो अपनी सखियोंको देखकर वे थकित (मूर्छित) हो गयी हों। वे (इस भाँति) बार-बार सिर पीटती और रोती हैं मानो वियोगरूपी ग्राह (मगर) (उन्हें) खाये जा रहा हो। ये तो उस (मनोहर) रूपके मिलनेसे ही जीवित रह सकती हैं, जिससे काट (बलपूर्वक पृथक्) कर किनारे डाल दी गयी हैं।

राग सारंग

(१४३)

लोचन व्याकुल दोउ दीन ।
कैसैं रहैं दरस बिनु देखें, बिधु चकोर ज्यौं लीन ॥
बिचरन भए खंज ज्यौं दाधे, बारिज ज्यौं जल-हीन ।
स्याम-सिंधु तैं बिछुरि परे हैं, तरफरात ज्यौं मीन ॥

ज्यौं रितुराज विमुख भृंगी की, छिन-छिन बानी छीन ।
सूरदास प्रभु बिनु गोपालहि, कत बिधना ए कीन ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मेरे दोनों नेत्र दीन होकर व्याकुल हो रहे है। वे (मोहनका) दर्शन किये बिना कैसे रहें; (क्योंकि) वे (उस) चन्द्रमामे चकोरके समान तल्लीन है। ऐसे श्रीहीन हो गये हैं, जैसे झुलसाये हुए खंजन पक्षी अथवा जलसे रहित कमल हों। वे श्यामसुन्दररूपी समुद्रसे वियुक्त हो गये हैं, इससे (इस प्रकार) तड़फड़ाते हैं, जैसे (जलसे पृथक् हुई) मछली। जैसे वसन्त ऋतु न रहनेपर भौंरेकी वाणी प्रतिक्षण शिथिल पड़ती जाती है (वही दशा इनकी है)। (अतः) स्वामी गोपालके विना (ही इन्हे रखना था तो) विधाताने इन (नेत्रों) को बनाया ही क्यों ?

(१४४)

महा दुखित दोउ मेरे नैन ।
जा दिन तैं हरि चले मधुपुरी, नैक न कबहूँ कीन्ही सैन ॥
भरे रहत अति नीर न निघटत, जानत नहिं कब दिन, कब रैन ।
महा दुखित अतिही भ्रम माते, बिन देखें पावत नहिं चैन ॥
जौ कबहूँ पलकौ नहिं खोलति, चाहन चाहति मूरति मैन ।
छाँड़त छिन में ये जु सरीरहि गहि कैं बिथा जात हरि लैन ॥
रसना यहई नेम लियौ है, और नहीं भाषैं मुख बैन ।
सूरदास प्रभु जब तैं बिछुरे, तब तैं सब लागे दुख दैन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मेरे दोनों नेत्र अत्यन्त दुखी हैं। जिस दिनसे श्यामसुन्दर मथुरा गये, उस दिनसे कभी भूलकर भी सोयी नहीं हूँ। (मेरे ये) नेत्र सदा भरे ही रहते हैं, इनका जल समाप्त नहीं होता और न ये यही जानते हैं कि कब दिन हुआ और कब रात हुई। (ये) अत्यन्त दुखी हैं (

अत्यन्त उन्मत्त हो गये हैं। (मोहनको) देखे बिना शान्ति (ही) नहीं पाते। यदि कभी पलक भी नहीं खोलती तो (ये) यही चाहते हैं कि कामदेवके समान (श्यामसुन्दरकी) सुन्दर मूर्ति (जो हृदयमें स्थित है उसे ही) देखा करें और (ध्यानस्थ होनेके कारण) ये जो एक क्षणमे शरीरको छोड देते (शरीरको भूल जाते) हैं सो पीड़ाका मार्ग पकड़कर श्यामसुन्दरको लेने जाते है। (मेरी) जिह्वाने ही यही नियम लिया है कि मुखसे (श्यामसुन्दरकी बात छोड़कर) दूसरी बात बोलती ही नहीं। जबसे स्वामी (मुझसे) वियुक्त हुए है, तबसे सभी (मुझे) दुःख देने लगे हैं।

(१४५)

अँखियाँ करति हैं अति आरि।
सुंदर-स्याम पाहुने के मिस, मिलि न जाहु दिन चारि॥
बाहँ थकी बायसहि उड़ावत, कब देखौं उनहारि।
मैं तौ स्याम-स्याम करि टेरति, कालिंदी कॅगरारि॥
कमल-बदन ऊपर द्वै खंजन, मानौ बूड़त बारि।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरसन बिन, सकै न पंख पसारि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) श्यामसुन्दर! (मेरी) आँखें (तुम्हारे दर्शनोके लिये) अत्यन्त हठ कर रही हैं (अतः इनकी तृप्तिके लिये) अतिथि बननेके बहाने ही सही, चार दिनके लिये मिल जाओ न। (तुम्हारे आगमनका शकुन जाननेके लिये) कौओको उड़ाते-उड़ाते (मेरी) भुजा थक गयी, कब उसी रूपमें तुम्हें देखूँगी? अरे, मैं तो यमुनाके कगारोंपर (तुम्हारी यादमे) 'श्याम! श्याम!' कहकर पुकारती रहती हूँ। (मेरे) कमल-समान मुखपर (नेत्ररूपी) दो खंजन (इस भाँति भीग रहे है) मानो जलमे डूब रहे हों। हे स्वामी! तुम्हारे दर्शनके बिना ये पंख भी (तो) नही फैला सकते (अतः दर्शन देकर इन्हें डूबनेसे बचा लो)।

राग धनाश्री

(१४६)

लोचन लालच तैं न टरैं।
हरि-मुख एक रंग-सँग बींधे दाधे, फेरि जरैं॥
ज्यौं मधुकर रुचि रच्यौ केतकी, कंटक कोटि अरैं।
तैसैंहि लोभ तजत नहिं लोभी, फिरि-फिरि फेरि फिरैं॥
मृग ज्यौं सहज सहत सर दारुन, सनमुख तैं न दुरैं।
जानत आहिं हतें, तन त्यागत, तापै हितै करैं॥
समझि न परै कौन सचु पावत, जीवत जाइ मरैं।
सूर सुभट हठ छाँड़त नाहीं, काटें सीस लरैं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) मेरे नेत्र लालचके वश अपने लक्ष्यसे हटते नही। (वे तो) श्यामसुन्दरके मुखकी शोभासे एक साथ विद्ध (उसपर अनुरक्त) हुए तथा वियोगमें झुलसे, किंतु फिर भी वे जलते ही रहते है। जैसे भौंरा केतकीके पुष्पपर अनुरक्त हो जाय (उससे प्रेम करने लगे तो), फिर चाहे उसे करोड़ो कांटे (क्यों न) चुभें, (उसे वह त्यागता नही)। उसी प्रकार ये लोभी (नेत्र) भी अपना लोभ नहीं छोड़ते और बार-बार उधर ही चक्कर लगाते है। जैसे मृग स्वभावसे ही कठोर बाण सहते है, परन्तु सम्मुखसे हटकर छिपते नहीं। वे (मृग) जानते है कि (व्याधके) बाण मारनेपर शरीर छोड़ना पड़ेगा। इतनेपर भी (उसके गायनसे) प्रेम करते हैं। समझमे नही आता कि ये (नेत्र) वहाँ कौन-सा सुख पाते है जो (पतंगके समान) जीते ही (दीपकपर) जाकर मरते हैं। (वास्तवमें) उत्तम योधा अपना हठ नही छोड़ते, मस्तक कट जानेपर भी युद्ध करते (ही) रहते हैं।

राग सारंग

(१४७)

लोचन चातक ज्यौं हैं चाहत।
अवधि गएँ पावस की आसा, क्रम-क्रम करि निरबाहत॥

सरिता, सिंधु अनेक और सखि, सुत-पति-सजन-सनेह ।
ये सब जल जदुनाथ-जलद बिनु, अधिक दहत हैं देह ॥
जब लगि नहिं बरषत ब्रज ऊपर, नव घन स्याम-सरीर ।
तौ लगि तृषा जाइ कित सूरज, आन ओस कें नीर ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! मेरे) नेत्र (श्यामसुन्दरको) वैसे ही चाहते हैं, जैसे पपीहा बादलको । (जैसे वह) वर्षाका समय बीत जानेपर भी उसीकी आशासे धीरे-धीरे (अपना जीवन) निर्वाह करता (रहता) है (वही दशा हमारे नेत्रोंकी है) । सखी ! पुत्र, पति तथा कुटुम्बियोंके प्रेमरूपी नदियाँ और समुद्र तो अनेक हैं । फिर भी यदुनाथरूपी मेघके बिना (ये सब) शरीरको (और) अधिक जलाते हैं । अतः जबतक वे श्याम शरीरवाले नवीन मेघ (रूप श्यामसुन्दर) व्रजके ऊपर वर्षा नहीं करते (यहाँ नहीं आते), तबतक दूसरे (के प्रेमरूपी) ओसके जलसे इन (नेत्रों) की प्यास कैसे जा सकती है ।

राग केदारौ

(१४८)

(मेरे) नैना बिरह की बेलि बई ।
सींचत नैन-नीर के सजनी, मूल पताल गई ॥
बिगसित लता सुभाइ आपनें, छाया सघन भई ।
अब कैसैं निरवारौं सजनी, सब तन पसरि छई ॥
को जानै काहू के जिय की, छिन-छिन होत नई ।
सूरदास स्वामी के बिछुरें, लागी प्रेम जई ॥

(कोई गोपी कह रही है—) सखी ! मेरे नेत्रोंने वियोगकी लता बोयी है, (जिसकी) जड़ नेत्रोंके जल (आँसुओं) से (बराबर) सींचे जानेके कारण पातालतक पहुँच गयी । अपने स्वभावसे वह लता बढ़ी और

(अब उसकी) छाया (भी) घनी हो गयी, सखी ! अब उसे कैसे पृथक् करूँ, वह तो पूरे शरीरपर फैलकर छा गयी है। किसी (अन्य) के मनकी दशा कौन जाने, (किन्तु) यहाँ (तो) वह (वियोगलता) क्षण-क्षणमें नवीन होती रहती है और स्वामीके वियुक्त होनेसे (अब इसमें) प्रेमके अङ्कुर (भी) लग गये हैं।

राग देवगंधार

(१४९)

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
इन लोभी नैननि के काजैं, परबस भइ जो रहौं॥
बिसरि लाज गइ, सुधि नहिं तन की, अब धौं कहा कहौं।
मेरे जिय में ऐसी आवति, जमुना जाइ बहौं॥
इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़ौं, कहूँ न स्याम लहौं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, इहिं दुख अधिक दहौं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) व्रजमें रहकर किस-किसके ताने सहन करूँ; क्योंकि इन लोभी नेत्रोंके कारण यहाँ पराधीन बनी रहती हूँ। लज्जा भूल गयी, शरीरकी सुधि (भी) रहती नहीं, अब और क्या कहूँ। (इसलिये) मेरे मनमें ऐसी बात आती है कि जाकर यमुनामें बह (प्रवाहित हो) जाऊँ (डूब जाऊँ)। एक वनको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सभी वनोंको ढूँढ़ लिया, पर कहीं श्यामसुन्दरको पा नहीं रही। हे स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके लिये मैं इस (वियोगके) दुःखसे अत्यधिक जल (संतप्त हो) रही हूँ।

राग केदारौ

(१५०)

नैना अब लागे पछतान।
बिछुरत उँमगि नीर भरि आए, अब न कछू औसान॥

तब मिलि-मिलि कत प्रीति बढ़ावत, अब जु भई बिष-बान।
तब तौ प्रीति करी आतुर ह्वै, समझीं कछु न अजान॥
अब यह काम दहत निसि-बासर, नाहीं मेरे मान।
भयौ बिदेस मधुपुरी हम कौ, क्यौंहूँ होत न जान॥
अति चटपटी देखिबे चाहत, अब लागे अकुलान।
सूरदास प्रभु दीन-दुखित ये, लै न गए सँग प्रान॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी मेरे !) नेत्र अब पश्चात्ताप करने लगे है । (श्यामसुन्दरसे) वियोग होते ही (इनमें) उमड़कर जल भर आया और अब (इन्हे) कुछ भी चेत (होश) नहीं है। तब (जब श्यामसुन्दर यहाँ थे) बार-बार मिलकर कैसे (ये) प्रेम बढ़ाते थे, अब वही (प्रेम इनके लिये विषसे) बुझा बाण हो गया। इन अज्ञानियोने तब तो (अत्यन्त) आतुर (अधीर) होकर प्रेम किया और (परिणाम) कुछ समझा नही। अब यह काम (प्रेम) रात-दिन जला रहा है, (जिसे) रोकना मेरे वशकी बात नही। हमारे लिये (तो अब) मथुरा (ही) विदेश हो गयी, (जहाँ) किसी प्रकार जाना नही हो पाता। पहिले तो इन नेत्रोंको उन्हे देखनेकी अत्यन्त उत्सुकता रहा करती थी और अब (उनके बिना) व्याकुल होने लगे है। स्वामी ! ये दीन (नेत्र) अत्यन्त दुखी है, (आप इन्हे हमारे) प्राणोके साथ ले क्यों नही गये ?

राग आसावरी

(१५१)

हौं तौ ता दिन कजरा दैहौं।
जा दिन नंदनँदन के नैननि, अपने नैन मिलैहौं॥
सुनि री, सखी ! यहै जिय मेरे, भूलि न और चितैहौं।
अब हठ सूर यहै ब्रत मेरौ, कौंकिर खै मरि जैहौं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) मै उसी दिन काजल लगाऊँगी, जिस दिन नन्दनन्दनके नेत्रोंसे अपने नेत्र मिला सकूँगी (उनके दर्शन कर सकूँगी)। सखो ! सुन, मेरे चित्तमें यही (निश्चय) है कि भूलकर भी (किसी) दूसरेको नहीं देखूँगी। मेरा अब यही हठ है और यही व्रत है कि यदि वे न आये तो हीरेकी कनीको खाकर मर जाऊँगी।

राग गौरी

(१५२)

कहा इन्ह नैननि कौ अपराध।
रसना रटत सुनत जस स्रवननि, इतनौ अगम अगाध॥
भोजन कहें भूख क्यौं भाजत, बिनु खाए का स्वाद।
इकटक रहत, छुटत नहिं कबहूँ, हरि देखन की साध॥
ये दृग दुखी बिना वह मूरति, कहौ, कहा अब कीजै।
एक बेर ब्रज आनि कृपा करि, सूर सुदरसन दीजै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! मेरे) इन नेत्रोंका ही क्या अपराध है (जो ये ही मोहनके दर्शनसे वञ्चित रह रहे है; क्योकि) जीभ (उनका) नाम लेती रहती है और कानोसे (उनका) सुयश सुनती रहती हूँ—वह इतना अगम्य एवं अथाह (गम्भीर) है। किन्तु भोजनका नाम लेनेसे भूख कैसे दूर हो सकती है और उसे खाये बिना (उसका) स्वाद क्या जाना जा सकता है ? (ये मेरे नेत्र) सदा एकटक (उस ओर ही देखते) रहते है। उधरसे कभी छूटते (हटते) नहीं; क्योकि (उन्हे) श्यामसुन्दरके देखनेकी (अति) लालसा है। ये (मेरे) नेत्र उस मूर्तिके (दर्शन) बिना दुखी है; बताओ, अब क्या किया जाय। (श्यामसुन्दर !) एक बार (पुनः) व्रज आकर और कृपा करके (अपना) उत्तम दर्शन (इन्हे) दे जाओ।

राग मलार

(१५३)

चितवत ही मधुबन दिन जात ।
नैनन नींद परत नहिं सजनी, सुनि-सुनि बातनि मन अकुलात ॥
अब ये भवन देखियत सूने, धाइ-धाइ हम कौं ब्रज खात ।
कौन प्रतीति करै मोहन की, जिन छाँड़े निज जननी-तात ॥
अनुदिन नैन तपत दरसन कौं, हरद-समान देखियत गात ।
सूरदास स्वामी के बिछुरें, ऐसी भई हमारी घात ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) सखी ! (मेरे) दिन मथुराकी ओर देखते हुए ही बीतते है। नेत्रोमें (तो) नींद नही आती और (मोहनके सम्बन्धकी) बातें सुन-सुनकर चित्त व्याकुल होता है। अब ये घर सूने दिखलायी पड़ते है, ऐसा लगता है, मानो व्रज हमें खानेको दौड़ता है। जिन्होंने अपने माता-पिताको (ही) छोड़ दिया, उन मोहनका विश्वास कौन करे; (फिर भी) प्रतिदिन नेत्र उनके दर्शनके लिये संतप्त रहते है और (वियोगमे) शरीर हल्दीके समान पीला दिखलायी पड़ता है। स्वामीका वियोग हो जानेसे हमारी (तो) इस प्रकार हत्या ही हो गयी ।

राग गौरी

(१५४)

मथुरा के द्रुम देखियत न्यारे ।
हाँ हैं स्याम हमारे प्रीतम, चितवत लोचन हारे ॥
कितक बीच, संदेसहु दुरलभ, सुनियत टेरि पुकारे ।
तुव गुन सुमिरि-सुमिरि हम मोहन, मदन-बान उर मारे ॥
तुम्ह बिन स्याम सबै सुख भूल्यौ, गृह बन भए हमारे ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, रैन गनत गइ तारे ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! अब तो) मधुवनके वृक्ष दूसरे ही प्रकारके दिखायी पड़ते हैं; क्योंकि वहाँ हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर हैं। (उन कुञ्जोंकी ओर) देखते-देखते नेत्र थक गये। (मथुरा और व्रजमें) अन्तर कितना है, यहाँसे उच्चस्वरसे पुकारनेपर वहाँ सुन पड़ता है। किन्तु (इतने पास होनेपर भी हमें श्यामसुन्दरका) संदेशतक दुर्लभ हो गया है। मोहन ! हमने तुम्हारे गुण बार-बार स्मरण करके (अपने) हृदयमें कामके बाण मार लिये हैं। श्यामसुन्दर ! तुम्हारे बिना हमें सब सुख भूल गये हैं और हमारे (लिये) घर (ही) वन हो गये हैं। स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके बिना हमारी रात तारे गिनते हुए बीतती है।

राग मलार

(१५५)

देखि सखी, उत है वह गाँउ ।
जहाँ बसत नँदलाल हमारे, मोहन मथुरा नाउँ ॥
कालिंदी के कूल रहत हैं, परम मनोहर ठाउँ ।
जौ तन पंख होहिं सुनि सजनी, अबहिं तहाँ उड़ि जाउँ ॥
होनी होइ होइ सो अबहीं, इहिं ब्रज अन्न न खाउँ ।
सूर नंदनंदन सौं हित करि, लोगनि कहा डराउँ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) देखो सखी ! वहाँ वह ग्राम (नगर) है, जहाँ हमारे नन्दलाल रहते हैं और (जिसका) मनोहर मथुरा नाम है। वहीं वे यमुना-किनारे परम सुन्दर स्थानमें रहते हैं। सखी ! सुनो, यदि मेरे शरीरमें पंख हो जायँ तो (मैं) अभी वहाँ उड़ जाऊँ। जो कुछ होनेवाला हो, अब हो जाय; परंतु (अब) इस व्रजमें अन्न नहीं खाऊँगी। नन्दनन्दनसे प्रेम करके मैं (दूसरे) लोगोंसे क्या डरूँ ?

राग सारंग

(१५६)

लिखि नहिं पठवत हैं द्वै बोल।
द्वै कौड़ी के कागद मसि कौ, लागत है बहु मोल॥
हम इहि पार, स्याम पैले तट, बीच बिरह कौ जोर।
सूरदास प्रभु हमरे मिलन कौं, हिरदै कियौ कठोर॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! श्यामसुन्दर दो शब्द भी (हमें) लिखकर नहीं भेजते, दो कौड़ीके कागज और स्याहीका क्या बहुत मूल्य लगता है ? हम (यमुनाके) इस किनारे और श्यामसुन्दर उस किनारे हैं तथा बीचमें वियोगकी प्रबलता (मिलनमें बाधक) है। स्वामीने हमसे मिलनेके लिये अपना हृदय कठोर कर लिया है।

(१५७)

देखि-देखि मधुबन की बाटहिं, धुँधरे भए मेरे नैन।
अवधि गनत अँगुरिनि छाले परे, रटत जु थाके बैन॥
आपुन जाइ मधुपुरी छाए, कुबिजा सँग सुख-चैन।
सूरदास प्रभु अबिचल जोरी, वह कुबरी ये बैंन॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मथुराके मार्गकी ओर देखते-देखते मेरे नेत्र धुँधले (ज्योतिहीन) हो गये, अवधि (श्यामके लौटनेके समय) को गिनते-गिनते अँगुलियोंमें छाले पड़ गये और उनको पुकारते-पुकारते वाणी (जीभ) थक गयी। वे स्वयं जाकर मथुरामें बस गये और कुब्जाके साथ आनन्द-मौज कर रहे हैं। हमारे स्वामीकी यह जोड़ी स्थिर रहे (टूटे नहीं); क्योंकि वह कुबड़ी (है तो) ये तिरछे (त्रिभङ्ग) हैं।

(१५८)

आली, देखत रहे नैन मेरे वा मधुबन की राइ।
कै हरि कौं हम आनि मिलावै, कै हमहीं लै जाइ॥
मिलि कैं बिछुरे, पलक न लागै, रही दिखाइ-दिखाइ।
सूर स्याम हम अतिहिं दुखित हैं, सपनेहूँ मिलि जाइ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी! मेरे नेत्र उस मथुराके मार्गकी ओर ही देखते रहते है। (अब) या तो (कोई) श्यामसुन्दरको लाकर हमसे मिला दे या हमको ही वहाँ ले जाय। मिलनेके बाद जबसे वियोग हुआ है, तबसे पलकें नही लगी हैं। बराबर (मार्ग) देखती रहती हूँ। श्यामसुन्दर! आपके बिना हम अत्यन्त दुखी है, आप हमें स्वप्नमे ही मिल जाते।

राग केदारौ

(१५९)

जब तैं बिछुरे कुंज-बिहारी।
नींद न परै, घटै नहिं रजनी, बिथा बिरह जुर भारी॥
सरद-रैन नलिनी-दल-सीतल जगमग रही उज्यारी।
रबि-किरनन तैं लागत ताती, इहिं सीतल ससि जारी॥
स्रवनन सबद सुहाइ न सखि री, पिक-चातक द्रुम-डारी।
* उर तैं सखी, दूरि करि हारहि, कंकन धरहि उतारी॥
सूर स्याम बिनु दुख लागत है, कुसुम-सेज करि न्यारी।
बिलख बदन बृषभानु-नंदिनी, करि बहु जतन जु हारी॥

(एक गोपी कह रही है—सखी!) जबसे कुञ्जविहारी बिछुड़े हैं, तबसे वियोगकी वेदनारूपी भारी ज्वर हो गया है (जिससे) न तो नींद

---

* विशेषभाष्य-पाठ—उर तें दूरि करै किन्ह हारै…… ।

आती है और न रात ही घट (कट)ती है। शरद् (ऋतु) की रात्रि कमलकी पंखुड़िये-जैसी शीतल होती है। (ऐसी रात्रिमें) चाँदनी जगमग कर रही है; किंतु (मुझे तो) यह सूर्यकी किरणोंसे भी उष्ण लगती है और इस शीतल (कहलानेवाले) चन्द्रमाने भी मुझे जला डाला है। सखी ! वृक्षोंकी डालियोंपर बैठे कोकिल और पपीहेका शब्द कानोंको सुहाता नहीं (अच्छा नहीं लगता)। सखी ! मेरे हृदयपरसे (इस) हारको दूर कर दे और कंगनको (भी) उतार कर रख दे। श्यामसुन्दरके बिना (ये सब) दुःखदायी लगते हैं, अतः इस फूलोंकी शय्याको भी अलग कर दे। सूरदासजी कहते हैं—(इस प्रकार) श्रीवृषभानुकुमारी श्रीराधा उदास-मुख होकर बहुत-से उपाय करके थक गयी (फिर भी किसी प्रकार वियोगका दुःख कम नहीं हुआ)।

राग नट

(१९०)

स्वप्न-दशा-वर्णन

सपनेहू में देखिऐ, जौ नैन नींद परै।
बिरहिनी ब्रजनाथ बिनु कहि, कहा उपाइ करै॥
चंद, मंद समीर सीतल, सेज सदा जरै।
कहा करौ, किहुँ भाँति मेरौ मन न धीर धरै॥
करै जतन अनेक बिरहिनि, कछु न चाढ़ सरै।
सूर सीतल कृष्न बिनु तन कौन ताप हरै॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी !) यदि नेत्रोंमें नींद आ जाय तो स्वप्नमें ही (श्यामसुन्दरको) देख लूँ; (किंतु) (नींद आती नहीं, अतः) वियोगिनी व्रजनाथके बिना, बताओ, क्या उपाय करे। चन्द्रमाकी चाँदनी है, शीतल-मन्द वायु चलता है, फिर भी शय्या सदा जलती रहती है। क्या करूँ, किसी प्रकार मेरा मन धैर्य धारण नहीं करता।

सूरदासजी कहते हैं कि वियोगिनी अनेक उपाय करती है, किंतु उसके मनकी इच्छा पूरी होती नही। परम शीतल श्रीकृष्णचन्द्रके बिना इसके शरीरका संताप कौन दूर कर सकता है।

राग सारंग

(१६१)

इतनी दूरि गोपालहि माई, नहिं कबहूँ मिलि आई।
कहिऐ कहा, दोष किहिं दीजै, अपनी ही जड़ताई॥
सोवत मैं सपनें सुनि सजनी, ज्यौं निधनीं निधि पाई।
गनतै आनि अचानक कोकिल उपबन बोलि जगाई॥
जौ जागौं तौ कहा उठि देखौं, बिकल भई अधिकाई।
नूतन किसलै-कुसुम दसौं दिसि मधुकर मदन-दुहाई॥
बिछुरत तन न तज्यौ तेही छिन, सँग न गई हठि माई।
समुझि न परी सूर तिहिं औसर, कीन्ही प्रीति हँसाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! गोपालके इतनी-सी (अल्प) दूर रहनेपर भी मैं कभी उनसे मिलकर नहीं आयी, इसके लिये क्या कहा—किसे दोष दिया जाय। यह तो अपनी ही मूर्खता है। सखी ! सुनो, सोते समय स्वप्नमें (मैंने) कंगालिनीके समान (श्यामसुन्दररूपा) सम्पत्ति प्राप्त की। किंतु उसे गिन ही रही थी (देख ही रही थी) कि अचानक उपवनमें आकर कोकिलने बोलकर (मुझे) जगा दिया। जो जागती हूँ तो फिर क्या देखूँ, उल्टे अधिक व्याकुल हो गया; क्योंकि कामदेवका दुहाई—विजयघोष दशों दिशाओंमें नवीन पल्लव, पुष्प और भौरोंने (गुंजार करके) फैला दी। सखी ! (मोहनका) वियोग होते समय उसी क्षण मैंने शरीर नहीं छोड़ा और न हठपूर्वक उनके साथ ही गयी। उस समय तो (यह दशा होगी, ऐसी बात) समझमें नहीं आयी। (अब) प्रेमका उपहास (मिथ्या प्रेम प्रकट) कर रही हूँ।

राग धनाश्री

(१६२)

अब ह्याँ हेत है कहाँ। *
जहँ वे स्याम मदन-मूरति, चलि मोहि लिवाइ तहाँ ॥
कुटिल अलक, मकराकृत कुंडल, सुंदर नैन विसाल।
अरुन अधर, नासिका मनोहर, तिलक-तरनि ससि भाल ॥
दसन-ज्योति दामिनि ज्यौ दमकति, बोलत बचन रसाल।
उर बिचित्र बनमाल बनी, ज्यौं कंचन-लता तमाल ॥
घन-तन पीत बसन सोभित अति, जनु अलि कमल-पराग।
विपुल वाहु भरि कृत परिरंभन, मनहुँ मलय-द्रुम नाग ॥
सोवत ही सुपने में अति सुख सत्य जानि जिय जागी।
सूरदास प्रभु प्रगट मिलन कौं चातक ज्यौं रट लागी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) अब यहाँ प्रेम कहाँ है। जहाँ कामदेवके समान सुन्दर मूर्तिवाले श्यामसुन्दर है, वही मुझे लिवा चल। उनकी घुँघराली अलकें, (कानों मे) मकराकृत कुण्डल और सुन्दर बडे-बडे नेत्र है, लाल ओष्ठ है, मनोहर नासिका है तथा चन्द्रमाके समान ललाटपर सूर्य-सा (गोरोचनका) तिलक लगा है। जब वे रसमय वाणी बोलते है, तब (उनके) दाँतोंकी

---

* यह पद काँकरोलीकी दो हस्तलिखित तथा नवलकिशोर प्रेस लखनऊकी मुद्रित प्रतियोंमें मिलता है। वहाँ पाठ है—'अब वे इहाँ हे, ते कहाँ।' जो स्वप्नदशाका बोधक है। द्वितीय पंक्तिका पाठ भी उपयुक्त है,—'जहँ वे स्याम मदन-मूरति सखि, लै चलि मोहि तहाँ।' अर्थ-संगति भी ठीक है, जिसे नवी और दसवी पंक्तियाँ स्पष्ट कर रही है।

कान्ति बिजलीके समान चमकती है तथा वक्षःस्थलपर वनमाला (इस प्रकार) अद्‌भुत शोभा दे रही है, जैसे तमाल वृक्षपर स्वर्णलता चढ़ी हो। मेघके समान शरीरपर पीताम्बर (इस भाँति) अत्यन्त सुशोभित है, मानो कमलके परागसे मण्डित भ्रमर हो। उन्होंने विशाल भुजाओंसे वेष्टितकर (मुझे इस प्रकार) आलिङ्गन दिया, मानो चन्दनके वृक्षमें साँप लिपट गया हो। यह महान् सुख (मुझे) सोते समय स्वप्नमें मिला; (जिसे) मैं मनमें सत्य समझकर जाग गयी। (अब) स्वामीसे प्रत्यक्ष मिलनेके लिये चातकके समान रट लगा रही है।

राग मलार

(१६३)

सपनें हरि आए, हौं किलकी।
नींद जु सौत भई रिपु हम कौं, सहि न सकी रति तिल की॥
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, रोकें रहति न हिलकी।
तन फिरि जरनि भई नख-सिख तैं, दिया-बाति जनु मिलकी॥
पहिली दसा पलटि लीन्ही है, तुचा तचकि तन पिलकी।
अब कैसैं सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिल की॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) स्वप्नमें (ज्यों ही मेरे पास) श्यामसुन्दर आये, त्यों ही मैं (आनन्दसे) किलक उठी (अत्यन्त प्रसन्न हो गयी)। किंतु (उस समय) मेरी सौत निद्रा मेरे लिये शत्रु बन गयी, तनिक देरको भी उनके साथ प्रीति सह न सकी। जब जागी तो (देखती हूँ कि मेरे पास) कोई नहीं, अतः (अब) रोकनेपर भी हिलकियाँ बंद नहीं होतीं और शरीरमें नखसे चोटीतक फिर ऐसी जलन हो गयी, जैसे दीपकके साथ बत्तीका संयोग कर दिया

गया हो। संतप्त होकर शरीरका चमडा पीला हो पहिलेकी दशामे ही बदल गया है। अब (यह पीडा) कैसे सही जायगी। हमारी दशा (तो) पत्थरके समान (सदा धूपमें जलते पड़े रहने जैसी) हो गयी है।

राग कान्हरौ

(१६४)

मैं जान्यौ री आए हैं हरि, चौंकि परे तैं पुनि पछितानी।
इते मान तलफत तनु बहुतै, जैसैं मीन तपति बिनु पानी॥
सखि सुदेह तौ जरति बिरह-जुर, जतनन नहिं प्रकृती ह्व आनी।
कहा करौं अब अपथ भए मिलि, बाढ़ी बिथा, दुःख दुहरानी॥
पठवौं पथिक सब समाचार लिखि, बिपति बिरह बपु अति अकुलानी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, कैसै घटत कठिन यह कानी॥

(कोई गोपी कह रही है—) सखी! मैंने समझा था कि श्यामसुन्दर (सचमुच) आये है। पर (अपने) चौंक पड़नेसे फिर पछता रही हूँ। इससे शरीर इतना अधिक तड़प रहा है, जैसे पानी के बिना मछली तड़फड़ाती हो। सखी! (यह) सुन्दर शरीर (तो) वियोगके ज्वरमें जल रहा है, (अब) इसे उपायोके द्वारा स्वाभाविक (स्वस्थ) दशामें नही लाया जा सकता। क्या करूँ, अब (देहके सारे अङ्ग) मिलकर बिना पथके चलने (कुमार्गपर जाने) वाले हो गये है। (जिससे) वेदना बढ़ गयी और दुःख दूना हो गया। (अब ये) सब समाचार लिखकर किसी यात्रीको (मथुरा) भेजूँ कि 'वियोगरूपी विपत्तिसे (आपके प्रेमीका) शरीर अत्यन्त व्याकुल हो गया है, अतः स्वामी! तुम्हारे दर्शनके बिना (मेरा) यह दुःख कैसे कम हो।'

राग मलार

(१६५)

जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, अंत लगी पछितान।
जानौं साँच मिले मनमोहन, भूली या अभिमान॥
नींदहि में मुरझाइ रही हौं, प्रथम पंच-संधान।
अब उर-अंतर, मेरी माई, सपन छुटे छल-बान॥
सूर सकति जैसैं लछिमन-तन विह्वल ह्वै मुरझान।
ल्याउ सजीवन मूरि स्याम कौं, तौ रहिहैं ये प्रान॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) जो (नींदसे) जगती हूँ तो (देखती हूँ कि) कोई (वहाँ) नहीं है, इससे अन्तमें पश्चात्ताप करने लगी। मैंने (स्वप्नमें देखकर) समझा कि मनमोहन सचमुच मिल गये और इसी अभिमानमें भूल गयी। निद्रामें ही मैं कामदेवके प्रथम आघातसे ही म्लान हो रही थी; किंतु मेरी सखी ! यह बात तब मेरे मनमें आ गयी कि वह स्वप्न भी छलसे छोड़े (मारे) गये बाणके समान (अधिक पीड़ा देनेवाला) था। जैसे लक्ष्मणके हृदयमें (मेघनादद्वारा छोड़ी) शक्तिके लगनेपर उनका हाल बेहाल हो गया था, उसी प्रकार मेरा शरीर व्याकुल हो मूर्छित (चेतनाहीन) हो गया है। अब तो तू श्यामसुन्दररूपी संजीवनी जड़ीको ले आ, तभी ये प्राण रहेंगे।

राग कल्यान

(१६६)

हरि-बिछुरन निसि नींद गई री।
बन पिक, बरह, सिलीमुख मधुव्रत बचनन हौं अकुलाइ लई री॥
वह जु हुती प्रतिमा समीप की, सुख-संपत्ति दुरित चितई री।
तात [illegible] जनी, सेज सजल दृग नीर मई री॥

अवधि-अधार जु प्रान रहत हैं, इन्ह सबहिन मिलि कठिन ठई री।
सूरदास प्रभु सुधा-दरस बिनु, भई सकल तन बिरह रई री॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी! श्यामसुन्दरका वियोग होनेसे रातमें नींद आना (भी) बंद हो गया। वनमें कोकिल, मयूर और पुष्पोंका मधु पीनेवाले भौंरे हैं। उन्होंने अपने शब्दोंसे मुझे व्याकुल कर दिया है। वह तो अपने पासमें (मोहनरूप) सुख और सम्पत्तिकी मूर्ति थी, उसपर मेरे पापोंकी दृष्टि पड़ गयी (मेरे पापोंके फलसे वह दूर चली गयी)। इससे सुन सखी! आँसुओंके जलसे भीगती मेरी (वह) शय्या सदा गीली रहती है। (श्यामने लौटनेका जो समय दिया है, उस) अवधिके आधारसे (किसी प्रकार) प्राण (देहमें) टिके हुए हैं। पर इन (कोकिल, मयूरादि) सबोंने मिलकर (मुझे अब-दुःख देनेका) कठोर निश्चय कर लिया है। अतः स्वामीके अमृतमय दर्शन बिना पूरे शरीरसे वियोगमें लीन हो गयी हूँ—डूब गयी हूँ।

राग केदारो

(१६७)

बहुरो भूलि न आँखि लगी।
सुपनेहू के सुख न सहि सकी, नींद जगाइ भगी॥
बहुत प्रकार निमेष लगाए, छुटी नहीं सुठगी।
जनु हीरा हरि लियौ हाथ तें, ढोल बजाइ ठगी॥
कर मींड़ति पछिताति बिचारति, इहिं बिधि निसा जगी।
वह मूरति वह सुख दिखरावै, सोई सूर सगी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी! उनके मथुरा जानेके बाद) फिर भूलकर भी मेरी आँख (कभी) नहीं लगी और (निद्रा आयी भी तो) स्वप्नका सुख वह सह न सकी, मुझे जगाकर (वह) भाग गयी। अनेक प्रकारसे मैंने पलकें बंद कीं; किंतु

(निद्राकी) शठता छूटी नहीं, जिससे (उनसे मेरे) हाथसे श्यामसुन्दररूपी हीरा लेकर मुझे ढोल बजाकर (घोषणा करके) ठग लिया। मैं हाथ मलती, पश्चात्ताप करती और विचार करती इसी प्रकार पूरी रात जागती रही। (अब तो जो कोई मोहनकी) वह मूर्ति और वह आनन्द दिखला दे, वही मेरी अपनी (आत्मीय) है।

राग धनाश्री

(१६८)

अब, सखि, नींदौ तौ जु गई।
भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचनि ओट लई ॥
तब अति रस करि कंत बिमोह्यौ, आगम अटक दई।
सुपनेहूँ संजोग सहति नहिं, सहचरि सौति भई ॥
कहतहिं पोच, सोच मनहीं-मन, करत न बनत खई।
सूरदास तन तजें भलें बनै, बिधि बिपरीति ठई ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! अब नींद भी तो (इस भाँति) चली गयी, जैसे अपने चित्तमें (मेरे पास रहनेमें) अपना अपमान समझकर वह संकोचकी आड़ ले भाग गयी हो। तब (मिलनके समय तो इस निद्राने) अत्यन्त प्रेम करके प्रियतमको विमुग्ध किया (उन्हे निद्रित कर दिया) तथा (इस प्रकार) आगे मिलनमें बाधा डाल दी और अब (यह) स्वप्नमें भी उनका मिलना सहती नहीं, साथ रहनेवाली होकर (भी) सौत बन गयी है। मैं मन-ही-मन चिन्ता करती हुई (इसे) बुरी कहती ही हूँ किंतु (इसके साथ) झगड़ा करते बनता नहीं। अब तो शरीर छोड़ देनेपर ही भले कुछ हो, दूसरे जन्ममें मोहन मिलें तो मिलें, इस जन्ममें तो) विधाताने ही उलटा विधान रच दिया है।

(१६९)

सखी री काहे रहति मलीन।
तन सिंगार कछू देखति नहिं, बुधि-बल-आनँद-हीन ॥
मुख तमोर, नैननि नहिं अंजन, तिलक ललाट न दीन।
कुचिल वस्त्र, अलकैं अति रूखी, दिखियत है तन छीन ॥
प्रेम-तृषा तीनौं जन जानैं—बिरही, चातक, मीन।
सूरदास बीतत जु हृदय में, जिन्ह जिय परबस कीन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) 'सखी! तू मलिन (उदास) क्यों रहती है। मैं (तेरे) शरीरपर कोई शृङ्गार नही देखती, किंतु बुद्धि, बल और आनन्दसे रहित (देखती) हूँ। मुखमें पान और आँखोमें अंजन नही है, ललाटपर तिलक (भी) नहीं लगाया है, कपड़े मैले हैं, केश अत्यन्त रूखे हैं और शरीर अत्यन्त कृश दिखायी पड़ता है।' (इसपर दूसरी गोपी कहती है—) प्रेमकी प्यासको तीन प्रकारके प्राणी ही जानते हैं—वियोगी, चातक और मछलियाँ। जिन्होने (अपना) मन दूसरेके अधीन कर दिया है, उसके हृदयपर जो बीतती है, उसे वह ही समझ सकता है (दूसरा नहीं)।

राग मलार

(१७०)

हम कौं सपनेहू मैं सोच।
जा दिन तैं बिछुरे नँदनंदन, ता दिन तैं यह पोच ॥
मनु गुपाल आए मेरैं गृह, हँसि करि भुजा गही।
कहा कहौं बैरिनि भई निद्रा, निमिष न और रही ॥
ज्यौं चकई प्रतिबिम्ब देखि कैं, आनंदै पिय जानि।
सूर पवन मिलि निठुर बिधाता चपल कियौ जल आनि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मुझे स्वप्नमें भी सोच (चिन्ता) रहता है। जिस दिनसे नन्दनन्दनका वियोग हुआ है, उसी दिनसे यह बुरी दशा हो गयी है। (स्वप्नमें ऐसा लगता है) मानो गोपाल मेरे घर आये और हँसकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा; पर क्या करूँ, निद्रा मेरी शत्रु हो गयी, वह एक पल भी और नहीं रही (उसी क्षण टूट गयी)। जैसे चक्रवाकी (जलमें अपना ही) प्रतिबिम्ब देख और उसे (ही) प्रियतम समझकर आनन्दित हो जाती है, किंतु निष्ठुर विधातासे मिला हुआ वायु जलको चञ्चल कर देता है (जिससे प्रतिबिम्ब लुप्त हो जानेपर वह दुःखित होती है, वही मेरी दशा है)।

राग बिहागरौ

(११)

हरि बिन बैरिन नींद बढ़ी।
हौं अपराधिन चतुर बिधाता, काहे बनाइ गढ़ी॥
तन, मन, धन, जोवन, सुख, संपति बिरहा-अनल डढ़ी।
नंदनँदन कौ रूप निहारति, अह-निसि अटा चढ़ी॥
जिहिं गुपाल मेरे बस होते, सो बिद्या न पढ़ी।
सूरदास प्रभु हरि न मिलैं तौ घर तैं भली मढ़ी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दरके बिना (यह) निद्रा भी (मेरी) अधिक शत्रु हो गयी है। (ऐसी दशामें) मुझ अपराधिनी (पापिनी) को चतुर विधाताने क्यों सम्हालकर बनाया ? शरीर, मन, धन, युवावस्था, सुख तथा सम्पत्ति—सब वियोगकी अग्निमें भस्म हो गये। अब रात-दिन अटारीपर चढ़कर नन्दनन्दनका रूप [illegible] ी हूँ (किंतु वह दिखायी नहीं देता)। जिससे [illegible] ते, वह विद्या मैंने पढ़ी ही नहीं ([illegible] गुण [illegible] श्याम यदि न मिलें तो

भवनसे तो (वह साधुकी) कुटिया ही भली (जहाँ वह अपने प्रियतमको ध्यानमे देखा करता है)।

राग मलार

(१७२)

सुनौ सखी, ते धन्य नारि।
जे आपने प्रान-बल्लभ की सपनेहूँ देखति अनुहारि॥
कहा करौ री चलत स्याम के, पहिलेंहि नींद गई दिन चारि।
देखि, सखी! कछु कहत न आवै, झीखि रही अपमाननि मारि॥
जा दिन तै नैननि अंतर भए, अनुदिन अति बाढ़त है बारि।
मनौ सूर दोउ सुभग सरोवर उँमगि चले मरजादा टारि॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी! सुनो, वे स्त्रियाँ धन्य है, जो स्वप्नमें अपने प्राणवल्लभकी मूर्ति देखती है। मैं क्या करूँ, श्यामसुन्दरके जाते समय मेरी निद्रा उनसे चार दिन पहले ही चली गयी। देखो, सखी! कुछ कहते नही बनता, (रात-दिन) अपमानोके मारे मनमे कुढ़ती रहती हूँ। जिस दिनसे मेरे मोहन नेत्रोसे ओझल हुए (उसी दिनसे) दिनोदिन (नेत्रोमे) अत्यन्त जल (इस भाँति) बढ़ता जाता है, मानो दो सुन्दर सरोवर मर्यादा (सीमा) को तोड़कर उमड़ पडे हो।

(१७३)

हम कौं जागत रैनि बिहानी।
कमल-नैन, जग-जीवन की, सखि, गावत अकथ कहानी॥
बिरहँ अथाह होत निसि हम कौं, बिनु हरि समुद समानी।
क्यौं करि पाव बिरहिनि पारहि, बिनु केवट अगवानी॥
उदित सूर चकई मिलाप, निसि अलि जु मिलै अरबिंदहि।
सूर हमै दिन-राति दुसह दुख, कहा कहैं गोबिंदहि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मुझे जागते रहकर, जगत्‌के जीवन (स्वरूप) कमललोचनकी अकथनीय कथा गाते हुए ही रात बीतती है। श्यामसुन्दरके बिना मेरे लिये रात वियोगका अथाह समुद्र हो जाती है और मैं उस (समुद्र) मे डूब जाती हूँ। भला, वियोगिनी (श्यामसुन्दररूपी) केवटके मार्गदर्शनके बिना उस (विरह-सागर) का पार कैसे पा सकती है। सूर्यके उदय होनेपर चकोरीका (अपने प्रियतमसे) मिलाप हो जाता है और रातमे भौंरे कमलसे मिलते (उसीमे निवास करते) है; किंतु हमे तो रात-दिन असहनीय दुःख-ही-दुःख है, गोविन्दको क्या कहे।

राग सोरठ

(१७४)

पिय बिनु नागिन कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात॥
जंत्र न फुरत, मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी मुरि-मुरि लहरैं खात॥

(कोई गोपी कहती है—सखो !) प्रियतमके बिना काली रात सर्पिणी-सी हो गयी है। यदि कहीं रात्रिमे चाँदनी उग आती है तो वह डँसकर उलटी (विपरीत, अत्यन्त दुःख देनेवाली) हो जाती है। इसपर कोई यन्त्र स्मरण नही आता और न मन्त्र ही प्रभाव करता है, केवल प्रेमसे ही (यह) सिरायी (विषहीन) की जाती है। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके बिना (व्रजकी) वियोगिनी (गोपियाँ) मुड़-मुड़कर (करवट ले-लेकर) लहरें-सी खाती (मूर्छित हुई जाती) है।

(१७५)

तिरिया रैन घटें सचु पावै।
अंचल लिखत स्वान की मूरति, उडुगन पथहि दिखावै॥
हँसत कुमोदिनि, बिहँसत पदमिनि, भँवर निकट गुन गावै।
तजत भोग चकई-चकवा, जल सारँग बदन छिपावै॥

अपने सुख संपति के काजैं कस्यप-सुतै मनावै।
सूरदास कंकन द्यौं तबहीं, तमचुर बचन सुनावै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) यदि रात्रि घटे (समास हो) तो (व्रज-) नारी शान्ति पाये। वह अञ्चलपर कुत्तेकी मूर्ति बनाती है और उसे तारोंका मार्ग दिखलाती है (कि उन तारोंको दौड़कर खा ले)। कुमुदिनी (चन्द्रको सामने पाकर) हँसती (खिलती) है, पद्मिनी भी प्रसन्न होती है; क्योंकि उसके पास (उसमें बंद होकर) भौंरा (उसके) गुण गा रहा (गुंजार कर रहा) है। (हाँ) चकोरी और चकोर अपना (सुख-) भोग छोड़ देते (वियुक्त हो जाते) हैं, जब कि सूर्य पानीमें अपना मुख छिपा लेता (अस्त हो जाता) है। अतः (गोपी) अपनी सुख-सम्पत्ति (शान्ति) के लिये कश्यपजीके पुत्र अरुणकी मनौती मानती है कि (मैं तुम्हें) उसी समय अपना कंगन दे दूँगी (अथवा कुंकुमसे कंगनके आकारका मंडल बनाकर तुम्हारी पूजा करूँगी) जब (अरुणोदय देखकर) मुर्गे बोलने लगें।

राग मलार

(१७६)

मोकौं, माई, जमुना जम ह्वै रही।
कैसैं मिलौं स्यामसुन्दर कौं, बैरिन बीच बही॥
कितक बीच मथुरा औ गोकुल, आवत हरि जु नहीं।
हम अबला कछु मरम न जान्यौ, चलत न फेंट गही॥
अब पछितात, प्रान दुख पावत, जाति न बात कही।
सूरदास-प्रभु सुमरि-सुमरि गुन, दिन-दिन सूल सही॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! मेरे लिये यमुना यमराज हो रही है। मैं श्यामसुन्दरसे कैसे मिलूँ, यह शत्रु होकर (व्रज और मथुराके) बीचमें बह रही है। (अरे) मथुरा और गोकुलमें

छूरी ही कितनी है, जो श्यामसुन्दर (यहाँ) नहीं आते। हम अबलाओंने (उनके जानेका) कुछ रहस्य समझा नहीं, इसलिये जाते समय उनकी फेंट (धोतीका बन्धन) पकड़कर रोका नहीं। अब पश्चात्ताप करते प्राण दुःख पा रहे हैं, कोई बात कही नहीं जाती। (केवल) स्वामीके गुणोंका बार-बार स्मरण करके (हम) दिनोंदिन (अधिकाधिक) वेदना सह रही हैं।

राग धनाश्री

(१७७)

नैन सलोने स्याम, बहुरि कब आवैंगे॥
वे जो देखत राते-राते फूलन फूली डार।
हरि बिन फूलझरी-सी लागत, झरि-झरि परत अँगार॥
फूल बिनन नहिं जाउँ सखी री, हरि बिन कैसे फूल।
सुनि री सखि ! मोहि राम-दुहाई, लागत फूल त्रिसूल॥
जब मैं पनघट जाउँ सखी री, वा जमुना कें तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन्ह नैनन कें नीर॥
इन नैनन कें नीर सखी री, सेज भई घरनाउ।
चाहति हौं ताही पै चढ़ि कैं, हरि जू कें ढिग जाउँ॥
लाल पियारे प्रान हमारे, रहे अधर पै आइ।
सूरदास-प्रभु कुंज-बिहारी, मिलत नहीं क्यौं धाइ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) सलोने नेत्रवाले श्यामसुन्दर कब फिर (यहाँ) लौटकर आयेंगे ? वे जो (पलाशके) लाल-लाल फूलोंसे फूली डालें दिखायी पड़ती हैं, वे श्यामसुन्दरके बिना फुलझड़ी-जैसी लगती है, जिनसे बार-बार अंगारे झड़ रहे हैं। सखी ! मैं फूल चुनने नहीं जाऊँगी, श्यामसुन्दरके बिना ये फूल कैसे। अरी सखी ! सुन, मुझे श्रीरामकी शपथ, वे फूल तो मुझे त्रिशूल-जैसे (वेधक) लगते हैं। सखी ! जब उस यमुनाके किनारे मैं जल भरने

जाती हूँ, तब मेरे इन नेत्रोके जलसे (वह) यमुना बार-बार पूर्ण हो उमड़कर बहने लगती है। अरी सखी ! इन नेत्रोके जलके कारण शय्या घरमें नौकाके समान हो गयी (तैरने लगी) है; मैं चाहती हूँ कि उसी-पर बैठकर (अब) श्यामसुन्दरके पास चली जाऊँ। लाल ! हमारे प्यारे प्राण अब ओष्ठोपर आ गये हैं (निकलनेवाले ही हैं); अतः कुंजविहारी स्वामी ! (तुम) दौडकर मिल क्यों नही जाते ?

(१७८)

वे नहिं आए प्रान-पियारे। मुरलि बजाइ मन हरे हमारे।
तब तैं गोकुल गाँव बिसारे। जब लै क्रूर अक्रूर सिधारे॥
तब तैं ये तन परे जु कारे। जब तैं लागी हृदय दवा रे।
सूरदास-प्रभु जग-उजियारे। निसि-दिन पपिहा रटत पुकारे॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) वे प्राणप्यारे नही आये, जिन्होने वंशी बजाकर हमारे चित्त चुरा लिये हैं। जबसे क्रूर-हृदय अक्रूर उन्हें लेकर चले गये, तभीसे उन्होने (इस) गोकुल ग्रामको भुला दिया है। जबसे (मेरे) हृदयमें विरहरूप अग्नि लगी है, तभीसे यह (मेरा) शरीर (श्यामसुन्दरके रंगमें रँगकर) काला पड़ गया है। स्वामी ! तुम तो विश्वको प्रकाशित करनेवाले हो (देखो तो सही कि यहाँ मैं) पपीहाके समान (तुम्हारे नामकी) रट लगाये रात-दिन (तुम्हें) पुकारती हूँ (फिर भी तुम नही आते)।

राग मलार

(१७९)

बहुरौ गोपाल मिलैं, सुख सनेह कीजै।
नैनन-मग निरखि बदन, सोभा-रस पीजै॥
मदन-मोहन हिरदैं धरि, आसन उर दीजै॥
परै न पलक आँखिनि की, देखि-देखि जीजै॥

मान छाँड़ि प्रेम-भजन, अपनौ करि लीजै।
सूर सोइ सुहागि नारि, जासौं मन भींजै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) यदि फिर गोपाल मिल जायँ तो उनसे आनन्दपूर्वक प्रेम किया जाय और उनके मुखको देखकर नेत्रोंके मार्गसे उनकी शोभाके रसको पिया जाय। मदनमोहनको हृदयमे धारण करके उन्हें वक्ष.स्थलका ही आसन दिया जाय तथा आँखोंकी पलकें भी न गिरते हुए उन्हे देख-देखकर जीवन-धारण किया जाय। मानको छोड़कर (उनका) प्रेमपूर्वक भजन करके (उन्हें) अपना बना लिया जाय। सौभाग्यवती स्त्री वही है, जिसके प्रति उनका चित्त स्नेहार्द्र हो।

राग केदारौ

(१८०)

सखी री, हरि आवहिं किहिं हेत।
वे राजा, तुम ग्वारि बुलावत, यहै परेखौ लेत॥
अब सिर कनक-छत्र राजत है, मोर-पंख नहिं भावत।
सुनि व्रजराज पीठि दै बैठत, जदुकुल-बिरद बुलावत॥
द्वारपाल अति पौरि बिराजत, दासी सहस अपार।
गोकुल गाइ दुहत दुख कौ लौं, सूर सहे इक बार॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! श्यामसुन्दर किस लिये (गोकुल) आयें। वे राजा हैं और तुम ग्वालिनी उन्हें बुलाती हो, यही तो वे दुःख ले (समझ) रहे हैं। अब (उनके) मस्तकपर सोनेका छत्र शोभा देता है, मयूर-पिच्छ (उन्हें) प्रिय नहीं लगता। 'व्रजराज' सम्बोधन सुनकर पीठ फेरकर बैठ [illegible] का सुयश-गान कराते है। (अब)
व [illegible] देते हैं, (भवनमे) [illegible]

हैं। भला गोकुलमें गायें दुहनेका कष्ट वे कबतक सहते, एक बार (किसी प्रकार) सह लिया (सो सह लिया)।

राग मलार

(१८१)

चलत न माधौ की गही बाहैं।
बार-बार पछिताति तबहि तैं, यहै सूल मन माहैं॥
घर, बन कछु न सुहाइ रैनि-दिन, मनहुँ मृगी दव दाहैं।
मिटति न तपति बिना घनश्यामहि, कोटि घनी घन छाहैं॥
बिलपति अति पछिताति मनहिं-मन, चंद गहैं जनु राहैं।
सूरदास-प्रभु दूर सिधारे, दुख कहिऐ किहि पाहैं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) जाते समय (मैंने) माधवकी बाँह न पकड़ ली—यही वेदना मनमें है और तभीसे बार-बार पश्चात्ताप करती हूँ। (मुझे) रात-दिन घर अथवा वन—कुछ भी (उसी प्रकार) अच्छा नहीं लगता, जैसे दावाग्निसे जलने (झुलसने) पर हरिणीको करोड़ो-गुनी सघन छाया होते हुए भी श्याम-घनके बिना तपन (शरीरकी जलन) मिटती नहीं। विलाप करती हूँ, मन-ही-मन (इस प्रकार) अत्यन्त पछताती हूँ, जैसे चन्द्रमाको राहुने पकड़ लिया हो। हमारे स्वामी (तो) दूर चले गये; अब बताओ, यह दुःख किससे कहा जाय।

राग सारंग

(१८२)

मन की मन ही माँझ रही।
जब हरि रथ चढ़ि चले मधुपुरी, सब अग्यान भरी॥
मति-बुधि हरी, परी धरनी पै, अति बेहाल खरी।
अंकुस अलक कुटिल भइ आसा, तातैं अवधि बरी॥

ज्यौं बिनु मनि अहि मूक फिरत है, बिधि बिपरीत करी।
मन तौ रह्यौ पंखि सूरज-प्रभु, माटी रही धरी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मनकी बात मनमें ही रह गयी। श्यामसुन्दर जब रथपर बैठकर मथुरा जाने लगे (तब हम) सब मूढ़तासे भरी (देखती) ही रह गयी। (हमारी) सोचने-विचारनेकी शक्ति हरी जानेके कारण अत्यन्त व्याकुल होकर खड़ी-खड़ी (सीधे) पृथ्वीपर गिर पड़ी। किंतु (मोहनकी) घुँघराली अलकें (ही हमारी) आशाके लिये अंकुश (रोकथाम करनेवाली) हो गयीं, (अर्थात् हमें मार न सकी); इसीसे अवधिको मान लिया (श्याम इतने दिनोंमें आ जायँगे, यह उनका आश्वासन स्वीकार कर लिया)। जैसे मणिके बिना गूँगा (बोलनेकी शक्तिसे रहित) सर्प (व्याकुल) घूमता है, वैसी ही उल्टी दशा विधाताने हमारी कर दी। मन तो हमारा स्वामीके साथ पक्षी बनकर उड़ गया और यह (देहकी) मिट्टी (यहाँ) रखी रह गयी।

(१८३)

मेरौ मन वैसिऐ सुरति करै।
मृदु मुसकानि, बंक अवलोकनि, हिरदै तैं न टरै॥
जब गुपाल गोधन सँग आवत, मुरली अधर धरैं।
मुख की रेनु झारि अंचल सौं, जसुमति अंक भरै॥
संध्या समय घोष की डोलनि, वह सुधि क्यौं बिसरै।
सूरदास प्रभु-दरसन कारन, नैनन नीर ढरै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मेरा मन वैसी ही झाँकीका स्मरण करता है, (मोहनकी) मंद मुस्कान और तिरछी चितवन हृदयसे हटती नहीं। गायोंके साथ (शामको) गोपाल जब ओष्ठोंपर वंशी रखे (घर) आते थे, तब माता यशोदा

अपने अञ्चलसे उनके मुखपर पड़ी धूलि झाड़ (पोंछ) कर उन्हें गोदमे ले लेती थी। सध्याके समय व्रजमे उनका घूमना—उस शोभाकी स्मृति कैसे भूल सकती है। (अब तो) स्वामीके दर्शनोके लिये नेत्रोसे अश्रु ढुलकते रहते है।

राग नट नारायण

(१८४)

मन की मन ही में नहिं माति।
सहियत कठिन सूल निसि-वासर, कहें कही नहिं जाति॥
हरि के संग किए सुख जेते, ते अब रिपु भए गात।
स्वाति-बूँद इक सीप सु मोती, बिष भयौ कदली-पात॥
यहई व्रज, येई व्रजसुंदरि, औरै अब रस-रीति।
सूर कौन जानै यह बिपदा, जौ भरियत करि प्रीति॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) मनका दु:ख मनमे समाता नही। रात-दिन कठोर वेदना सह रही हूँ, जिसका वर्णन करनेकी चेष्टा करनेपर भी हो नही पाता। श्यामसुन्दरके साथ जितने सुख भोगे थे, वे सब अब इस शरीरके शत्रु हो गये हैं। स्वाती की बूँद तो एक है, परंतु सीपमे पड़कर उत्तम मोती और केलेके पत्तोमे पड़कर विष हो जाती है। (ऐसे ही) मोहनकी स्मृति उनके मिलनमे सुखद थी और वियोगमें घोर दु:खदायी हो गयी। वही व्रज है, वे ही व्रजसुन्दरियाँ है, किंतु आनन्दकी क्रीड़ा कुछ और ही (दु:खमयी) हो गयी है। प्रेम करके हम जो विपत्ति भोग रही है उसे दूसरा कौन समझ सकता है।

राग मारू

(१८५)

कमल-नैन अपनै गुन, मन हमार बाँध्यौ।
लागत तौ जान्यौ नहिं, विषम बान साध्यौ॥

कठिन पीर वेध्यौ सर, मारि गयौ माई।
लागत तौ जान्यौ नहिं, अब न सह्यौ जाई॥
मंत्र-तंत्र केतिक करौ, पीर नाहिं जाई।
है कोउ, उपचार करै, कठिन दरद माई॥
कैसैंहु नँदलाल पाउँ नैंक, मिलौं धाई।
सूरदास प्रेम-फंद तोर्‍यौ नहिं जाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) कमललोचन (श्यामसुन्दर) ने अपने गुणोंकी डोरीसे (हमारा) मन बाँध लिया है। उन्होंने (प्रेमका) जो कठोर बाण संधान किया, उसे लगते तो (हमने) जाना नहीं। किंतु सखी ! वे तो बाणसे बींधकर चले गये और अब हमें दारुण पीड़ा हो रही है। (उस बाणके) लगते समय तो हमने जाना नहीं, पर अब (पीड़ा) सही नही जाती। कितना ही मन्त्र-तन्त्र करो, यह पीड़ा दूर नहीं होती। सखी ! कोई ऐसा नहीं, जो इस कठिन दर्दकी दवा कर सके। (इसका उपचार तो यही है कि) किसी प्रकार भी नन्दलाल थोड़ी देरको भी मिल जायँ तो दौड़कर उनसे जा मिलूँ। यह प्रेमका पाश (फंदा) मुझसे तोड़ा नही जाता।

राग सोरठ

(१८६)

हरि जु हम सौं करी, माई ! मीन-जल की प्रीति।
कितिकि दूरि दयालु माधौ, गई अवधि बितीति॥
तरफि कै उन प्रान दीन्हौ, प्रेम की परतीति।
नीर निकट न पीर जानी, बृथा गए दिन बीति॥
चलत मोहन कह्यौ हम सौं, आइहैं रिपु जीति।
सूर श्री ब्रजनाथ कीन्ही सबै उलटी रीति॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! श्यामसुन्दरने हमसे मछली और जलके समान प्रेम किया। वे दयालु

माधव कितनी दूर हैं; परंतु (उन्होने लौटनेकी जो) अवधि (दी थी, वह) भी बीत गयी। उन (मछलियो) ने तो प्रेमपर विश्वास करके तड़फड़ाकर प्राण दे दिये; किंतु पास रहनेपर भी जलने उनकी पीड़ा नही समझी। (इसी प्रकार हमारे) दिन व्यर्थ बीत गये। चलते समय मोहनने हमसे कहा था कि शत्रुको जीतकर वे लौट आयेंगे, किंतु व्रजनाथने तो सब उलटी ही रीति की।

राग धनाश्री

(१८७)

मति कोउ प्रीति के फंद परै।
सादर स्वाति देखि मन मानै, पंखी-प्रान हरै॥
देखि पतंग कहा क्रम कीन्हौ, जीव कौ त्याग करै।
अपने मरिबे तैं न डरत है, पावक पैठि जरै॥
भौंर सनेही तोहि बताऊँ, केतकि प्रेम धरै।
सारँग सुनत नाद-रस मोह्यौ, मरिबे तैं न डरै॥
जैसै चकोर चंद कौं चाहत, जल बिनु मीन मरै।
सूरदास-प्रभु सौं ऐसैं करि, मिलै तौ काज सरै॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) कोई प्रेमके फदेमे न पड़े। (चातक) बड़े आदरसे स्वाती नक्षत्रको देखकर चित्तमें संतुष्ट होता है, पर वह (मेघ) उस पक्षीके प्राण (ओले गिराकर) ले लेता है। देखो तो, पतिंगेने क्या ढंग अपनाया है। वह अपने जीवनको ही छोड देता है। अपने मरनेसे भी डरता नहीं, (दीपककी) अग्निमें प्रवेश करके जल जाता है। तुम्हे बतलाती हूँ, प्रेमी भौंरा कितना प्रेम (मनमें) रखता है और (इसी प्रकार) मृग संगीतकी ध्वनि सुनकर उसके सुखमे मोहित हो जाता है तथा मरनेसे भी डरता नही। जैसे चकोर चन्द्रमाको चाहता है, जैसे जलके

बिना मछलियाँ मर जाती हैं, ऐसा ही प्रेम (हमने) स्वामीसे किया; अतः वे मिलें तो काम सफल हो।

राग सारंग

(१८८)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यौ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सौं, संपुट माँझ गह्यौ।
सारँग प्रीति करी जु नाद सौं, सनमुख बान सह्यौ॥
हम जो प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ।
सूरदास-प्रभु बिनु दुख पावत, नैनन नीर बह्यौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) प्रेम करके किसीने भी सुख नहीं पाया। पतिंगेने अग्निसे प्रेम किया और (उसमें गिरकर) अपने प्राणोंको जला डाला। (जन्मसे ही) भौरोंने (कमलसे प्रेम किया तो (उसने रात्रिमें अपने) सम्पुटमें (उसे) पकड़ लिया (बंद कर लिया)। इसी प्रकार मृगने संगीत-ध्वनिसे प्रेम किया तो उसे सम्मुख (छातीपर) बाण सहना पड़ा। इसी प्रकार हमने जो माधवसे प्रेम किया तो जाते समय भी उन्होंने हमसे कुछ कहा नहीं। प्रभुके बिना हम दुःख भोग रही हैं, जिससे हमारे नेत्रोंद्वारा आँसू बहते रहते हैं।

(१८९)

हेली, हिलग की पहिचानि।
जौ पै हिलग हिए मैं है री, कहा करै कुल-कानि॥
हिलग पतंग करी दीपक सौं, तन सौंप्यौ है आनि।
कसक्यौ नहीं जरत ज्वाला मैं, सही प्रान की हानि॥
हिलग चकोर करी है ससि सौं, पावक चुगत न मानि।
हिलगहिं नाद-स्वाद मृग मोह्यौ, बिंध्यौ पारधी तानि॥

हिलग आनि बाँध्यौ सव गुन बिच, मधुप कमल हित जानि।
सोई हिलग लाल गिरिधर सौं, सूरदास सुख-दानि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! (सच्ची) लगनकी यही पहिचान (स्वरूप) है, यदि हृदयमें लगन (प्रेम) है तो कुलका संकोच क्या करेगा। पतिंगेने दीपकसे प्रेम किया तो आकर उसे अपना शरीर सौंप दिया तथा उसकी ज्वालामें जलते समय भी हिचका नहीं, प्राणोंकी हानि सहन कर ली। चकोरने चन्द्रमासे प्रीति की तो उसने अंगारे चुगनेमें भी कुछ (पीड़ा) नहीं मानी। (अरे) प्रेमके कारण ही मृग संगीत-ध्वनिके रसमें मोहित होकर व्याधके बाणसे विद्ध हो जाता है। (जिस प्रेमने) भौंरेको कमलके प्रति प्रेम जानकर (उसे) सब गुणोंके बीच आकर बाँधा, वही सुख देनेवाला प्रेम (हमारा) श्रीगिरधरलालसे है।

राग मलार

(१९०)

प्रीति तौ मरिबौई न विचारै।
निरखि पतंग ज्योति पावक ज्यौं, जरत न आपु सँभारै॥
प्रीति कुरंग नाद मन मोहत, बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तैं, गिरत न आपु सँभारै॥
सावन-मास पपीहा बोलत, पिय-पिय करि जु पुकारै।
सूरदास प्रभु-दरसन कारन, ऐसी भाँति बिचारै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) प्रेम तो मरनेका भी विचार नहीं करता। जैसे पतिंगा अग्निकी लौ देखकर उसमें जलते हुए भी अपनेको सम्हालता (बचाता) नहीं है। संगीत-प्रेमके कारण मृगका मन मोहित हो जानेके कारण (ही) व्याध पास जाकर उसे बाणसे मार देता है और प्रेमके कारण (ही) आकाशमें

उड़ता हुआ कबूतर (नीचे कबूतरीको देखकर) गिरते हुए भी अपनेको सम्हालता नहीं । श्रावणके महीनेमें पपीहा बोलता है और 'पी कहाँ, पी कहाँ' करता पुकारता ही रहता है । स्वामीके दर्शनके लिये इसी प्रकारकी दशा (हमारी) है, यह समझ लो ।

(१९१)

प्रीति बटाऊ सौं कित करिऐ ।
हिलि-मिलि चले कान्ह परदेसी, फिरि पछिताऐं मरिऐ ॥
सुनियत कथा स्रवन सीता की, का बिचारि अनुसरिऐ ।
बिन अपराध तजै सेवक कौं, ता ठाकुर सौं डरिऐ ॥
एक बार बसुधौ कौ ढोटा बातन गोकुल छरिऐ ।
बाल-बिनोद जसोदा आगैं सबहिन कौ मन हरिऐ ॥
जाति-पाँति बलि सरवस दीन्हौ, तिन कि पीठि पग धरिऐ ।
सूरदास ऐसे लोगनि तैं, पार न क्यौंहूँ परिऐ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) पथिकसे क्यों प्रेम करना चाहिये । परदेशी कन्हैया हमसे हेल-मेल (प्रेम-परिचय बढ़ा) कर चले गये और (हम) पश्चात्ताप करके मरी जा रही है । कानोंसे श्रीसीताजीकी कथा सुनती हैं (कि उन्हें बिना अपराधके ही रामने त्याग दिया । वे ही तो ये है, अतः) क्या सोचकर इनका अनुगमन किया जाय (इनसे स्नेह किया जाय) । जो बिना अपराधके ही अपने सेवकको छोड़ दे, ऐसे स्वामीसे डरना चाहिये । एक बार (उन) वसुदेवजीके कुमारने (अपनी) बातोंसे गोकुलको ठग लिया और यशोदाजीके सम्मुख बाल-क्रीड़ाके द्वारा सभीके चित्तको चुरा लिया । (अब) जिन्होंने अपनी जाति-पाँति और सर्वस्व दे दिया; उन्ही बलि राजाकी पीठपर इन्होने (वामनरूपसे) पैर रखा । अतः ऐसे लोगोंसे किसी प्रकार पार नहीं पाया जा सकता ।

(१९२)

बिछुरन जनि काहू सौं होइ।
बिछुरन भयौ राम-सीता कौ, क्रम छत देखे धोइ ॥
बिछुरन भयौ मीन अरु जल कौ, तलफि-तलफि तन खोइ।
बिछुरन भयौ चकवा अरु चकई, रैन गँवाई रोइ ॥
रुदन करत बैठी बन महियाँ, बात न बूझत कोइ।
सूरदास-स्वामी कौ बिछुरन, बनत उपाइ न कोइ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) किसीका किसी (प्रिय) से वियोग न हो। श्रीराम और सीताका वियोग हुआ था, उस (वियोग) का घाव धीरे-धीरे धोने (दूर करने) पर भी क्या हुआ यह सबने देखा ? (श्रीजानकीका मिलन नही हुआ, वे भूमिमें प्रविष्ट हो गयीं।) मछली और पानीका वियोग हुआ, जिससे तड़प-तड़पकर (मछलीने) शरीर खो दिया (वह मर गयी)। चकोर और चकोरीका वियोग हुआ तो उन्होंने पूरी रात रोते हुए व्यतीत कर दी। (हम भी उनके वियोगमें) रोती हुई वन (व्रज) में बैठी हैं, कोई हमारी बाततक नही पूछता। स्वामीका वियोग हो जानेसे कोई उपाय (मिलनका) करते नही बनता।

(१९३)

तब काहे कौं भए उपकारी, लिखि-लिखि पठवत चीठी।
आपुन जाइ मधुपुरी छाए, हम कौं जोग-बसीठी ॥
ढाढ़े ऊपर लोन लगावत, हम जु भई मति हीठी।
सूरदास-प्रभु बिकल बिरहिनी, जरि-बरि भई अँगीठी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) तब (पहिले मोहन हमारे लिये) किसलिये उपकार करनेवाले हो गये (कि अब आते नहीं,) पत्र लिख-लिखकर भेज रहे हैं। स्वयं तो जाकर

मथुरामे वस गये और हमें योगका संदेश भेजते है और इस प्रकार जलेपर नमक लगाते है। हम उनकी समझसे ऐसी तुच्छ हो गयी हैं। स्वामीके वियोगमे व्याकुल (हम) वियोगिनियाँ जलती-जलती प्रज्वलित हो अँगीठी (की राख) जैसी हो गयी हैं।

राग रामकली

(१९४)

भरियत देखिवे की हौंसनि।
तब सत कलप पलक-सम जाते, अब सो रहीं दुख मैं सनि॥
पलक भरे की ओट न सहतीं, अब लागे दिन जान।
इतनेहू पै बिन सासन घर, घट निकसत नहिं प्रान॥
जदपि मोहि बहुतै समुझावत, सकुचनि लीजत मानि।
अंतहकरन जरत बिन देखें, कौन बुझावै आनि॥
कुबिजा पै आवन क्यौं पावत, अब तौ परिहै जानि।
लीन बड़ी यहऊँ की बातैं, पाछिलि वह सब गानि॥
आए सूर दिना द्वै तौ कहा, तौ मानिबौ समौसौ।
कोटि बेर जल औंटि सिरावै, तऊ कहा पहिलौ सौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) हम (मोहनको) देखनेकी उमंगमे ही मरी जाती हैं। पहिले जिन्हे देखते हुए सौ कल्प एक पलके समान बीत जाते थे, अब वे ही (हम) दुःखसे पूर्ण हो रही है। (जो हम पहिले) एक पलके लिये भी (श्यामसुन्दरका) ओटमे होना नही सह पाती थी, अब (उन्हे देखे बिना) दिन-पर-दिन बीतते जा रहे है। घरमे भी हम बिना सम्मानकी (अपमानित) हैं; किन्तु इतनेपर भी शरीरसे (पापी) प्राण निकलते नही हैं। यद्यपि (लोग [illegible]) ब[illegible] [illegible]ते हैं और उनके संकोचके [illegible]

[illegible]; किन्तु (मोहनको) देखे

जलता रहता है, कौन आकर उसे बुझाये। (श्यामसुन्दर भला) कुब्जा-के पाससे कैसे आने पायेंगे, उन्हे अब (हमारे प्रेमका महत्त्व) जान पड़ेगा; क्योकि (उसने) यहाँकी भी वे पिछली (प्रेमकी) गायी हुई बडी (लम्बी-चौड़ी) बातें जान ली होंगी। (जैसे यहाँ प्रेमकी बड़ी बातें बनाते थे, वैसी ही वहाँ भी बनाते हैं।) यदि दो दिनके लिये (वे) आ भी गये तो क्या (पहिले) समयके समान हम (उन्हें) मानेंगी ? (कभी नही। अरे,) जलको कोई करोडों बार खौलाकर ठंढा करे, किन्तु वह पहिलेके समान (स्वादिष्ट) नही बन पाता।

राग मलार

(१९५)

जनि कोउ काहू क वस होहि।
ज्यौं चकई दिनकर वस डोलत, मोहि फिरावत मोहि॥
हम तौ रीझि लटू भईं लालन, महा प्रेम तिय जानि।
बंधन अवधि भ्रमति निसि-बासर, को सुरझावत आनि॥
उरझे संग अंग-अंगन प्रति विरह, वेलि की नाईं।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि, रूप-सुधा सियराईं॥
अति आधीन हीन-मति व्याकुल, कहँ लौं कहौं बनाई
ऐसी प्रीति-रीति-रचना पै, सूरदास बलि जाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) कोई (भूलकर भी) किसीके भी वशमे न हो; क्योंकि जैसे चक्रवाकी सूर्यके वश हुई घूमती है, उसी प्रकार वह (श्यामसुन्दरका प्रेम भी) मुझे मोहितकर घुमा रहा है। हम स्त्रियाँ तो उनका महान् प्रेम समझकर (गिरधारी) लालपर रीझकर लट्टू (मोहित) हो गयी, अत. उस अवधिकी आशारूप बन्धनमें रात-दिन घूमती रहती है, कौन आकर (इस बन्धनको) सुलझाये। (उनके)

साथ हमारे अङ्ग-अङ्ग विरहके कारण (उनके) अङ्ग-अङ्ग के प्रति (तरुमें) वेलकी भाँति उलझ गये हैं। अतः हमारे नेत्र निद्रा छोड़कर अधखिले पुष्पके समान सदा खुले रहते हैं, जो उनकी सौन्दर्यसुधासे ही शीतल हो सकते हैं। कहाँतक बनाकर वर्णन करूँ, हम उनके अत्यन्त अधीन हैं, इससे बुद्धिहीन होकर व्याकुल हो रही है। सूरदासजी कहते हैं—'ऐसी प्रीतिकी रीति एवं प्रेम करनेकी पद्धतिपर मैं बलिहारी जाता हूँ।'

राग नट

(१९६)

दिन-ही-दिन को सहै बियोग।
यह सरीर नाहिन मेरौ, सखि! इते बिरह-जुर-जोग॥
रचि स्रक कुसुम, सुगंध सेज सजि, बसन कुंकुमा बोरि।
नलिनी-दलनि दूरि करि उर तैं, कंचुकि के बँद छोरि॥
बन-बन जाइ, मोर, चातक, पिक, मधुपनि टेरि सुनाइ।
उदित चंद, चंदन चढ़ाइ उर, त्रिविध समीर बहाइ॥
रटि मुख नाम स्यामसुंदर कौ, तोहि सुनाइ-सुनाइ।
तो देखत तन होमि मदन-मख, मिलौं माधवहिं जाइ॥
सूरदास स्वामी कृपालु भए, जानि जुवति-रस-रीति।
तिहि छिन प्रगट भए मनमोहन, सुमरि पुरातन प्रीति॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखी!) दिन-प्रतिदिन (यह) वियोगका (दुःख) कौन सहन करे। सखी! मेरा यह शरीर वियोगका इतना ज्वर सहन करने योग्य नहीं है। पुष्पोंकी माला बना, सुगन्धित शय्या सजा और वस्त्रोंको कुङ्कुम (केसर) में [illegible]। दुःख मत दे। अरी! [illegible] [न]लदलोंको दूर कर दे और (चोली) के [illegible] प्रत्येक वनमें जाकर [illegible] कोयलो और [illegible]। [illegible] दे (कि अब वे शोर

चन्द्रमाके उदय होनेपर मेरे हृदयपर चन्दन लगा शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु बहा दे। (अब तो मैं) तुझे सुना-सुनाकर अपने मुखसे बार-बार श्यामसुन्दरका नाम रटती हुई तेरे देखते-देखते कामरूपी यज्ञमें शरीरका हवन करके माधवसे जा मिलूँगी। इस प्रकार युवतीके प्रेमकी रीति (उत्कट प्रेम) को जानकर सूरदासके स्वामी कृपालु हो गये (उन्होंने कृपा की) और वे मनमोहन पुराने प्रेमका स्मरण करके उसी क्षण (वहाँ) प्रकट हो गये।

(१९७)

बिथा, माई! कौन सौं कहिऐ।
हम तौ भई जग्य के पसु ज्यौं, केतेक दुख सहिऐ॥
कामिनि भामिनि निसि अरु बासर कहूँ न सुख लहिऐ।
मन में बिथा, मथति लागै यौं, उर-अंतर दहिऐ॥
कबहुँक जिय ऐसी उपजति है, जाइ जमुन बहिऐ।
सूरदास-प्रभु हरि नागर बिनु, काकी ह्वै रहिऐ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी! यह पीड़ा किससे कही जाय। हम तो यज्ञके (बलि) पशुके समान हो गयी हैं, कहाँतक (कितना) दुःख सहा जाय। हम कामिनियाँ (श्यामसुन्दरकी) प्रियतमा होनेपर भी दिन-रात कहीं सुख नहीं पातीं। हाय! मनमें रहनेवाली पीड़ा इस प्रकार मनको मथने लगती है कि हृदयके भीतर (ही) हम जलती रहती हैं। कभी मनमें ऐसी बात आती है कि जाकर यमुनामें बह जाना चाहिये। अपने स्वामी परम चतुर श्यामसुन्दरके बिना हम किसकी होकर रहें।

राग मलार

(१९८)

बोलि, सखी! चातक, पिक, मधुकर अरु मोर।
दिन-ही-दिन कौन सहै बिरह-बिथा घोर॥

सजि सुगंध सुमन सेज, ससि सौं कहि जाइ।
जैसै यह बीर कर्म, देखैं सब आइ॥
लाउ मलय-मारुत अरु रितु बसंत संग।
पूजौं सखि! कमल-नैन सनमुख रति-रंग॥
नलिनी-दल दूरि करै, मृग-मद कौ पंक।
अब जनि तन राखि लेउँ, मनसिज-सर-संक॥
सूरदास-प्रभु कृपालु, कोमल चित-गात।
ताही छिन प्रगट भए, सुनत प्रिया बात॥

(श्रीराधा कह रही हैं—) 'सखी! (अब) चातक, कोकिल, भौंरों और मयूरोंको बुला ले; दिन-पर-दिन यह वियोगकी दारुण पीड़ा कौन सहन करे। सुगन्धित पुष्पोसे शय्या सजा और जाकर चन्द्रमासे कह दे, जिससे सब आकर यह (मेरे शरीर-त्यागका) वीर कर्म देखें। मलयाचलके सुगन्धित पवन (के साथ) बसन्त ऋतुको (भी) साथ ले आ। सखी! आज प्रेमक्रीड़ामें कमललोचन श्यामसुन्दरकी सम्मुख होकर (देह त्यागकर) पूजा करूँगी। (हृदयपरसे) कमलदल और कस्तूरीका लेप दूर कर दे; क्योंकि अब मदनके बाणोंकी चितापर स्थिर बैठकर इस शरीरको नहीं रखूँगी।' सूरदासके स्वामी कृपामय हैं, शरीर एवं चित्तसे भी अत्यन्त कोमल हैं, अपनी प्रियतमाकी यह बात सुनते ही (वे) उसी क्षण वहाँ प्रकट हो गये।

राग धनाश्री

(१९९)

बहुरि न कबहूँ, सखी! मिले हरि।
कमल-नैन के दरसन कारन अपनौ सो जतन रही बहुतै करि॥
जेइ-जेइ पथिक जात मधुबन तन, तिन सौं बिथा कहत पाइनि परि।
काहुँ न प्रगट करि जदुपति सौं, दुसह दुरासा गई अवधि टरि॥

धीर न धरत प्रेम-व्याकुल चित, लेत उसास नीर लोचन भरि।
सूरदास तन थकित भई अब, इहि वियोग-सागर न सकत तरि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी! क्या श्यामसुन्दर फिर कभी नहीं मिलेंगे? उन कमललोचनके दर्शनके लिये अपनी शक्तिभर मैंने बहुत अधिक प्रयत्न कर लिया। जो-जो यात्री मथुराकी ओर जाते हैं, उनके पैरों पड़कर (उनसे) अपनी वेदना कहती हूँ; किंतु किसीने यदुनाथसे (मेरी पीड़ा) प्रकट नहीं की और असह्य दुराशा (भरी) जो लौटनेकी अवधि की थी, वह भी बीत गयी। प्रेमसे व्याकुल चित्त धैर्य नहीं रख पाता और बार-बार नेत्रोंमें अश्रु भरके लंबी साँसें लेती हूँ। अब तो शरीर थकित हो गया, इस वियोगरूपी समुद्रको हम पार नहीं कर सकेंगी।

राग सारंग

(२००)

ब्रज में दोउ बिधि हानि भई।
इक हरि गए कलपतरु, दूजें उपजी बिरह-जई॥
जैसैं हाटक लै रसाइनी पारहि आगि दई।
जब मन लाग्यौ दृष्टि तब बोल्यौ, साँसी फूटि गई॥
जैसैं बिन मल्लाह सुन्दरी एक नाउ चढ़ई।
बूड़त देह थाह नहिं चितवत, मिलनहुँ पति न दई॥
लरि-मरि झगरि भूमि कछु पाई, जस-अपजस बितई।
अब लै सूर कहति है उपजी, सब ककरी करुई॥

* (सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) मेरी ब्रजमें दोनों प्रकारसे हानि हुई—प्रथम तो कल्पवृक्ष-रूप श्यामसुन्दर

---

* इस पदका पाठ चार हस्त-लिखित प्रतियोंमें नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

(यहाँसे) चले गये और दूसरे वियोग (रूपी वेला) का अंकुर उत्पन्न हो गया। जैसे रसायन बनानेवाला स्वर्णके लिये पारेको अग्नि लगा देता है। जब (सोना बनवानेवाला) मन लगाकर (उत्साहसे उसे) देखने लगता है, तब (झट) कह देता है—(हाय !) शीशी फूट गयी। (अथवा) जैसे मल्लाहके बिना कोई सुन्दरी (पति-गृह जाते समय) किसी एक नौकामें बैठ जाय और डूबने लगे, उस समय उसका शरीर थाह न देख सके और इस प्रकार पतिसे भी दैव उसे मिलने न दे। इसी प्रकार लड़-मरकर (बड़े कष्टसे) झगड़ा करके (लोगोंकी बातें अनसुनी करके) कुछ भूमि (श्यामसुन्दररूपी आधार) पायी और यश तथा अपयश (लोगोंकी निन्दा-प्रशंसा) में समय बिताया; पर अब फल (परिणाम) पाकर कहती है—सब ककड़ियाँ कड़वी ही उत्पन्न हुई हैं (अन्ततः दुःख ही मिला है)।

पावस-प्रसंग

राग मलार

(२०१)

ब्रज तैं पावस पै न टरी।
सिसिर, बसंत, सरद गत सजनी, बीती औधि करी ॥

'ब्रज बसि द्वै बिधि हानि भई।
इक हरि गए कलपतरु, दूजें उपजी बिरह जई ॥
जैसे हाटक हित रसायनी पारे आगि दई।
जब मन लग्यौ, दुष्ट तब बोल्यौ, सीसी फूटि गई ॥
ज्यौं मलाह-बिन नाव पाइ कैं, सुंदरि लै चढ़ई।
बूड़न लागी माझ-धार जब, पतवारी न दई ॥
लरि, मरि, झगरि भूमि कछु पाई, जस-अपजस जुतई ॥
अब लैं 'सूर' खेत में उपजी, सब ककरी करई ॥'

हमारी अल्पमतिसे यह पाठ और विशेषकर तृतीय पंक्तिका पाठ सुन्दर है और वही अर्थ-संगतिके साथ उचित है।

उनै-उनै घन बरसत चख, उर सरिता सलिल-भरी।
कुमकुम-कज्जल-कीच बहै जनु, कुच-जुग पारि परी॥
तामें प्रगट विषम ग्रीषम रितु, तिहि अति ताप धरी।
सूरदास-प्रभु कुमुद-बंधु बिनु बिरहा-तरनि जरी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! शिशिर, वसन्त और शरद्‌ऋतु (तो) अपनी अवधिको पूर्ण करके चली गयीं; किंतु व्रजसे वर्षा नहीं हटी। नेत्ररूपी बादल उमड़-उमड़कर वर्षा करते रहते हैं, (जिससे) हृदयपर (से बहनेवाली) नदी पानीसे भरी ही रहती है। उसमें कुंकुम और काजल कीचड-समान बहते हैं, दोनों स्तन उसके कगारे खड़े हैं। उनमें ग्रीष्मऋतु प्रत्यक्ष है, जिसने अत्यन्त उष्णता धारण कर रखी है। स्वामीरूपी चन्द्रमाके बिना हम वियोगरूपी सूर्यसे जली जा रही हैं।

(२०२)

ये दिन रूसिबे के नाहीं।
कारी घटा, पौन झकझोरै, लता तरुन लपटाहीं॥
दादुर, मोर, चकोर, मधुप, पिक बोलत अमृत-बानी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु बैरिन रितु नियरानी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—मोहन !) ये दिन रूठनेके नहीं हैं। (देखो) काली घटा उठ रही है, वायुके (शीतल) झकोरे चल रहे हैं (और इसके कारण) लताएँ वृक्षोंसे लिपटी जा रही हैं। मेढक, मयूर, पपीहे, भौंरे और कोकिल अमृतभरी वाणी बोल रहे हैं। स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके बिना यह हमारी शत्रु (वर्षा) ऋतु पास आ गयी है।

(२०३)

अब बरषा कौ आगम आयौ।
ऐसे निठुर भए नँदनंदन, संदेसौ न पठायौ।

बादर घोर उठे चहुँ दिसि तैं, जलधर गरजि सुनायौ।
एकै सूल रही मेरें जिय, बहुरि नहीं ब्रज छायौ॥
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, कोकिल सबद सुनायौ।
सूरदास के प्रभु सौं कहियौ, नैनन है झर लायौ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) अब वर्षाऋतुके लक्षण प्रकट हो गये है; किंतु नन्दनन्दन ऐसे निष्ठुर हो गये हैं कि उन्होने संदेश भी नही भेजा। चारों ओरसे घनघोर घटाएँ उठ रही है, मेघोंकी गर्जना सुनायी पड़ती है; (किंतु) मेरे मनमे एक ही वेदना रह गयी है कि (मोहन) फिर व्रजमे नही पधारे। मेढक, मयूर और पपीहा बोल रहे है और कोकिल भी (अपना—पी कहाँ, पी कहाँ) बोल सुनाती है। अतएव स्वामीसे (कोई) कहना कि नेत्रोंने यहाँ झड़ी लगा दी है।

(२०४)

सँदेसनि मधुबन-कूप भरे।
अपने तौ पठवत नहिं मोहन, हमरे फिरि न फिरे॥
जिते पथिक पठए मधुबन कौ, बहुरि न सोध करे।
कै वे स्याम सिखाइ प्रबोधे, कै कहुँ बीच मरे॥
कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दौ लागि जरे।
सेवक सूर लिखन कौं आँधौ, पलक कपाट अरे॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी ! हमारे) संदेशोंसे मथुराके कुएँ भर गये। मोहन स्वयं तो संदेश भेजते नही और हमने जो भेजे, वे फिर लौटे नही। जितने यात्री हमने मथुरा भेजे, उन्होंने फिर हमारी खोज नही ली। या तो उन्हे श्यामसुन्दरने सिखा-पढाकर समझा दिया या (वे) बीच ([illegible] ही मर गये। अथवा (मथुरामें

से गल गये, स्याही समाप्त हो गयी और दावाग्नि लगनेसे सरकंडे (कलम बनानेके साधन) भस्म हो गये तथा संदेश लिखनेवाला सेवक, सूरदास आँखोंका अंधा है, उसके नेत्रोंके पलकरूपी किवाड़ अड़ गये (वह नेत्र नहीं खोल पाता है) (अर्थात् वहाँ संदेश लिखनेके सब साधन समाप्त हो गये हैं !) *

(२०५)

माई री, ये मेघ गाजैं ।
मनहुँ काम कोपि चढ़्यौ, कोलाहल कटक बढ़्यौ, बरहा-पिक-
चातक जै-जै-निसान बाजैं ॥
दामिनि करवारकरन, कंपत सब गात डरन, जलधर समेत
सेन इंद्र-धनुप साजैं ।
अबलन अकेली करि, अपनी कुल-नीति बिसरि, अवधि संग
सकल सूर भैराइ भाजैं ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) अरी सखी ! ये मेघ (इस भाँति) गर्जना कर रहे हैं मानो क्रोध करके कामदेव चढ़ आया हो और उसीकी सेनाका यह (गर्जनरूप) कोलाहल बढ़ा हो तथा मयूर, कोकिल और पपीहेके शब्दरूपमें उसकी विजय-दुन्दुभि बज रही हो । बिजलीरूपी तलवार उसके हाथमें है, जिसके भयसे हमारा सब शरीर काँप रहा है तथा मेघोंकी सेनाके साथ उसका इन्द्रधनुप सजा हुआ है । (साथ ही वह काम) हम नारियोंको अकेली (श्याम-हीन) करके

---

* इस पदकी पाँचवीं पंक्तिका पाठ, जिसे आदिसे अन्ततक सभी सूरसागरकी हस्तलिखित प्रतियोंमें अपनाया गया है और जो इससे कहीं अधिक सुन्दर भी है, इस प्रकार है—

मसि खूटी, कागर हू भीग्यौ, सर दौ लागि जरे ।

और अपने कुलकी नीति विस्मृतकर (यह चढ आया है; अतः मोहन तुम आओ !) अरे, तुम्हारे आनेकी अवधिके साथ ही ये सब शूरवीर (भी) हड़बड़ाकर (यहाँसे) भाग जायँगे ।

(२०६)

ब्रज पै बदरा आए गाजन ।
मधुवन कोप ठए सुनि, सजनी, फौज मदन लग्यौ साजन ॥
ग्रीवा रंध्र नैन चातक जल, पिक-मुख बाजे बाजन ।
चहुँदिसि तैं तन बिरहा घेर्‌यौ, कैसैं पावत भाजन ॥
कहियत हुते स्याम पर-पीरक, आए संकट काजन ।
सूरदास श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! अब तो) व्रजपर बादल आकर गर्जने लगे हैं । सखी ! श्यामसुन्दरके क्रोधवश मथुरामें बस जानेकी बात सुनकर कामदेव सेना सजाने लगा है । कण्ठ और नेत्रके छिद्रोंसे जल (अश्रु)-वर्षा हो रही है (जिससे प्राण निकलनेके ये मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं तथा) पपीहे और कोकिलके मुखसे उसके विजय-वाद्य बज रहे हैं, चारों ओरसे शरीरको वियोगने घेर लिया है, अतः हम कैसे भाग सकती हैं । श्यामसुन्दर दूसरोंकी पीड़ा समझनेवाले कहे जाते हैं और विपत्तिमें हमारे काम भी आये हैं; किंतु अब उन श्रीपतिकी यह महिमा हो गयी कि (हमें छोड़कर) मथुरामें सुशोभित होने लगे हैं ।

(२०७)

देखियत चहुँ दिसि तैं घन घोरे ।
मानौ मत्त मदन [illegible] थियनि बल करि बंधन तोरे ॥
स्याम सुभग [illegible] गंड मद; बरखत [illegible]
रुकत न [illegible] पै, मुरत न अं[illegible]

मनौ निकसि बग-पंक्ति-दंत उर-अवधि सरोवर फोरे।
बिन बेला बल निकसि नैन-जल, कुच-कंचुकि-बँद बोरे॥
तब तिहिं समय आनि ऐरावति, ब्रजपति सौं कर जोरे।
अब सुनि सूर कान्ह-केहरि बिन, गरत गात ज्यौं ओरे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) चारों ओरसे घनघोर बादल (उमड़ते) इस भाँति दिखायी पड़ रहे हैं, मानो कामदेवके मतवाले हाथियोंने बलपूर्वक अपने बन्धन तोड़ डाले हैं। उनका सुन्दर काला शरीर है, वे थोड़ी-थोड़ी (इस भाँति) वर्षा करते हैं (जैसे) उनके गण्डस्थलसे मद टपक रहा हो। वे पवनरूपी महावतके अंकुश मारकर मोड़ने (लौटाने) पर भी न तो मुड़ते हैं और न रुकते हैं। बगुलोंकी पंक्ति ही मानो उनके दाँत हैं, जो सरोवररूपी उनके वक्षःस्थलकी सीमा फोड़कर बाहर निकल आये हैं। अस्तु, बिना समयके ही बलपूर्वक नेत्रोंका जल निकलकर वक्षःस्थलपर बँधी कंचुकीके बन्धनोंको डुबा रहा है। (जब इन्द्रने वर्षा की थी) तब तो ऐरावतके स्वामी इन्द्रने आकर ब्रजराज (श्यामसुन्दर) के हाथ जोड़े थे; किंतु अब सुनो, कन्हैयारूपी सिंहके बिना (भयसे) हमारे शरीर ऐसे गले (क्षीण होते) जाते हैं, जैसे ओले गलते हों।

(२०८)

ब्रज पै सजि पावस दल आयौ।
धुरवा-धुंध उठी दसहूँ दिसि, गरज-निसान बजायौ॥
चातक, मोर, इतर पैदर गन, करत अवाजैं कोइल।
स्याम-घटा-गज, असनि बाजि-रथ, बिच बगपाँति सँजोइल॥
दामिनि-कर-करवाल, बूँद-सर, इहिं बिधि साजें सैन।
निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत, अग्र फौजपति मैन॥
हम अबला जानिऐ तुमहि बल, कहौ, कौन बिधि कीजै।
सूर स्याम अब कैं या औसर आनि राखि ब्रज लीजै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) वर्षाऋतु दल साजकर व्रजपर चढ़ आयी है और (उसने) दसों दिशाओंमें बादलोंके रूपमें धूलि उड़ाकर गर्जनारूपी नगारा बजा दिया है। पपीहा, मयूर तथा दूसरे पशु-पक्षी उसकी पैदल सेना है (जिसमें) कोयल (उसका) जयघोष कर रही है। ये काली घटाएँ (नहीं) उस सेनाके हाथी हैं, वज्रपात ही रथके घोड़े हैं, बीचमें बगुलोंकी पंक्ति ही घोड़ोंकी रासके रूपमें सँजोयी है। बिजली ही सैनिकोंके हाथकी तलवारें हैं और बूँदें ही बाण हैं। इस प्रकार सेना सजाकर उसके आगे चलनेवाला सेनापति कामदेव बिना हिचकके व्रजपर चढ़ा चला आ रहा है। श्यामसुन्दर ! हम तो अबलाएँ हैं, तुम्हे ही अपना बल समझती हैं; बताओ, अब क्या उपाय करें ? अबकी बार इस अवसरपर आकर व्रजको उबार लो।

(२०९)

सखी री, पावस-सैन पलान्यौ।
पायौ बीच इंद्र अभिमानी, सूनौ गोकुल जान्यौ॥
दसहूँ दिसा सधूम देखियत, कंपति है अति देह।
मनौ चलत चतुरंग चमू नभ बाढ़ी है खुर-खेह॥
बोलत मोर सैल-द्रुम चढ़ि-चढ़ि, बग जु उड़त तरु डारैं।
मनु सहिया फरहरा फिरावत, भाजन कहत पुकारैं॥
गरजत गगन गयंद गुंजरत, दल दादुर दलकार।
सूर स्याम अपने या ब्रज की, लागत क्यौं न गुहार॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—)सखी ! व्रजपर पावस (वर्षा ऋतु) की सेना दौड़ती हुई चढ़ी आ रही है; क्योंकि अभिमानी इन्द्र गोकुलको (श्यामसुन्दरसे) सूना समझकर उसे (जीतनेका सुन्दर) अवसर पा गया है। दसों दिशाएँ धुएँसे भरी (इस प्रकार) दीखती हैं

मानो (इन्द्रकी) चतुरङ्गिणी सेना चल रही हो और उसके घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी धूलि आकाशमें छा गयी हो। (उसके भयसे हमारा) शरीर काँप रहा है। पर्वतों और वृक्षोंपर चढ़-चढ़कर मयूर बोलते हैं और वृक्षोंकी डालोंपर बगुले (इस भाँति) उड़ते हैं, मानो झंडा ले चलनेवाले झंडा उड़ा पुकारकर सबको भाग जानेको कहते हों। आकाशमें (मेघरूपी) हाथियोंके समूह गर्जना कर रहे हैं और मेढकोंके समूहका कोलाहल ही सेनाकी दलकार—पुकारना है। (ऐसी दशामें अहो) श्यामसुन्दर ! अपने इस व्रजकी पुकार सुनकर तुम रक्षा करने क्यों नहीं आते ?

(२१०)

बदरिया बधन बिरहिनी आई।
मारू मोर ररत चातक-पिक, चढ़ि नग टेर सुनाई॥
दामिनि कर करवाल गहैं, अरु सायक बूँद बनाई।
मनमथ-फौजि जोरि चहुँ दिसि तैं, ब्रज सनमुख ह्वै धाई॥
नदी सुभर, सँदेस क्यौं पठऊँ, बाट त्रिननहूँ छाई।
इक हम दीन हुतीं कान्हर बिन, औ इन्द्र गरज सुनाई॥
सूनौ घोष, बैर तकि हम सौं, इन्द्र निसान बजाई।
सूरदास-प्रभु मिलहु कृपा करि, होति हमारी घाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) यह बदली हम वियोगिनियोंकी हत्या करने आयी है। मयूर पर्वतोपर चढ़कर मारू (युद्धका) राग गा रहे हैं, पपीहे और कोकिल (भी) पुकार कर रहे हैं। हाथमें बिजलीरूपी तलवार पकड़कर, बूँदोंको बाण बनाकर तथा चारों ओरसे सेना एकत्र करके कामदेवने व्रजके सामने (ऊपर) धावा कर

दिया है। नदियाँ अत्यन्त भरी हैं और मार्ग भी घासोंसे ढक गया है (अतः मथुरा) संदेश कैसे भेजूँ ? एक तो हम वैसे ही कन्हैयाके बिना दीन (असहाय) थीं और ऊपरसे इन (मेघों) ने गर्जना प्रारम्भ कर दी है। (इससे ऐसा लगता है कि) व्रजको (श्यामसुन्दरसे) सूना जानकर और हमसे पुरानी शत्रुताका बदला लेनेका अवसर (आया) देखकर इन्द्रने नगारे बजा दिये हैं। स्वामी ! कृपा करके (शीघ्र) मिलो, नहीं तो हमारी हत्या हुई जाती है।

राग बिहागरौ

(२११)

स्याम बिना उनए ये बदरा।
आज स्याम सपने में देखे, भरि आए नैन, ढरकि गयौ कजरा ॥
चंचल, चपल अतिहिं चित चोरै, निसि जागत मोकौं भयौ पगरा।
सूरदास-प्रभु कबहिं मिलौगे, तजि गए गोकुल मिटि गयौ झगरा ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दरके न रहनेसे ये बादल उमड़ आये हैं। आज मैंने स्वप्नमें श्यामको देखा (जिससे मेरे) नेत्र (आँसुओंसे) भर आये और उनका काजल बह गया। वे चञ्चल चपलतापूर्वक चित्तको सर्वथा चुरा लेते हैं। (इसलिये उनके स्मरणमें ही) रातमे जागते हुए मुझे सवेरा हो गया। स्वामी ! आप (अब) कब मिलेंगे ? आप तो व्रजको छोडकर चले गये, अतः सब झंझट ही मिट गया (सर्वथा निश्चिन्त हो गये)।

राग मलार

(२१२)

बरु ए बदरा बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नँदनंदन, गरजि गगन घन छाए ॥
कहियत हैं सुर-लोक बसत सखि ! सेवक सदा
[illegible] ैर जानि कैं, तेहु तहाँ तैं

द्रुम किए हरित, हरखि बेली मिलीं, दादुर मृतक जिवाए।
साजे निबिड़ नीड़ तृन सँचि-सँचि, पंछिनहूँ मन भाए॥
समझति नहीं चूक सखि! अपनी, बहुतै दिन हरि लाए।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, मधुबन बसि बिसराए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) देखो, ये बादल तो वर्षा करने आ गये, पर हे नन्दनन्दन ! (बादल तो) अपने लौटनेकी अवधि समझकर गर्जना करते हुए आकाशमें छा गये हैं (पर तुम नहीं आये)। सखी ! कहा जाता है कि ये (मेघ) देवलोकमें रहते हैं और सदा दूसरेके (इन्द्रके) सेवक हैं; किंतु वे भी चातक और कोयलकी पीड़ा समझकर वहाँसे दौड़ आये हैं। उन्होंने (यहाँ आकर) वृक्षोंको हरा कर दिया, (जिससे) लताएँ हर्षित होकर उन (वृक्षोंसे) मिल गयीं और मरते हुए मेढकोंको जीवित कर दिया तथा पक्षियोंने भी अपने इच्छानुसार तिनके एकत्र कर-करके सघन घोंसले सजा (बना) लिये। सखी ! श्यामसुन्दरने अपनी भूल न समझकर ही मथुरामें उतने (अधिक) दिन लगा दिये। हमारे स्वामी (तो) रसिकशिरोमणि हैं, फिर भी मथुरामें रहकर उन्होंने हमें भुला दिया।

(२१३)

बहुरि हरि आवहिंगे किहि काम।
रितु बसंत अरु ग्रीषम बीते, बादर आए स्याम॥
छिन मंदिर, छिन द्वारें ठाढ़ी, यौं सूखति हैं घाम।
तारे गनत गगन के, सजनी! बीते चारौ जाम॥
औरौ कथा सबै बिसराई, लेत तुम्हारौ नाम।
सूर स्याम ता दिन तैं बिछुरे, अस्थि रहे कै चाम॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दर फिर हमारे किस काम आयेंगे, (जब कि) वसन्त और ग्रीष्म ऋतु बीत

गयीं और काले मेघ आ गये हैं। (मैं) क्षण घर और क्षणमे द्वारपर खड़ी धूपमे सूख रही हूँ, (और यही नहीं) सखी ! रात्रिमे आकाशके तारे गिनते हुए (रात्रिके) चारों प्रहर बीतते हैं। श्यामसुन्दर ! तुम्हारा नाम लेते-लेते और सब चर्चाएँ हमने भुला दी हैं। (सखी !) जिस दिन श्यामसुन्दरका वियोग हुआ, उसी दिनसे (शरीरमें) हड्डी और चमड़ा भर रह गया है (अर्थात् अत्यन्त क्षीण हो गयी हूँ)।

(२१४)

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि।
कै हरि हरषि इन्द्र हठि बरजे, दादुर खाए सेषनि॥
कै उहिं देस बगनि मग छाँड़े, घरनि न बूँद प्रवेसनि।
चातक-मोर-कोकिला उहिं बन, बधिकनि बधे बिसेषनि॥
कै उहिं देस बाल नहिं झूलतिं, गावतिं सखि न सुदेसनि।
सूरदास-प्रभु पथिक न चलहीं, कासौं कहौं सँदेसनि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) उन देशोंमे (जहाँ श्यामसुन्दर रहते हैं) क्या मेघ नही गरजते, अथवा कृष्णचन्द्रने प्रसन्नतासे इन्द्रको ही आग्रहपूर्वक (वर्षा करनेसे) मना कर दिया और सर्पोंने (वहाँके) मेढकोंको खा लिया (वहाँ मेढक नहीं बोलते) ? अथवा बगुलोंने उस देशका मार्ग छोड़ दिया और वहाँके घरोमें (वर्षाकी) बूँदोका प्रवेश नही होता ? क्या वहाँके वनोंमे व्याधोंने पपीहों, मयूरो और कोयलोंको विशेष रूपसे (ढूँढ़-ढूँढकर) मार डाला ? अथवा उन सुन्दर देशोंमें युवतियाँ झूला नहीं झूलती और उनको सखियाँ (उन्हें झुलाती हुई) गीत नही गातीं ? (इनमेसे कोई बात होती तो उससे मोहनको हमारी स्मृति हो आती।) हाय ! इधर कोई पथिक भी (तो वर्षाके कारण) आता-जाता नही। (अब) स्वामीके (पास भेजनेके) लिये किससे (यहाँ आनेका) संदेश कहूँ।

(२१५)

घटा! मधुबन पै बरषै जाइ।
हरि-घन स्याम बिना सब बिरहिनि-बेलि गईं कुम्हिलाइ॥
उग्र तेज जनु भानु तपत ससि, ब्याकुल मन अकुलाइ।
करै कहा उपचार, सखी री! नैंक न तपन बुझाइ॥
कमल-नैन की सुरति जु आवत, तबै उठति तन ताइ।
सूर सुमिरि गुन स्यामसुँदर के, सखी रहीं मुरझाइ॥

(एक गोपी कह रही है—) घटा! तू जाकर (अब) मथुरापर वर्षा कर। यहाँ तो कृष्णचन्द्ररूपी श्याम घनके बिना सब वियोगिनी (व्रजनारी रूप) लताएँ सूख गयी हैं। चन्द्रमा (उन्हें) ऐसा लगता है मानो प्रचण्ड तेजके साथ सूर्य तप रहा हो, जिससे चित्त व्याकुल होकर घबराने लगता है। सखी! क्या उपचार (ओषधि) करें, तनिक भी जलन शान्त नहीं होती। जब-जब कमललोचन (मोहन) की स्मृति आती है, तभी-तभी शरीर संतप्त हो उठता है। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके गुणोंका बार-बार स्मरण करके सखियाँ (गोपियाँ) म्लान हो रही (सूख रही) हैं।

(२१६)

देखौ, माई! स्याम-सुरति अब आवै।
दादुर, मोर, कोकिला बोलैं, पावस अगम जनावै॥
देखि घटा घन-चाप-दामिनी, मदन सिँगार बनावै।
बिरहिनि देखि अनाथ नाथ बिनु, चढ़ि-चढ़ि ब्रज पै आवै॥
कासौं कहौं, जाइ को हरि पै, यह संदेस सुनावै।
सूरदास-प्रभु मिलहु कृपा करि, ब्रज-बनिता सचु पावै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) देखो, सखी! अब श्यामसुन्दरकी याद आ रही है; (क्योंकि) मेढक, मयूर और कोकिल

बोल-बोलकर वर्षा ऋतुके आनेका लक्षण प्रकट कर रहे हैं। बादलोंकी घटामें इन्द्रधनुष और बिजलीको देखो—ऐसा लगता है मानो कामदेव अपना शृङ्गार बनाकर स्वामीके बिना हम वियोगिनियोंको अनाथ देखकर बार-बार व्रजपर चढ़ाई करता आता है। किससे कहूँ और कौन श्यामसुन्दरके पास जाकर यह संदेश कहेगा ? हे स्वामी ! कृपा करके (शीघ्र) मिलो, जिससे व्रजनारियाँ सुख पायें।

(२१७)

तुम्हारौ गोकुल, हो ब्रजनाथ !
घेर्‌यौ है अरि मन्मथ, लै चतुरंगिनि सेना साथ ॥
गरजत अति गंभीर गिरा, मनु मयगल मत्त अपार।
धुरवा, धूरि उड़त रथ-पायक, घोरनि की खुरतार ॥
चपला चमचमाति आयुध, बग-पंगति धुजा-अकार।
परत निसाननि घाउ तमकि, घन तरपत जिहिं-जिहिं बार ॥
मारू मार करत भट दादुर, पहिरें बिबिध सनाह।
हरे कवच उघरे दिखियत हैं बरहनि घाली धाह ॥
कारे पट धारें चातक-पिक, कहत भाजि जनि जाहु।
उनरि, उनरि वे परत आनि कैं, जोधा परम उछाहु ॥
अति घायल धीरज दुबाहियाँ, तेजहु दुरजन दालि।
टूक-टूक ह्वै सुभट मनोरथ आने झोली घालि ॥
रह्यौ अहँकार सुखेत सूरमा, सकति रही उर सालि।
हवकत हाथ परै नाहीं गहि, रहे नाटसल भालि ॥
निसि बासर कै बिग्रह आयौ, अति संकेतै गाउँ।
कापै करौं पुकार, नाथ ! अब, नाहिन तुम्ह बिन ठाउँ ॥
नंदकुमार स्याम घन सुंदर, कमलनयन सुख धाम।
पठवहु वेगि गुहार लगावन, सूरदास जिहिं नाम ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) हे व्रजनाथ ! शत्रु कामदेवने चतुरंगिणी सेना साथ लेकर तुम्हारे गोकुलको घेर लिया है। (मेघ) अत्यन्त गम्भीर ध्वनिमें (इस भाँति) गर्जना करते हैं, मानो अपार मतवाले हाथी (गर्जना कर रहे) हों। रथों, पैदल सैनिकों और घोड़ोंके (इधर-उधर) पदाघातसे उड़ी धूलिके समान बादल उड़ रहे हैं। शस्त्रोंके समान बिजली चमक रही है और बगुलोंकी पंक्ति ध्वजाके समान उड़ रही है। जब-जब मेघ तड़तडाते हैं, (तब-तब ऐसा लगता है) मानो आवेशमें आकर नगारोंपर चोटें की जा रही हों। अनेक प्रकारके कवच पहिने (रंग-बिरंगे) मेढकरूपी योद्धा मारू राग गाते हुए 'मार-मार' पुकार रहे हैं, मयूरोंके हरे रंगके (पंखरूप) कवच खुले दिखलायी पड़ते है। (अर्थात् नाच रहे हैं) और उच्च स्वरसे बोल रहे हैं। काले वस्त्र पहिने हुए पपीहे और कोकिलरूपी योधा 'भागो मत', 'भागो मत' कहते हुए अत्यन्त उत्साहसे बार-बार उमड़े पड़ते है। हमारा दो हाथों-वाला (सहायक) धैर्य (रूपी योधा) अत्यन्त घायल हो गया है, तेज (गर्व) को भी (इन) दुर्जनोंने दलित कर दिया है और (हमारा) मनःरथ (कामना) रूपी जो उत्तम योद्धा था, (वह भी) टुकड़े-टुकड़े होकर (हृदयकी) झोलीमें (स्ट्रेचरपर) डालकर उठा लाया गया है। अहंकाररूपी-शूर युद्धमें मारा गया, उसके हृदयको अब भी शक्ति वेधे है, भयसे उसका हाथ पकड़ा नही जाता; क्योंकि भालोंकी नोंकोंसे (उसका सारा शरीर) छिद रहा था। यह रात-दिनका युद्ध सिरपर आ पड़ा है, जिसे अत्यन्त संक्षिप्त रूपसे वर्णन कर रही हूँ। हे नाथ ! किससे पुकार करूँ, तुम्हारे अतिरिक्त (मेरे लिये कहीं शरण) स्थान नही है। इसलिये जिनका नाम नन्दनन्दन है और जो सुन्दर तथा काले बादलों-जैसे सुखके धाम हैं, कमललोचन हैं, उन्हे हमारी सहायता करनेके लिये शीघ्र भेज दो।

(२१८)

ऐसी जो पावस रितु प्रथम सुरति करि माधौ जू आवहिं ॥
बरन-बरन अनेक जलधर, अति मनोहर भेष।
तिहिं समै सखि गगन सोभा, सबहिं तैं सुविसेष॥
उड़त खग, बग-बृंद राजत, रटत चातक-मोर।
बहुत विधि चित रुचि बढ़ावत दामिनी घन घोर॥
धरनि तन तृन-रौंम पुलकित, पिय-समागम जानि।
द्रुमनि वर वल्ली वियोगिनि मिलतिं पति पहिचानि॥
हंस, सुक, पिक, सारिका, अलि गुंज नाना नाद।
मुदित मंडल मेघ बरखत, गत विहंग विषाद॥
कुटज, कुंद, कदंब, कोविद, करनिकार सुकंजु।
केतकी, करबीर, बेला, बिमल बहु बिधि मंजु॥
सघन दल, कलिका अलंकृत, सुमन सुकृत सुबास।
*निकट नैन निहारि माधौ, मन मिलन की आस॥
मनुज, मृग, पसु, पंछि परिमित, और अमित जु नाम।
सुमिरि देस, विदेस परिहरि, सकल आवैं धाम॥
यहै चित्त उपाय सोचति, कछु न परत बिचार।
कौन हित ब्रज-वास बिसरयौ, निकट नंदकुमार॥
परम सुहृद सुजान सुंदर, ललित गति, मृदु हास।
चारु लोल कपोल कुंडल डोल ललित प्रकास॥
वेनु कर बहु विधि बजावत, गोप-सिसु चहुँ पास।
सुदिन कब जब आँखि देखैं बहुरि बाल-बिलास॥
बार-बार सु विरहिनी अति विरह-व्याकुल होति।
बात-वेग विलोल जैसैं दीन दीपक जोति॥

---

* शुद्ध पाठ—निरखि नैनन होत मन माधौ मिलन की आस॥

सुनि बिलाप कृपालु सूरजदास करि परतीति।
दरस दै दुख दूरि कीजै, प्रेम को यह रीति॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी !) यदि ऐसी वर्षा ऋतुमें श्याम-सुन्दर पूर्वका स्मरण करके आ जाते ! (ये) विविध रंगोके मनोहर वेशवाले अनेक बादल आकाशमें सबसे अधिक शोभा देते हैं और इसी समय (ये) उडते हुए पक्षी, बगुलोका समूह तथा बोलते हुए पपीहे और मयूर अति शोभावान् लगते हैं। बिजली और बादलका शब्द भी अनेक प्रकारसे चित्तमें रुचि (उमंग) उत्पन्न करते हैं। (देखो, आज मेघरूपी) प्रियतमका मिलन समझकर पृथ्वीके शरीरपर तृणरूपी रोम पुलकित हो रहे हैं और वियोगिनी श्रेष्ठ लताएँ भी वृक्ष (रूप) अपने पतियोंको पहचान-कर मिल रही है। हंस, तोता, कोकिल, मैना तथा भौंरे आदि नाना प्रकारके शब्द करते हैं; (क्योकि आज) प्रसन्नतासे मेघमण्डलद्वारा वर्षा होनेके कारण इन पक्षियोंका शोक दूर हो गया है। कुटज, कुन्द, कदम्ब, कचनार, पीला कनेर, सुन्दर कमल, केतकी, लाल कनेर, बेला आदि अनेक प्रकारके निर्मल पुष्प सुन्दर लग रहे हैं; क्योंकि उनमें (आज) घने पत्ते कलियोसे भूषित हैं, उनके पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध आ रही है। उन्हें निकटसे नेत्रोद्वारा देखकर चित्तमें श्यामसुन्दरके मिलनेकी आशा (उमंग) उठती है। मनुष्य (ही नही), हिरन, पशु-पक्षी आदि और भी जो बहुत-से नामोवाले प्राणी अपने स्थानसे च्युत हैं—पृथक् हैं, वे भी (वर्षामे) अपने देशको स्मरणकर और विदेश (दूसरे देशों) को छोड़कर सभी अपने-अपने घर आ जाते हैं; किंतु नन्दनन्दन पास (मथुरामें) रहते हुए भी किस कारणसे अपना निवासस्थान व्रज भूल गये। उसका कारण मनमें सोचती है, पर वह विचारमें नही आता। वे सुन्दर हैं, सब कुछ जाननेवाले हैं तथा हमारे परम सुहृद् (हितैषी भी) हैं। वे मनोहर गति-वाले है, (हमेशा उनके मुख-कमलपर) मन्द-मन्द हास्य खिला करता है और कपोलोपर हिलते हुए चञ्चल कुण्डलोकी आभा भी बहुत सुन्दर

लगती थी। (वे) हाथमें वंशी लेकर अनेक प्रकारसे बजाते थे, उनके चारों ओर गोप-बालक रहते थे। वह शुभ दिन कब होगा, जब हम नेत्रोंसे फिर उनकी वही बालक्रीड़ा देखेंगी ? इस प्रकार (वे) विरहिणी गोपियाँ वियोगसे (इस भाँति) बार-बार अत्यन्त व्याकुल होती हैं, जैसे वायुके वेगसे चञ्चल दीपककी फीकी ज्योति हो। सूरदासजी कहते हैं— हे कृपालु ! उनका विलाप विश्वासपूर्वक सुनकर दर्शन दे (उनका) दुःख दूर कीजिये। यही प्रेमकी रीति है।

(२१९)

आज बन बोलन लागे मोर।
कारी घटा घुमड़ि बादर की बरखति है घनघोर॥
आधी रात कोकिला बोली, बिछुरें नंद-किसोर।
पीउ सु रटत पपीहा बैरी, कीन्हौ मनमथ जोर॥
दिन प्रति दहत, रहत नहिं कबहूँ, हा-हा किएँ निहोर।
सूर स्याम बिनु जियत मूढ़ मन, जिऐं जाइ सो थोर॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) आज वनमें मयूर बोलने लगे और बादलोंकी काली घटाएँ उमड़कर घनघोर (खूब तीव्र) वर्षा कर रही हैं। श्रीनन्दकुमारसे वियोग हो जानेपर आधी रातको (यह वैरिन) कोकिल बोलती है और वैरी पपीहा भी पीउ-पीउकी रट लगा रहा है, जिससे कामदेव बलवान् हो उठा है। वह मुझे प्रतिदिन जलाता रहता है, हाहाकारपूर्वक अनुनय करनेपर भी विराम नहीं लेता। यह मूर्ख मन श्यामसुन्दरके बिना जी रहा है; इस प्रकार जीवित रहनेपर जो कुछ चला जाय, वही कम है।

(२२०)

अब मेरे नैननहीं झरि लाई, बालम कान्ह बिदेसी।
तब तौ निबही बाल सनेही, अब निबहै धौं कैसी॥

घर-घर सखी हिंडोला झूलैं, गावैं गीत सुदेसी।
हम अधीन व्याकुल भइ डोलैं, बनी जोगिनी-भेषी॥
भरि गइँ ताल, तलैया, सागर, बोलन लागे देसी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं को घर सहै अँदेसी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) प्रियतम कन्हैया विदेशमें रहने लगे हैं और अब (अर्थात् इस वर्षा ऋतुके समय) मेरे नेत्रोंने झड़ी लगा रखी है। अरे बचपनके प्रेमी (मोहन !) उस समय तो (तुम्हारे पास रहनेके कारण हमारा भली प्रकार) निर्वाह हो गया; किन्तु पता नहीं अब निर्वाह कैसे होगा। अन्यत्र घर-घरमें सखियाँ झूला झूलती हैं और सुन्दर स्वरसे गीत गाती हैं; किन्तु हम (तुम्हारे प्रेमके) विवश हुई योगिनी-सा वेश बनाये व्याकुल होकर घूम रही हैं। (वर्षासे) तालाब, तलैयाँ (पोखर) और समुद्र भी भर गये तथा देश (समाज) के लोग (मुझपर) व्यंग करने लगे। स्वामी ! तुम्हारे मिलनेके लिये घरमें कौन (इतनी) चिन्ता (दुःख) सहेगा।

(२२१)

सखी री, बूँद अचानक लागी।
सोवत हुती मदन-मद-माती, घन गरजत हौं जागी॥
बोलत मुरवा, बरषत धुरवा, राग करत अनुरागी।
सूरदास-प्रभु कब जु मिलौगे, हौंहूँ होउँ सभागी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! (मेरे शरीरपर) अचानक (वर्षाकी) बूँद आ लगी। मैं कामदेवके मदसे मतवाली (श्यामके प्रेममें निमग्न) होकर सो रही थी कि मेघोंके गर्जना करते ही जग पड़ी। मयूर बोल रहे हैं, मेघ वर्षा कर रहे हैं और प्रेमी (जन अपने-अपने प्रेमास्पदोंसे) प्रेम कर रहे हैं। स्वामी ! तुम मुझे कब मिलोगे, जिससे मैं भी सौभाग्यवती हो जाऊँ।

(२२२)

सावन (माई), स्याम बिना कैसैं भरिऐ।
बादर देखि बिथा उपजति है, चतुर कान्ह बिन मरिऐ॥
काजर, तिलक, तँबोर, तेल सखि, ये सबहीं परिहरिऐ।
सूनी सेज सिंघ सम लागत, बिनहीं पावक जरिऐ॥
आजु सखी उपजति जिय ऐसी, घोस-देस परिहरिऐ।
सूरदास-प्रभु के मिलिबे कौं कोटि भाँति जिय धरिऐ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामके बिना श्रावणका महीना कैसे बिताया जायगा ? (इन) बादलोंको देखकर (मनमे) पीड़ा उत्पन्न होती है और चतुर कन्हैयाके बिना मैं मरी जा रही हूँ। सखी ! काजल, तिलक (चन्दन), ताम्बूल और तेल—इन सबका उपयोग छोड़ देना चाहिये; क्योकि सूनी शय्या सिंहके समान (भयानक) लगती है और (उसे देख-देखकर) बिना अग्निके ही मै जली जाती हूँ। सखी ! आज मनमे ऐसी बात आती है कि इस ग्राम और इस देशको छोड दूँ। स्वामीसे मिलनेके लिये करोड़ों प्रकारसे मनको समझा रही हूँ।

राग सारंग

(२२३)

गगन सघन गरजत भयौ दंद।
पसर्‌यौ भूमण्डल केतकि जुत, मारुत मनु मकरन्द॥
पर पथ अपथ भयौ सुनि सजनी, कियौ वासव तित खेत।
कोइ न जाइ कान्ह परदेसैं, दोउ तजि निबह अनेत॥
विपति बिचारि [illegible] जदुनंदन, दीजै दरस उदार।
सूर [illegible] भैंटैं, बिरह-बिथा भरि [illegible]॥

कोई गोपी कह रही है—
[illegible] हो गया और केव

साथ वायु पृथ्वीपर ऐसे फैल गयी मानो पुष्पोंका रस बिखर गया हो। सखी! सुनो, मार्ग-कुमार्ग (बीहड स्थल) जितने भी (स्थान) थे, उन सबको इन्द्रने अपनी युद्धभूमि बना लिया है। कोई यहाँसे (संदेश लेकर) जाता नही और श्यामसुन्दर परदेशमे हैं; (इसलिये इन्द्र) लोक-परलोक दोनोंका विचार छोडकर अन्याय करनेपर उतर आया है। उदार यदुनाथ! हमारी विपत्तिका विचार करके तथा उसको समझकर दर्शन दीजिये! श्यामसुन्दर मिल जायँ और इस वियोगकी पीडाका भारी भार दूर कर दें।

राग मलार

(२२४)

आज घन स्याम की अनुहारि।
आए उनै साँवरे सजनी, देखि रूप की आरि॥
इंद्र-धनुप मनु पीत बसन छवि, दामिनि दसन बिचारि।
जनु बगपाँति माल मोतिन की, चितवत चित्त निहारि॥
गरजत गगन गिरा गोविन्द मनु, सुनत नैन भरि वारि।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के, बिकल भईं ब्रजनारि॥

(एक गोपी कह रही है—सखी!) 'आज मेघ श्यामके रूपके समान है। सखी! देख, उनके साँवले रूपसे तुलना करते हुए ये उमड़ आये हैं। (यह) इन्द्र-धनुष ऐसा लगता है मानो उनका पीताम्बर शोभा दे रहा हो। बिजलीको उनकी दन्त-पंक्ति समझो तथा बगुलोंकी पंक्ति मानो मोतियोंकी माला है, जिसे चित्त एकाग्र होकर देख रहा है। मेघ (भी) आकाशमें (इस भाँति) गरजते हैं, मानो गोविन्दकी वाणी हो, जिसे सुनकर नेत्रोंमें जल भर आता है। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार श्यामसुन्दरके गुणोंका स्मरण करके व्रजस्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं।

(२२५)

कैसैं कै भरिहै री दिन सावन के।
हरित भूमि, भरे सलिल सरोवर, मिटे मग मोहन-आवन के॥

दादुर, मोर सोर चातक पिक, सूही, निसा सिरावन के।
गरज चहूँ घन घुमड़ि दामिनी, मदन धनुष धरि धावन के॥
पहिरि कुसुम सारी कंचुकि तन, झुंडनि-झुंडनि गावन के।
सूरदास-प्रभु दुसह घटत क्यौं सोक त्रिगुन सिर रावन के॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! ये श्रावण (मास) के दिन किस प्रकार बीतेंगे; (क्योंकि) पृथ्वी (घाससे) हरी हो गयी, तालाबोमें जल भर गया, (इसलिये) मोहनके आनेके मार्ग भी बंद हो गये (घास और जलसे ढक गये)। मेढक, मयूर, पपीहे और कोकिल कोलाहल कर रहे है। अरी इनकी प्रसन्नताकी यही तो (श्रावण-की) रातें है। चारो ओर बादल गरजते हुए उमड़ रहे है (तथा) बिजली चमक रही है, कामदेवके धनुष लेकर दौड़नेके ये ही दिन है। (सखियोके) कुसुम्भी (गहरी लाल) रंगकी साड़ियाँ तथा चोलियाँ शरीरमे पहिनकर झुंड बनाकर गानेके भी ये ही दिन हैं। (ऐसी अवस्था-मे) हे स्वामी ! यह असहनीय शोक कैसे कम हो सकता है, जो रावणके मस्तकके समान (जो कटनेपर फिर निकल आते थे, यह) तिगुना होता जाता है।

(२२६)

बरषा रितु आई, हरि न मिले माई !
गगन गरजि घन, दइ दामिनी दिखाई॥
मोरन बन बुलाइ, दादुरहु जगाई।
पपिहा-पुकार, सखि ! सुनतहिं बिकलाई॥
इंद्र धनुष सायक लै, छाँड़्यौ रिसाई।
विषम बूँद ताते री, सहि नहिं जाई॥
पथिक लिखाइ पाति, बेगिहिं पहुँचाई।
सूर बिथा जानैं, तौ आवैं जदुराई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! वर्षा ऋतु आ गयी, पर श्यामसुन्दर नहीं मिले। (अब) आकाशमें मेघ गरज रहे हैं, बिजली (भी) चमकती दीख रही है। (इस वर्षाने) मयूरोंको वनमें बुला लिया है और मेढकोंको भी (वर्षा ऋतुने निद्रासे) जगा दिया है (वे टर्रा रहे हैं।) सखी ! पपीहेका शब्द सुनते ही मैं व्याकुल हो गयी। इन्द्रने धनुष लेकर क्रोध करके बाण छोड़े हैं, वे ही जलती हुई दारुण बूँदें हैं, जो सही नहीं जाती। पत्र लिखवाकर यात्रीके द्वारा शीघ्र भिजवा दो। श्रीयदुनाथ यदि मेरी पीड़ा जान लेंगे तो आ जायँगे।

(२२७)

घन गरजत माधौ बिन माई !
इंद्र कोप करि पहिलै दाव लियौ, पावस रितु ब्रज खबरि जनाई ॥
पिय-पिय सब्द चातकहु बोल्यौ, मधुर बचन कोकिला सुनाई।
हरि-सँदेस सुनि हमहि निदरि पुनि, चमकि दामिनी देत दिखाई ॥
बाल-चरित्र भावते जी के सुमरि स्याम की सुरति जु आई।
सूरदास प्रभु बेगि मिलौ किन, बिरह-सूल कैसैं करि जाई ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! श्यामसुन्दर-की अनुपस्थितिमें ये बादल गरज रहे हैं। (इसी बहाने) वर्षा ऋतुने व्रजको यह संवाद (तो नहीं) दिया है कि इन्द्र क्रोध करके पहिला दाव (बदला) लिया (चाहता) है। पपीहा भी 'पी कहाँ, पी कहाँ' बोल रहा है, कोकिल भी मीठे स्वर सुनाती है और मोहनका संदेश सुनकर (उनका व्रज न आना जानकर) हमारी उपेक्षा करके बिजली चमकती दिखायी देती है। चित्तको प्रिय लगनेवाले बाल-चरितोंका स्मरण करके श्यामसुन्दर-की सुधि आ रही है। स्वामी ! शीघ्र क्यों नहीं मिलते ? (तुम्हारे बिना) यह वियोगकी वेदना किस प्रकार दूर हो सकती है।

(२२८)

ऐसे बादर ता दिन आए, जा दिन स्याम गोवरधन धारयौ।
गरजि-गरजि घन बरषन लागे, मानौ सुरपति बैर सँभारयौ ॥
सबै सँजोग जुरे हैं सजनी, चाहत हठ करि घोष उजारयौ।
अब को सात दिवस राखैगौ, दूरि गयौ ब्रज कौ रखवारौ ॥
जब बलराम हुते या ब्रज में, काहू देव न ऐसौ डारयौ।
अब यह भूमि भयानक लागै, बिधना बहुरि कंस अवतारयौ ॥
अब वह सुरति करै को हमरी, या ब्रजमें कोउ नाहिं हमारौ।
सूरदास अति विकल बिरहिनी, गोपिन पिछलौ प्रेम सँभारयौ ॥

(एक गोपी कह रही है—सखी !) ऐसे बादल उस दिन (भी) आये थे, जिस दिन श्यामसुन्दरने गोवर्धन पर्वत उठाया था। बार-बार गर्जना करते हुए मेघ (इस भाँति) वर्षा करने लगे है, मानो इन्द्रने अपनी पहली शत्रुता याद कर ली है। सखी ! सभी संयोग एकत्र हो गये हैं। ये हठ करके ब्रजको उजाड़ देना चाहते है। ब्रजका रक्षक तो दूर चला गया, अब (बता) सात दिनतक (उसकी) कौन रक्षा करेगा। जब श्रीबलराम इस ब्रजमे थे, तब किसी देवताने ऐसा संकट नही डाला था। अब यह (ब्रजकी) भूमि भयानक लगती है, जिससे ज्ञात होता है कि ब्रह्माने फिरसे कंसको जन्म दे दिया। अब उस प्रकार हमारी सुधि कौन लेगा ! इस ब्रजमें अब हमारा कोई नहीं है। सूरदासजी कहते हैं कि पिछले प्रेमका स्मरण करके वियोगिनी गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो रही है !

(२२९)

जो पै नंद-सुवन ब्रज होते।
तौ पै नृप पावस ! सुनि बिनती, कहत न डरतीं तोते ॥

अव हम अवला जानि स्याम विनु, हय, गय, रथ वर जोते।
हम पै गरजि-गरजि घन पठवत, मदन मनावत पोते॥
जो पै गोकुल कर लागत है, लेत न सकल सवोते।
सूरदास-प्रभु सैल-धरन विनु, कहा सिराइ अव मोतैं॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) हे वर्षाके राजा (इन्द्र) ! हमारी प्रार्थना सुन । यदि श्रीनन्द-नन्दन व्रजमे होते तो तुमसे कुछ कहते (प्रार्थना करते) हम डरती नही । तुमने श्यामसुन्दरसे रहित हमे अबला समझकर (ये) अच्छे घोड़े, हाथी और रथ जोतकर हमपर चढ़ाई कर दी । हमपर बार-बार गर्जना करके मेघ भेजते हो और स्वयं (हमपर आक्रमण करनेके लिये) कामदेवसे प्रार्थना करते हो । यदि गोकुलपर तुम्हारा कुछ कर (लगान) लगता है तो सब-का-सब (एक समय ही) क्यो नही चुका लेते । श्रीगिरिधरके विना अब मुझसे क्या हो सकता है ।

(२३०)

अव व्रज नाहिन नंद-कुमार।
इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर॥
नैन जलद, निमेष दामिनि, आँसु वरषत धार।
दरस रवि-ससि दुरयौ धीरज, स्वास पवन अकार॥
उरज गिरि में भरत भारी, असम काम अपार।
गरज विकल वियोग वानी, रहति अवधि अधार॥
पथिक ! हरि सौं, जाइ मथुरा, कहौ वात विचार।
सत्रु-सेन सुधाम घेरयौ, सूर लगौ गुहार॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) अब व्रजमें नन्दनन्दन नही है, यही समझकर अज्ञानी इन्द्रने गोकुलपर चढ़ाईकी हठ की है । (अब तो मेरे ये) नेत्र ही बादल बन गये है, पलकोका गिरना

विद्युत्के समान है और (मेरे) आँसू भी वर्षाकी धाराके समान बरस रहे हैं, (जिससे मोहनका) दर्शन और धैर्यरूपी सूर्य-चन्द्रमा छिप गये हैं तथा श्वास (वर्षा ऋतुकी) वायुके समान चल रही है। वक्षःस्थलरूपी पर्वतोंमें कामदेव भारी विषमता भर रहा है। वियोगकी व्याकुलताभरी वाणी (रुदन ही) गर्जना है, (ऐसी अवस्थामें भी श्यामसुन्दरके लौटनेकी) अवधिके सहारे ही जी रही हूँ। पथिक ! मथुरा जाकर श्यामसुन्दरसे यह बात समझाकर कहना कि शत्रुकी सेनाने (उनका) उत्तम धाम घेर लिया है। अब तो आप हमारी पुकार सुनकर सहायक हों।

(२३१)

मानौ, माई ! सबनि यहै है भावत ।
अब उहिं देस स्यामसुंदर कहँ, कोउ न समौ सुनावत ॥
धरत न वन, नव पत्र-फूल-फल, पिक बसंत नहिं गावत ।
मुदित न सर-सरोज अलि गुंजत, पवन पराग उड़ावत ॥
पावस बिबिध बरन बर बादर उमड़ि न अंबर छावत ।
दादुर, मोर, कोकिला, चातक, बोलत बचन दुरावत ॥
ह्याँ ही प्रगट निरंतर निसि-दिन, हठ करि बिरह बढ़ावत ।
सूर स्याम पर-पीर न जानत, कत सरबग्य कहावत ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) मानो सखी ! सबको यही अच्छा लगता है कि अब मोहन व्रजमें न आवें; क्योंकि अब उस देशमें (जहाँ वे है) कोई भी श्यामसुन्दरकी इस संकटके समयकी सूचना नही देता। (क्या वहाँ) वन नये पत्ते, फूल और फल नही धारण करता ? क्या वहाँ वसन्तमें (भी) कोकिल गाती नही ? सरोवरोंमे कमलपर प्रसन्न होकर भौंरे गुंजार नही करते ? वायु (फूलोंकी) पराग उड़ाता नही ? (क्या वहाँ) वर्षा ऋतुमें अनेक रंगोंके सुन्दर बादल उमड़कर आकाशमे नहीं छा जाते अथवा मेढक, मोर, कोकिल और चातक वहाँ

बोलनेमे अपनी वाणी छिपा लेते हैं (बोलते नहीं, अन्यथा इनको देख-सुनकर मोहनको हमारी स्मृति अवश्य आ जाती) ? ये सब तो यहीं हठपूर्वक रात-दिन निरन्तर, प्रत्यक्ष रहते हमारे वियोग-दुःखको बढ़ाते है; किंतु (इन निमित्तोके बिना भी) यदि श्यामसुन्दर दूसरेकी पीड़ा नही जानते तो (वे) सर्वज्ञ क्यो कहलाते है ।

(२३२)

सखि कोउ नई बात सुनि आई ।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सौं मदन* मिलिक करि पाई ॥
घन धावन, बग-पाँति पटौ सिर, बैरख तड़ित सुहाई ।
बोलत पिक-चातक ऊँचे सुर, फेरत मनौ दुहाई ॥
दादुर, मोर, चकोर, मधुप, सुक, सुमन, समीर सुहाई ।
चाहत बास कियौ बृन्दावन, बिधि सौं कछु न बसाई ॥
सींव न चाँपि सक्यौ तब कोऊ, हुते बल, कुँवर कन्हाई ।
सूरदास गिरिधर बिनु गोकुल ये करिहैं ठकुराई ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी ! आज) कोई सखी (व्रजमे) यह नयी चर्चा सुन आयी है कि देवराज इन्द्रसे कामदेवने यह सम्पूर्ण व्रजभूमि जागीरके रूपमे पायी है । मेघ उसके दूत है, जिनके मस्तकपर बगुलोंकी पंक्तिरूपी पट्टा बँधा है तथा (जिनके हाथोंमे) बिजलीरूपी झंडा शोभा दे रहा है और उच्चस्वरमे कोकिल तथा पपीहे (इस भाँति) बोलते है, मानो उसकी विजय घोषणा कर रहे हों । (अब वह कामदेव) मेढक, मयूर, चकोर, भौरे, तोते, पुष्प और सुहावनी वायुके साथ वृन्दावनमें ही निवास करना चाहता है । (किया क्या जाय) विधातासे कुछ वश नही चलता । जब यहाँ श्रीबलराम और नन्दकुमार

* शु० पा०—'मदन मिलकियत पाई' ।

कृष्णचन्द्र थे, तब तो कोई (व्रजकी) सीमा दबा नहीं सका; किंतु अब उन गिरिधरके बिना गोकुलमें ये (सब) स्वामित्व करेंगे।

(२३३)

बहुरि बन बोलन लागे मोर।

करत सँभार नंद-नंदन की, सुनि बादर की घोर॥

जिनके पिय परदेस सिधारे, सो तिय परीं निठोर।

मोहि बहुत दुख हरि बिछुरे कौ, रहत बिरह कौ जोर॥

चातक, पिक, दादुर, चकोर ये, सबै मिले है चोर।

सूरदास-प्रभु बेगि न मिलहू, जनम परत है ओर॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी ! अब) वनमें फिरसे मोर बोलने लगे, (जिससे ऐसा जान पड़ता है) ये बार-बार बादलोकी गर्जना सुनकर श्रीनन्दनन्दनका स्मरण करते हैं। किंतु (ऐसे समय) जिनके प्रियतम विदेश चले गये हैं, वे नारियाँ बुरी दशामें पड़ गयी है। मुझे श्यामसुन्दरसे वियोग होनेका बहुत दुःख है, बलवान् विरह बना ही रहता है। पपीहा, कोकिल, मेढक, चकोर (आदि) सब चोर (आज) परस्पर मिल गये हैं। स्वामी ! शीघ्र क्यो नही मिलते, (मेरे) जीवनका किनारा (अन्त) आ रहा है।

(२३४)

(इहिं बन) मोर नहीं ये काम-बान।

बिरह खेत, धनु पुहुप, भृंग गुन, करि लतरैयाँ रिपु समान॥

लयौ घेरि मन-मृग चहुँ दिसि तैं, अचुक अहेरी नहिं अजान।

पुहुप सेज घन रचित जुगल बन, क्रीड़त कैसौ बन बिधान॥

महा मुदित मन मदन प्रेम-रस, उमँग भरे मैमंत जान।

इहीं अवस्था मिलैं सूर-प्रभु, नाना गद दै जीव दान॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) इस (व्रजरूपी) वनमें (ये) मयूर नहीं है, ये तो कामदेवके बाण है । (यहाँ) वियोग युद्धभूमि है, पुष्प (उस कामके) धनुष हैं और भौंरोको (अपने धनुषकी) रस्सी (प्रत्यञ्चा) बनाकर उसने शत्रुके समान आघात किया है। (अब उसने) मेरे मनरूपी हिरनको चारो दिशाओसे घेर लिया है। (वह) अचूक (निपुण) शिकारी है, मूर्ख नही है; (देख न, पृथ्वीपर इसने) पुष्पोकी शय्या और (आकाशमें) बादल बनाकर वन और गगन दोनों जगह (शिकार) खेलनेका कैसा विधान (उपाय) बनाया है। उमंगमें भरे मत्त हाथियोके समान प्रेमरससे भरे (मेरे) मनको समझकर कामदेव (शिकार करनेमे) अत्यन्त आनन्दित हो रहा है। स्वामी ! इस अवस्थामें इन नाना प्रकारके रोगोसे जीवनदान देते हुए आ मिलो।

(२३५)

आज वन मोरन गायौ आइ ।

जब तै स्रवन परयौ सुनि सजनी, तब तैं रह्यौ न जाइ ॥

ब्रज तैं बिछुरे मुरली-मनोहर, मनौं व्याल गयौ खाइ ।

औषद बैद गारुड़ी हरि नहिं, मानै मंत्र दुहाइ ॥

चातक, पिक दुख देत रैन-दिन, पिय-पिय बचन सुनाइ ।

सूरदास हम तौ पै जीवैं, जौ मिलिहैं हरि आइ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी ! सुनो,) आज वनमे मोरोने आकर गाया । सखी ! सुन, जबसे (उनका शब्द) कानोंमें पड़ा है, तबसे रहा नही जाता । व्रजसे मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर क्या बिछुड़े मानो हमें सर्पने खा लिया । अब इसको औषध जाननेवाले वैद्य या ओझा श्यामसुन्दर तो है नही और यह विष (उनकी) मन्त्रकी ही दुहाई मानता है । पपीहा और कोकिल 'पी, पी' की वाणी सुनाकर रात-दिन दुःख देते रहते है । (ऐसी दशामें) हम तो तभी जीवित रहेंगी, जब श्याम आकर मिलें ।

(२३६)

सिखिनि सिखर चढ़ि टेर सुनायौ।
बिरहिन सावधान ह्वै रहियौ, सजि पावस दल आयौ॥
नव बादर बानैत, पवन ताजी चढ़ि, चुटक दिखायौ।
चमकत बीजु सेल्ह कर मंडित, गरज निसान बजायौ॥
चातक, पिक, झिल्ली-गन, दादुर, सब मिलि मारू गायौ।
मदन सुभट कर बान पंच लै ब्रज सनमुख ह्वै धायौ॥
जानि बिदेस नंदनंदन कौं, अबलनि त्रास दिखायौ।
सूर स्याम पहिले गुन सुमिरें प्रान जात बिरमायौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) अब तो मोरोंने पर्वतके शिखरोंपर चढ़कर (यह) पुकार सुनायी है कि 'वियोगिनियो! सावधान होकर रहना, पावस (ऋतु) अपना दल बटोरकर आ पहुँचा है! (देखो, ये) नवीन मेघ उसके योद्धा हैं; (उन योधाओंका) वायु घोड़ा है, जिसपर चढ़कर उन्होंने कोड़ा लगाया है। हाथमें सुशोभित बिजलीरूपी भाला चमक रहा है और गर्जनारूपी नगारा उसने बजा दिया है। पपीहा, कोकिल, झींगुर तथा मेढकोंके समूह—सब मिलकर मारू (युद्धका) राग गा रहे हैं और महान् योधा कामदेव भी (उनके साथ) हाथमे (अपने) पाँच बाण लेकर व्रजके सम्मुख दौड़ पड़ा है। श्रीनन्दनन्दनको विदेशमे समझकर अवलाओं (नारियो) को (इन्होंने) भयभीत कर दिया है। (ऐसी दशामें) श्यामसुन्दरके पहले गुणों (चरितो) का स्मरण करके (ही) मैं प्राणोंको जानेसे रोक रही हूँ।

(२३७)

हमारे, माई! मुरवा बैर परे।
घन गरजत, बरज्यौ नहिं मानत, त्यौं-त्यौं रटत खरे॥

करि-करि प्रगट पंख हरि इन्ह के, लै-लै सीस धरे।
याही तैं न बदत बिरहिनि कौं, मोहन ढीठ करे॥
को जानै काहे तैं, सजनी! हम सौं रहत अरे।
सूरदास परदेस बसे हरि, ये बन तैं न टरे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी! (इन) मयूरोंने (तो) हमसे शत्रुता ठान ली है; (ज्यों-ज्यों) मेघ गरजते हैं, त्यों-त्यों ये (मयूर) हठपूर्वक बोलते हैं (और) रोकने पर भी (ये) नहीं मानते। श्यामसुन्दरने इनके पंख ले-लेकर सबको दिखा-दिखाकर मस्तकपर धारण किये, इसीलिये ये (अब) हम वियोगिनियोंको कुछ समझते ही नही। मोहनने इन्हे ढीठ बना दिया है। सखी! कौन जाने किसलिये ये हमसे हठ करते है। श्यामसुन्दर तो विदेशमें जा बसे, किंतु ये वन (व्रज) से (अब भी) हटते नही है।

(२३८)

कोउ, माई! बरजै री इन्ह मोरनि।
टेरत बिरह रह्यौ न परै छिन, सुनि दुख होत करोरनि॥
चमकत चपल चहूँ दिसि दामिनि, अंबर घन की घोरनि।
बरषत बूँद बान-सम लागत, क्यौं जीवै इह जोरनि॥
चंद-किरन नैनन भरि पीवत, नाहिन तृप्ति चकोरनि।
सूरदास तौ ही पै जीवै, मिलिहै नंद-किसोरनि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी! कोई तो इन मोरोंको मना करे; इनके बोलनेपर (श्यामसुन्दरके) वियोगके कारण एक क्षण (भी स्थिर) नहीं रहा जाता, (साथ ही) उनका शब्द सुनकर (वियोग-) दुख करोड़ो गुना बढ़ जाता है। चञ्चल बिजली चारो दिशाओंमें चमक रही है और आकाशमे मेघोंकी गर्जना हो रही है। वर्षा होते समय बूँदें बाणके समान लगती है। (हाय! अब) इन सबोंका

आवत्य रहते हम कैसे जीवित रह सकती हैं। (जिस भाँति) देख भरकर (भली प्रकार) चन्द्रमाकी किरणें पीते हुए भी चकोरोंको तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार हम तो तभी जीवित रह सकती हैं, जब श्रीनन्दकिशोर मिलेंगे।

(२३९)

रहु, रहु रे. बिहँग बनवासी।
तेरें बोलत रजनी बाढ़ति, स्रवनन सुनत नींदहू नासी॥
कहा कहौं. कोउ मानत नाहीं, इक चंदन औ चंद तरासी।
सूरदास-प्रभु जौं न मिलैंगे, तौ अब लैहौं करवट कासी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) अरे वनमें रहनेवाले पक्षी (पपीहे)! ठहर, ठहर; (क्योंकि) तेरे बोलनेसे रात्रि बढ़ जाती है और (उसे) कानोंसे सुनते-सुनते (मेरी) निद्रा भी नष्ट हो जाती है। क्या करूँ, कोई (मेरा रोकना) मानता ही नहीं। मैं तो चन्दन और चन्द्रमाद्वारा पहिले ही काटी (बेधी) गयी हूँ। यदि स्वामी अब नहीं मिलेंगे तो काशी-करवट लूँगी (काशी जाकर देहत्याग करूँगी)।

(२४०)

बहुरि पपीहा बोल्यौ माई।
नींद गई, चिंता चित बाढ़ी, सुरति स्याम की आई॥
सावन मास मेघ की बरषा, हौं उठि आँगन आई।
चहुँ दिसि गगन दामिनी कौंधति, तिहिं जिय अधिक डराई॥
काहू राग मलार अलाप्यौ, मुरलि मधुर सुर गाई।
सूरदास [illegible] ब्याकुल, धरनि परी मुरझाई॥

(सुरदास [illegible] गोपी कह रही है—) 'सखी! [illegible] फिर बोला, [illegible] द्रा टूट गयी (और नींदके [illegible]

चित्तमे चिन्ता बढ गयी तथा श्यामसुन्दरका स्मरण हो आया। मै श्रावण मासकी मेघ-वर्षामें उठकर आँगनमें आयी, (तो देखती हूँ) चारों ओर आकाशमें बिजली चमक रही है, उससे मैं मनमें बहुत डर गयी।' (तभी) किसीने मधुर स्वरमें वंशी बजाकर मलार रागका अलाप छेड़ा, जिससे वह वियोगिनी गोपी व्याकुल हो गयी और पृथ्वीपर मूर्छित होकर गिर पड़ी।

(२४१)

सारंग ! स्यामहि सुरति कराइ।
पौढ़े होहिं जहाँ नँदनंदन, ऊँचे टेरि सुनाइ ॥
गइ ग्रीषम, पावस-रितु आई, सब काहू चित चाइ।
तुम्ह बिन ब्रजबासी यौं डोलै, ज्यौ करिया बिनु नाइ ॥
तुम्हरौ कह्यौ मानिहै मोहन, चरन पकरि लै आइ।
अब की बेर सूर के प्रभु कौ नैननि आन दिखाइ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) 'पपीहे ! इस बार श्यामसुन्दरको (व्रजका) स्मरण कराना। जहाँ नन्दनन्दन सोये हुए हो, वहाँ उच्चस्वरसे (पी कहाँ) बोलकर उन्हें सुनाना कि 'गर्मी बीत गयी, वर्षा ऋतु आ गयी और सबके चित्तमें उमंग है; किंतु आपके बिना व्रजवासी लोग ऐसे घूमते (भटकते) हैं, जैसे केवटके बिना नौका।' मोहन तुम्हारा कहना मान लेंगे। उनके चरण पकड़कर (प्रार्थना करके) ले आओ। अबकी बार हमारे स्वामीको लाकर आँखोसे दिखला दो (उनका दर्शन करा दो)।

(२४२)

सखी री, चातक मोहि जियावत।
जैसैंहि रैनि रटति हौं पिय-पिय, तैसैंहि वह पुनि गावत ॥
अतिहि सुकंठ, दाह प्रीतम कें, तारू जीभ न लावत।
आपुन पियत सुधा-रस अमृत, बोलि बिरहिनी प्यावत ॥

यह पंछी जु सहाइ न होतौ, प्रान महा-दुख पावत।
जीवन सुफल सूर ताही कौ, काक पराए आवत ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) 'सखो ! चातक मुझे जीवित रखता है; जैसे रातमे मै बार-बार 'पिय-पिय' पुकारती हूँ, वैसे ही वह भी बार-बार गाता है। उसका कण्ठ अत्यन्त सुन्दर (सुरीला) है, पर प्रियतमके वियोगकी जलनके कारण (उसकी) जीभ तालूसे लगती ही नहीं (कभी चुप नहीं होता)। वह स्वयं भी (प्रियतमके नामरूपी) अमृतरसको पीता है और अपनी वाणीसे वियोगिनियोंको भी पिलाता है। यदि यह पक्षी सहायक न होता तो मेरे प्राण अत्यन्त दुःख पाते। उसीका जीवन सफल है, जो दूसरेके काम आता है।

राग सारंग

(२४३)

चातक न होइ, कोउ बिरहिनि नारि।
अजहूँ पिय-पिय रजनि सुरति करि, झूँठैंही मुख माँगत बारि ॥
अति कृस गात देखि सखि ! याकौ, अह-निसि बानी रटत पुकारि।
देखौ प्रीति बापुरे पसु की, आन जनम मानत नहिं हारि ॥
अब पति बिनु ऐसौ लागत है, ज्यौं सरवर सोखित बिनु बारि।
त्यौंही सूर जानिऐ गोपी, जौ न कृपा करि मिलहु मुरारि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) यह पपीहा नही है, (इस रूपमें) यह तो कोई वियोगिनी स्त्री है, जो अब भी रातमें अपने प्रियतमका स्मरण करके 'पी कहाँ, पी कहाँ' करती झूठ-मूठ (अपने) मुखमें (वर्षाका) जल माँगती है। सखी ! देखो, इसका शरीर अत्यन्त दुर्बल है, (फिर भी) रात-दिन यही शब्द पुकारकर रटती रहती है। इस बिचारे पशु (पक्षी) का प्रेम तो देखो कि दूसरे जन्ममें भी हार नहीं मानता। अब पतिके बिना यह ऐसी लगती है, जैसे जलके बिना

सरोवर शोभित (शून्य) दिखायी पड़ता हो। हे मुरारी! यदि कृपा करके आप न मिले तो समझ लो कि यही दशा गोपियोकी भी होगी (हम भी जन्म-जन्म इसी प्रकार तुम्हारा नाम रटेंगी)।

राग आसावरी

(२४४)

अब मेरी को बोलै साखि।
कैसैं हरि के संग सिधारैं, अब लौं यह तन राखि॥
प्रान-उदान फिरै बन-बीथिनि, अवलोकन-अभिलाषि।
रूप-रंग रस-रासि परान्यौ, बचन न आवै भाषि॥
सूर सजीवन-मूरि मुकुंदहि, लै आई ही आँखि।
अब सोइ अंजन देति सुरुचि करि, जिहिं जीजै मुख चाखि॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी!) अब (मोहनके पास) मेरी (प्रीतिकी) साक्षी कौन दे। अबतक यह शरीर रक्खे रही (वियोग होते ही देहत्याग नही किया), अब श्यामके साथ कैसे जा सकूँगी? उन्हे देखनेको लालसासे प्राण उतावले होकर वनके मार्गोंमें भटकते है। साथ ही रूप, रंग और रस भी उनको देखनेकी लालसासे भाग गये, (मुझसे उनकी कोई) बात नही कही जाती। ये आँखें संजीवनी जड़ीके (रूपमें) उन मुकुन्दको ले आयी थी, अब अत्यन्त रुचि (उमंग) पूर्वक वही अंजन लगाऊँगी, जिससे (उनके) मुखका दर्शन करके जीवित रहा जाय।

राग मलार

(२४५)

बहुत दिन जीवौ, पपिहा प्यारौ।
बासर-रैनि नाम लै बोलत, भयो बिरह जरि कारौ॥
आपु दुखित, पर दुखित जानि जिय, चातक नाम तुम्हारौ।
देख्यौ सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन कौ दुख न्यारौ॥

जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारौ।
सूरदास-प्रभु स्वाति-बूँद लगि, तज्यौ सिंधु करि खारौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—) प्यारे पपीहा! (तुम) बहुत दिनोंतक जीवित रहो; (क्योंकि तुम) दिन-रात (प्रियका) नाम लेकर बोलते हो और उनके वियोगमे जलकर काले हो गये हो। स्वयं दुःखित हो और दूसरोका दुःख (भी) मनमें समझते हो, इसीसे तुम्हारा नाम चातक है। सखी! सब बातें सोचकर देख ली, किंतु (प्रियसे) वियोगका दुःख तो (सब दुःखोसे) अलग ही है। यह प्रेमका तीक्ष्ण बाण जिसे लगता है, वही उसे समझ सकता है (अन्य नहीं। अतएव इस चातकके समान) स्वामीरूपी स्वातीकी बूँदके लिये (मैंने भी) इस संसाररूपी खारे समुद्रको (दुःखद मानकर) छोड़ दिया है।

(२४६)

(हौं तौ मोहन के) बिरह जरी रे, तू कत जारत।
रे पापी तू पंखि पपीहा, पिय-पिय करि अध-राति पुकारत॥
करी न कछु करतूति सुभट की, मूठि मृतक अबलनि सर मारत।
रे सठ, तू जु सतावत औरनि, जानत नहिं अपने जिय आरत॥
सब जग सुखी, दुखी तू जल बिनु, तहू न उर की बिथा बिचारत।
सूर स्याम बिनु ब्रज पै बोलत, काहें अगिलौ जनम बिगारत॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) अरे पपीहे! मै तो श्यामके वियोगमें दग्ध हूँ, तू जली हुईको क्यों जलाता है? अरे पक्षी पपीहे! तू बड़ा पापी है जो आधी रातको 'पी कहाँ, पी कहाँ' करके पुकारता है। उत्तम योद्धाका-सा कोई काम तो तूने किया नही, किंतु मरी हुई अबलाओंको बाणोकी मूठसे मारता है। अरे दुष्ट! तू जो दूसरोको सताता है तो क्या अपने मनमे यह नही जानता कि ये दुखी हैं? सारा संसार सुखी है, पर तू जलके बिना दुखी रहता है; फिर भी दूसरेके हृदय-की पीड़ाका विचार नही करता। श्यामसुन्दरके वियोगी व्रजमें तू बोलता

है ! (अरे, इस जन्ममें तो दुखी है ही, यह पाप करके) अपना अगला जन्म भी क्यों बिगाड़ता है ?

राग नट

(२४७)

जो तू नैंकहूँ उड़ि जाहि।
कहा निसि-बासर बकत बन, बिरहिनी तन चाहि ॥
विविध बचन सुदेस बानी इहाँ रिझवत काहि।
पति-बिमुख पिक परुष पसु लौं इतौ कहा रिसाहि ॥
नाहिनैं कोउ सुनत-समुझत, बिकल बिरह-बिथाहि।
राखि लै तन वा अवधि लौं, मदन-मुख जनि खाहि ॥
तुहू तौ तन दग्ध दिखियत, बहुरि कह समुझाहि।
करि कृपा ब्रज सूर-प्रभु बिनु मौन मोहि बिसाहि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—'अरे पपीहा !) काश तू (यहाँसे) तनिक भी उड़ जाता (तो कितना उत्तम होता) ! अरे ! (जरा तो) वियोगिनीके शरीर (दशा) का विचार कर, रात-दिन वनमें क्या बकता (बोलता) है ? मीठे स्वरोंमें नाना प्रकारकी बोली बोलकर यहाँ किसे रिझाता (प्रसन्न करता) है ? अरे कोकिल ! क्रूर पशुके समान अपने प्रियतमसे विमुख (वियुक्त) हमपर इतना क्यों रुष्ट होता है ? यहाँ (तेरी बात) कोई सुनता-समझता नहीं, सब वियोग-की पीड़ासे व्याकुल हैं। अरे श्यामके लौटनेकी अवधितक हमारे शरीरको रख ले, मदन-मुख बनकर (कामदेवको उत्तेजित करनेवाले शब्द बोलकर) हमें खा मत। तेरा शरीर भी तो जला दिखायी पड़ता है, फिर (तुझे) समझाकर क्या कहूँ ? कृपा करके स्वामीसे वियुक्त व्रजमें चुप रहनेके बदले (मूल्य) में मुझे खरीद ले (कृतज्ञ बना ले)।

राग सारंग

(२४८)

कोकिल ! हरि कौ बोल सुनाउ।
मधुबन तैं उपहारि स्याम कौं, या ब्रज कौं लै आउ॥
जा जस कारन देत सयाने तन, मन, धन—सब साज।
सुजस बिकात बचन के बदलें, क्यौं न बिसाहत आज॥
कीजै कछु उपकार परायौ, यहै सयानौ काज।
सूरदास पुनि कहँ यह अवसर, बिनु बसंत रितुराज॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—अरी) कोकिल ! तू श्यामसुन्दरकी-सी वाणी सुना, यह (स्वररूपी) उपहार देकर श्यामसुन्दरको मथुरासे इस व्रजमे ले आ। जिस सुयशको पानेके लिये चतुर लोग तन, मन, धन और सारी सम्पत्ति दे देते हैं, वह सुयश केवल शब्दके मोल विक रहा है, उसे तू आज क्यो नही खरीद लेती ? चतुर व्यक्तिका काम यही है कि कुछ दूसरेका उपकार किया जाय। फिर यह सुअवसर कहाँ मिलेगा कि बिना वसन्त ऋतुके ही ऋतुराज हो जाय (श्यामका आना तो वसतके विना ही ऋतुराजका सुख देगा)।

(२४९)

सुनि री सखी ! समुझि सिख मेरी।
जहाँ बसत जदुनाथ, जगत-मनि, बारक तहाँ, आउ दै फेरी॥
तू, कोकिला! कुलीन, कुसल-मति, जानति बिथा बिरहिनी केरी।
उपवन बैसि, बोलि बर बानी, बचन सुनाइ हमहि करि चेरी॥
कहियौ प्रगट सुनाइ स्याम सौं, अबला आनि अनँग अरि घेरी।
तो सी नाहिं और उपकारिन, यह बसुधा सब बुधि करि हेरी॥
प्रानमि के बदलें न पाइयत, सैंत बिकाइ सुजस की ढेरी।
ब्रज लै आउ सूर के प्रभु कौं, गाऊँगी कल कीरति तेरी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी (कोकिल)! तू मेरी शिक्षा सुन और समझ ले। जहाँ जगत्के शिरोमणि श्रीयदुनाथ निवास करते हैं, वहाँ एक बार फेरी लगा आ। (अरी) कोकिल! तू उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है, बुद्धिकी चतुर है और वियोगिनियोंकी पीड़ा जानती है; (अतएव वहाँ) उपवनमें बैठकर, उत्तम वाणी बोलकर और उनको अपना शब्द सुनाकर हमें दासी (कृतज्ञ) बना ले। तू श्यामसुन्दर-को सुनाकर यह प्रत्यक्ष (स्पष्ट) कहना कि (व्रजकी) अबलाओंको शत्रु कामदेवने घेर लिया है। यह पूरी पृथ्वी हमने बुद्धिकी आँखसे देख ली, (यहाँ) तेरे समान (दूसरी) कोई उपकार करनेवाली नहीं है। (जो) प्राणोंके मूल्यपर भी नहीं मिलती, वह सुयशकी ढेरी बिना मूल्यके बिक रही है। हमारे स्वामीको तू व्रजमें ले आ, (मैं) तेरी मनोहर कीर्ति (सदा) गाती रहूँगी।

राग मलार

(२५०)

अब यह बरषौ बीति गई।
जनि सोचै, सुख मानि सयानी, भलि रितु सरद भई॥
फुल्ल सरोज सरोवर सुंदर, नव बिधि नलिनि नई।
उदित चारु चंद्रिका किरन, उर अंतर अमृतमई॥
घटी घटा अभिमान मोह मद, तमिता तेज हई।
सरिता संजम स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई॥
यहै सरद-संदेस, सूर! सुनि, करुनाँ कहि पठई।
यह सुनि सखी सयानी आई, हरि-रति अवधि हई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) 'अब यह वर्षा ऋतु भी बीत गयी। (इसलिये) चतुर सखी! (अब) चिन्ता मत कर, प्रसन्न हो जा; क्योंकि उत्तम ऋतु शरद आ गयी है। सुन्दर सरोवरोंमें कमल खिल गये हैं, नये ढंगसे नवीन कमलपत्र आ गये हैं तथा

सुन्दर चन्द्रमाकी किरणें (भी) उदय होने लगी हैं, जो हृदयके भीतर अमृतमय जान पड़ती है । अभिमान, मोह और मदकी घटाएँ घट गयी (क्षीण हो गयीं) जिससे तमोगुणका तेज नष्ट हो गया तथा संयमरूपी सब नदियोका जल स्वच्छ हो गया है, कामरूपी काई फट गयी (दूर हो गयी) है। शरद ऋतुका यही सदेश है, जिसे दया करके (श्यामसुन्दरने) कहला भेजा है।' यह सुनकर सब चतुर सखियाँ (वहाँ) आ गयीं, जो श्यामसुन्दरके प्रेममे (उनके लौटनेकी) अवधि (देखती) मृतप्राय हो रही थी ।

राग मारू

(२५१)

सरद-समैं हू स्याम न आए।
को जाने काहे तें सजनी, किहिं बैरिनि बिरमाए॥
अमल अकास, कास कुसुमित छिति, लच्छन स्वच्छ जनाए।
सर-सरिता-सागर-जल उज्जल, अति कुल कमल सुहाए॥
अहि मयंक, मकरंद कंज, अलि, दाहक गरल जिवाए।
प्रीतम रंग संग मिलि सुंदरि, रचि सचि सींचि सिराए॥
सूनी सेज तुषार जमत चिर, बिरह-सिंधु उपजाए।
अब गइ आस सूर मिलिबे की, भए ब्रजनाथ पराए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) शरद ऋतुके समय भी श्यामसुन्दर नही आये। सखी ! कौन जाने किसलिये नहीं आये, (हमारी) किस वैरिनने (उन्हे) रोक रखा है । आकाश निर्मल हो गया है, पृथ्वीपर कास फूल रहा है, स्वच्छताके सभी लक्षण प्रकट हो गये है; सरोवरों, नदियों और समुद्रका जल निर्मल हो गया है और उनमें बहुत अधिक कमल (फूले हुए) शोभा देने लगे हैं। चन्द्रमाने साँपोंको (अपनी किरणें पिलाकर) उनको जलानेवाले

विषसे* तथा कमलोंने अपना मकरन्द देकर भौरोंको जिलाया है। सुन्दरियाँ (भी) अपने प्रियतमके साथ अनुरागपूर्वक मिलकर, आमोद-प्रमोदद्वारा अपनेको (स्नेहसे) सिञ्चित करके (हृदय) शीतल करती है, किंतु (वही चन्द्रमा) हमारी सूनी शय्यापर देरतक पाला जमाकर हमारे लिये वियोगका समुद्र उत्पन्न करता है। अब मिलनकी आशा नष्ट हो गयी, श्रीव्रजनाथ दूसरोके हो गये।

(२५२)

गोविंद बिनु कौन हरै नैनन की जरनि।
सरद-निसा अनल भई, चंद भयौ तरनि॥
तन में संताप भयौ, दुरयौ अनंद घरनि।
प्रेम-पुलक बार-बार, अँसुअन की ढरनि॥
वे दिन जौ सुरति करौं, पाइन की परनि।
सूर स्याम क्यौ बिसारि लीला बन करनि॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) गोविन्दके बिना हमारे नेत्रोकी जलन कौन दूर करे ? हमारे लिये (यह) शरद्की रात्रि अग्नि बन गयी है और चन्द्रमा सूर्य (के समान उष्ण) हो गया है। शरीरमे संताप उत्पन्न होनेके कारण घरोका आनन्द छिप गया (नष्ट हो गया) है; (फिर भी) बार-बार प्रेमके कारण रोमाञ्च होता है और आँसू ढुलकने लगते है। (मुझे) उन दिनोकी याद आती है, जब वे (मोहन) पाँवो पड़ते थे (और मनाते थे)। (अब) श्यामसुन्दरने वनमे (उन अनेको) लीलाएँ करनेकी सुधि क्यों विस्मृत कर दी ?

राग देसकार

(२५३)

सबै रितु औरै लागति आहि।
सुनि, सखि ! वा व्रजराज बिना सब फीकौ लागत चाहि॥

---

* शरद् ऋतुमे चन्द्रमाकी किरणोसे शीतल पत्तोपर पड़ा ओस सर्प चाटते है—ऐसी जनश्रुति है।

वे घन देखि नैन बरसत हैं, पावस गए सिरात।
सरद सनेह सँचै सरिता उर, मारग ह्वै जल जात॥
हिम हिमकर देखैं उपजत अति, निसा रहति इहिं जोग।
सिसिर बिकल काँपत जु कमल-उर, सुमिरि स्याम-रस-भोग॥
निरखि बसंत विरह-बेली तन, वे सुख, दुख ह्वै फूलत।
ग्रीषम काम निमिष छाँड़त नहिं, देह-दसा सब भूलत॥
षट् रितु ह्वै इक ठाम कियौ तन, उठै त्रिदोप जुरै।
सूर अवधि उपचार आज लौं, राखे प्रान मुरै॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) सभी ऋतुएँ अब दूसरी ही भाँतिकी लगती हैं। सखी ! सुन, उन श्रीव्रजराजके बिना सब उमंगें फीकी लगती हैं। वर्षा ऋतुके मेघोंको देखकर नेत्र वर्षा करने (अश्रु गिराने) लगते हैं और (उसके) बीतनेपर (वे) शीतल होते हैं; (क्योंकि श्यामसुन्दरके) प्रेमकी जो नदी हृदयमें एकत्र है, वह शरद् ऋतुमे नेत्रोंके मार्गसे जल बनकर बहने लगा है। (हेमन्तकी) शीतलता और चन्द्रमाको देखकर (तो) यह (वेदना) और (भी) उत्पन्न होती (बढ़ जाती) है। मै रात्रिमे इसी प्रकार व्याकुल रहती हूँ तथा शिशिर ऋतुमे श्यामसुन्दरके साथ (किये गये उन) आनन्दोप-भोगोंका स्मरण करके हृदय व्याकुल होकर कमलके समान काँपता है। वसन्त ऋतुको देखकर शरीरमे (जो) वियोगकी लता पनप रही है, उसमें वे (पहिलेके) सुख (अब) दुःख बनकर फूलने लगे हैं और ग्रीष्म ऋतुमें कामदेव एक क्षणको भी छोड़ता नही, (जिससे) शरीरकी सब सुधि भूल जाती है। इस प्रकार छहों ऋतुओंने एकत्र होकर मेरे शरीरमें ही स्थान बना लिया है और त्रिदोष (वात, कफ, पित्तके समान वियोग, वेदना एवं काम) का ज्वर उत्पन्न कर दिया है। अस्तु, अबतक तो अवधि (मोहनके लौटनेके समय) रूपी उपचार (दवा) से किसी प्रकार प्राणोंको भुलावा देकर (बहकाकर) रोक रखा है (पर आगे क्या होगा, समझमे नही आता)।

राग नट

(२५४)

मै सब लिखि सोभा जु बनाई।
सजल जलद तन, बसन कनक-रुचि, उर बहु दाम सुराई॥
उन्नत कँध, कटि खीन, बिसद भुज, अंग-अंग सुखदाई।
सुभग कपोल, नासिका की छबि, अलक हिलत दुति पाई॥
जानति ही यह लोल लेख करि, ऐसैंहिं दिन बिरमाई।
सूरदास मृदु वचन स्रवन कौ अति आतुर अकुलाई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मैंने चित्रमे अङ्कित करके (श्यामसुन्दरकी) सब शोभा सजायी, जल-भरे मेघके समान शरीर तथा स्वर्णकी-सी कान्तिवाला वस्त्र बनाकर (उनके) वक्षःस्थलपर बहुत-सी मालाएँ लटकती बनायी। उन्नत (चौड़े) कंधे, पतली कटि, विशाल भुजाएँ और अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुखदायक बनाये। (अरी, क्या कहूँ, उस समय उनके) मनोहर कपोल, शोभा देती हुई नासिका और हिलती हुई अलकें (कैसी) छटा दे रही थी। जानती थी कि यह चञ्चल लेखनीद्वारा बनाया गया (चित्र) है, (फिर भी मैंने उसे ही निरख-निरखकर किसी प्रकार) दिन बिताया; किंतु (श्यामसुन्दरके) कोमल वचन कानोंसे सुननेके लिये (मैं) अत्यन्त आतुर (उत्सुक) होकर व्याकुल हो उठी।

(२५५)

मुरली कौन बजावै आज।
वे अक्रूर क्रूर करनी करि, लै जु गए ब्रजराज॥
कंस, केसि, मुष्टिक संहारयौ, कियौ सुरन कौ काज।
उग्रसेन राजा करि थापे, सबहिन के सिरताज॥
कृष्नहि छाँड़ि नंद गृह आए, क्यौंऽब जिऐं उन बाज।
सूरज-प्रभु बिष-मूरि खाइहैं, यहै हमारौ साज॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) आज (वह) वंशी कौन बजाये ? वे अक्रूर, जो क्रूर—निष्ठुर नहीं थे, क्रूर (निष्ठुर) कर्म करके (यहाँसे) व्रजराजको ले गये । (मथुरा जाकर श्रीकृष्णने) कंस, केशी और मुष्टिकका वध किया और (इस प्रकार) देवताओंका कार्य सिद्ध किया तथा उग्रसेनको राजा बनाकर सब (राजाओं) के मुकुटरूपसे (सर्वश्रेष्ठ करके) स्थापित कर दिया । नन्दजी (भी) श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर घर आ गये, (पर) हम उनके बिना (अब) कैसे जीवित रहें ? अब हमारे लिये तो यही साज (उपाय) है कि अपने स्वामीके लिये हम कोई विषैली जड़ी खा लें ।

राग सारंग

(२५१)

हरि बिनु मुरली कौन बजावै ।
सुंदर स्याम कमल-लोचन बिनु, को मधुरे सुर गावै ॥
ये दोउ स्रवन सुधा-रस पोपे, को ब्रज फेरि बसावै ।
ऐसो निठुर कियौ हरि जू मन, पंथी पंथ न आवै ॥
छाँड़ी सुरति नंद-जसुमति की, हमरी कौन चलावै ।
सूर-स्याम कौं प्रीति पाछिली को अब सुरति करावै ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी ! अब) मोहनके बिना वंशी कौन बजाये और उन कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दरके बिना मधुर स्वरसे कौन गाये । ये दोनों कान तो उस अमृत-रससे पुष्ट हुए हैं, अब व्रजको फिर (इस प्रकार) कौन बसाये (व्रज तो मोहनके बिना उजड़ गया)। अरी, श्यामसुन्दरने तो अपना मन ऐसा निष्ठुर बना लिया है कि इस मार्गसे (उनका संदेश लेकर) कोई यात्री भी नहीं आता । जब उन्होंने (बाबा) नन्द और (मैया) यशोदाकी सुधि लेना ही छोड़ दिया, तब हमारी कौन चर्चा—क्या बात है । अब श्यामसुन्दरको (हमारी) पिछली प्रीतिका स्मरण कौन कराये ?

(२५७)

माई ! वहुरि न वाजी वेन ।
को जैहै मेरे खिरक दुहावन गाइन, रही फिरि ऐंन ॥
सूनो घर, सूनी सुख-सिज्जा, जहाँ करत सुख-सैन ।
सूने ग्वाल-वाल सव गोपी, नहीं कहूँ उन चैन ॥
ब्रज की मनि, गोकुल कौ नायक, कियौ मधुपुरी गैन ।
सूरदास प्रभु के दरसन बिनु तृप्ति न मानत नैन ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! (श्यामसुन्दरके ब्रजसे प्रधारनेके वाद) वंशी फिर नहीं वजी । अब मेरी गोशालामे गायें दुहवाने कौन जायगा ? वे (गायें) तो (अपने) स्थानोपर घूम रही हैं (खड़ी नही होती) । जहाँ (मोहन) सुखपूर्वक सोते थे, वह घर और शय्या सूनी पड़ी है तथा सव गोपवालक और गोपियाँ (भी) सूनी (उदास) हो रही है, उन्हें कही शान्ति नहीं है । (ओह !) ब्रजकी मणि (एवं) गोकुलके नायक श्यामसुन्दर मथुरा चले गये, अब उन स्वामीके दर्शनके विना ये मेरे नेत्र तृप्ति नही मानते (वेचैन रहते) है ।

राग कान्हरौ

(२५८)

छूटि गई ससि-सीतलताई ।
मनु मोहि जारि भसम कियौ चाहत, साजत सोइ कलंक तन काई ॥
याही तें स्याम अकास देखियत, मानौं धूम रह्यौ लपटाई ।
ता ऊपर दै देति किरनि उर, उडुगन-कनी उचटि इत आई ॥
राहु-केतु दोउ जोरि एक करि, नींद समै जुरि आवै माई ।
ग्रसे तें न पचि जात तापमय, कहत सूर बिरहिनि दुखदाई ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) चन्द्रमाकी शीतलता दूर हो गयी है, मानो वह मुझे जलाकर भस्म कर देना चाहता

है। वही (क्रोधरूपी) कालिमाका कलङ्क अपने शरीरमें सजा रहा है। इसीसे आकाश भी काला दिखायी पड़ता है, मानो धुआँ उससे लिपटा हुआ हो। इतनेपर भी (वह) किरणोंके द्वारा हमारे हृदयमें दावाग्नि लगाता है, जिसकी चिनगारियाँ ही तारागणोंके रूपमे उछलकर आकाशमे छा गयी हैं। सखी ! निद्राके समय (तो) राहु और केतु दोनों जुड़ (एक हो) कर एक साथ आते हैं; किंतु (उनके द्वारा) निगल लिये जानेपर भी यह तापमय (उष्ण चन्द्रमा उनके पेटमे) पच नही पाता (निद्राके समय अदृश्य होनेके बाद जागनेपर फिर दीखने लगता है) ! यह (तो) वियोगिनियोके लिये दुःख देनेवाला कहा ही जाता है।

राग केदारो

(२५९)

यह ससि, सीतल काहें कहियत।
मीनकेत अंबुज आनंदित, तातैं ता हित लहियत ॥
एक कलंक मिट्यौ नहिं अजहूँ, मनौं दूसरौ चहियत।
याही दुख तैं घटत-बढ़त नित, निसा नींद रिपु गहियत ॥
बिरहिनि अरु कमलिनि त्रासत कहुँ, अपकारी रथ नहियत।
सूरदास-प्रभु मधुवन गौने, तौ इतनौ दुख सहियत ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) यह चन्द्रमा किस कारणसे शीतल कहा जाता है ? (कुछ समझमें नही आता।) कामदेव और कुमुदिनी इससे प्रसन्न होती हैं, इसलिये उनका प्रेम यह पाता है। किंतु इसका एक कलङ्क तो अभीतक मिटा नही और मानो दूसरा (कलङ्क) इसे और चाहिये; (कहीं) इसी दुःखसे (तो यह) नित्य (नही) घटता-बढता (अथवा) रात्रिमें निद्रारूपी शत्रु इसे पकड़कर अदृश्य कर देता है ? यह वियोगिनियों और कमलिनियोंको पीडा देता है, (और इस प्रकार) अपकार (बुराई)-रूपी रथ जोड़कर (उसपर) बैठा है। हमारे स्वामी मथुरा चले गये, इसीसे इतना दुःख हम सहन कर रही हैं।

(२६०)

सखि ! कर धनु लै चंदहि मारि ।
तब तो पै कछुवै न सरैहै, जब अति जुर जैहै तन जारि ॥
उठि हरुवाइ जाइ मंदिर चढ़ि, ससि सनमुख दरपन विस्तारि ।
ऐसी भाँति बुलाइ मुकुर मैं, अति बल खंड-खंड करि डारि ॥
सोई अवधि निकट आई है, चलत तोहि जो दई मुरारि ।
सूरदास बिरहिनि यौं तलफति, जैसैं मीन दीन बिनु वारि ॥

(एक गोपी कह रही है—) सखी ! हाथमें धनुष लेकर चन्द्रमाको मार दे; नहीं तो उस समय तुझसे कुछ करते नहीं बनेगा, जब यह अपनी तीव्र ज्वालासे मेरे शरीरको जलाकर चला जायगा । अरी, जल्दीसे उठकर भवनके ऊपर चढ जा और चन्द्रमाके सम्मुख दर्पण रख दे और इस प्रकार उसे दर्पणमें बुलाकर अत्यन्त बलपूर्वक पटककर (दर्पणसहित उसे) टुकड़े-टुकड़े कर डाल । चलते समय मुरारीने (लौटनेका) जो समय तुझे दिया था, वही समय पास आ गया है (अतः उनके आनेतक मुझे बचा ले) । सूरदासजी कहते हैं कि (वह) वियोगिनी इस प्रकार तड़फड़ा रही है, जैसे जलके बिना मछली दुखी हो ।

राग सारंग

(२६१)

हर कौ तिलक हरि बिनु दहत ।
यै कहियत उडुराज अमृत-मय, तजि सुभाव सो मोहि निबहत ॥
कत-रथ थकित भयौ पच्छिम दिसि, राहु गहन लौ मोहि गहत ।
छपौ न छीन होत, सुनि, सजनी ! भूमि-भवन-रिपु कहाँ रहत ॥
सीतल सिंधु जनम जा केरौ, तरनि-तेज होइ कह धौं चहत ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु प्रान तजति, यह, नाहिं सहत ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दरके

बिना यह शंकरका तिलक (चन्द्रमा) मुझे जला रहा है। वह चन्द्रमा कहा तो अमृतमय (शीतल) जाता है; किन्तु अपना स्वभाव छोड़कर (वह) मेरे साथ (यह कैसा जलानेका) व्यवहार कर रहा है। इसका रथ पश्चिम दिशामे क्यों रुक गया है (यह शीघ्र अस्त क्यों नही होता) ? क्या राहु जैसे इसे ग्रस लेता है, वैसे ही यह मुझे ग्रस लेना (अपना ग्रास बना लेना) चाहता है ? सखी ! सुन, रात्रि भी घट नहीं रही है, (आज) भूमि-भवन-रिपु मुर्गा (भी) कहाँ रह गया, जो बोलता नहीं (और इस प्रकार सबेरा नही हो पाता)। जिस (चन्द्रमा) का जन्म शीतल समुद्रसे हुआ है, वह सूर्यके समान प्रखर होकर पता नही क्या (करना) चाहता है। स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके बिना हम प्राण त्याग देंगी। अब यह (कष्ट) सहा नही जाता।*

राग मारू

(२६२)

या बिनु होत कहा ह्याँ सूनौ।
लै किन्ह प्रगट कियौ प्राची दिसि, बिरहिनि कौं दुख दूनौ ॥
सब निरदै सुर, असुर, सैल, सखि, सायर, सर्प समेत।
काहु न कृपा करी इतननि में, तिय-तन बन दव देत ॥
धन्य कुहू, बरषा रितु, तमचुर, अरु कमलनि कौ हेत।
जुग-जुग जीवै जरा बापुरी, मिलैं राहु औ केत ॥

* भूमि-भवन-रिपु (भूमि-भवन–सर्प, उनके शत्रु)–अरुण अथवा भूमि-भवन–कीड़े, उनका शत्रु—मुर्गा। यह पद—मूलरूपसे—सभा (काशी), नवल कि० प्रे० लखनऊ (मुद्रित) पो० हनुमानप्रसाद तथा भरतपुरस्टेटको प्रतिके अतिरिक्त बालकृष्ण और सरदार कविकृत सटीक सूरके कूटोमे आया है। दोनोमे 'भूमि-भवन-रिपु'का अर्थ भिन्न है, अतः बालकृष्णकृत अर्थ मुर्गा ही यहाँ उपयुक्त है।

चितै चंद तन सुरति स्याम की विकल भई ब्रज-बाल।
सूरदास अजहूँ इहिं औसर काहे न मिलत गुपाल॥

(एक गोपी कह रही है—'सखी !) इस (चन्द्रमा) के बिना यहाँ क्या सूना हुआ जाता था। इसे लेकर पूर्व दिशामें किसने प्रकट किया जो यह वियोगिनियोके दुःखको द्विगुणित करता रहता है। सखी ! देवता, असुर, पर्वत, सागर और सर्पसहित सब निर्दय है। इनमेंसे इतनी कृपा तो किसीने नही की, जैसी स्त्रियोके शरीररूपी वनमें यह दावाग्नि लगा रहा है। अमावस्याकी रात्रि, वर्षा ऋतु, मुर्गे और कमलोका प्रेम धन्य है (जो इस चन्द्रमासे प्रीति नही रखते); बेचारी जरा (एक राक्षसी) युग-युग जीये (जो) राहु तथा केतुको परस्पर मिला देती है।' सूरदासजी कहते हैं—(वे) ब्रज-बालाएँ चन्द्रमाकी ओर देखकर तथा श्यामसुन्दरका स्मरण करके व्याकुल हो गयी। हे गोपाल ! आज इस अवसरपर भी (इनसे) क्यो नही मिलते ?

(२६३)

सिंधु-मथत काहैं बिधु काढ़ौ।
गिरि अरु नाग, असुर-सुर मिलि कै, गरजि-गरजि किन्ह बाढ़ौ॥
टोटौ हतौ रतन तेरह तौ, कियौ चौदहौ पूरौ।
कला सौंपि दीन्ही अमरनि क्यौं, बिरहिनि पै भयौ सूरौ॥
उपजत बैर जदपि काहू सौं, निकट आइ करि मारै।
यह नभ पै भूपर क्यौ चितकै, उहही तै अरि जारै॥
दोष कहा सुनि कै बड़वानल, अंसु जु बिष-से भाई।
क्रोधी ईस सीस बैठारयौ, तातैं यह मति पाई॥
मथुरा कौ प्रभु मोहन नागर, किए सगुन जग जातैं।
ताकी प्रिया सूर निसि-बासर, सहति बिरह-दुख गातैं॥

कोई गोपी कह रही है—'सखी !) समुद्र-मन्थन करते समय चन्द्रमा-

को क्यों निकाला ? पर्वत (मन्दराचल), नाग (वासुकि), दैत्यों और देवताओंने मिलकर और बार-बार गर्जना करते हुए इस चन्द्रमाको बढ़ा दिया। क्या तेरह रत्न निकलनेपर भी कुछ कमी रह गयी थी, जो (इसे निकालकर) चौदह पूरे किये गये। इससे अपनी (अमृतमयी) कलाएँ तो देवताओंको दे दी और वियोगिनियोंके लिये शूरमा बन गया। यदि (किसीकी) किसीसे शत्रुता हो जाती है तो वह पास आकर मारता है; किंतु यह न जाने क्यों आकाशपर रहकर वहीसे संकल्प करके पृथ्वीपरके शत्रुको जलाता है। इसमें इसका दोष भी क्या है, सुनो ! यह तो वड़वानलका अंश है और हलाहल विष-जैसे इसके भाई हैं; फिर परम क्रोधी शंकरके मस्तकपर इसे बैठा दिया गया। इसलिये इसने ऐसी (दूसरोंको पीड़ा देनेवाली) वृद्धि पायी है।' सूरदासजी कहते हैं (कितने आश्चर्यकी बात है कि) जिन मथुराके स्वामी नटनागर मोहनसे यह सगुणात्मक सम्पूर्ण जगत् प्रकट हुआ है, (आज) उन्हींकी प्रियतमाएँ शरीरपर रात-दिन वियोगके कष्ट सह रही हैं।

(२६४)

दूरि करहि बीना कर धरिबौ।
रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिंन होत चंद्र कौ ढरिबौ ॥
बीतै जाहि, सोइ पै जानै, कठिन सु प्रेम-फाँस कौ परिबौ।
प्राननाथ संगहि तैं बिछुरे, रहत न नैन नीर कौ झरिबौ ॥
सीतल चंद अगिन-सम लागत, कहिए, धीर कौन बिधि धरिबौ।
सूर सु कमलनैन के बिछुरें, झूठौ सब जतननि कौ करिबौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) हाथमें (अब) वीणा लेना छोड़ दे (उसे त्याग दे); (क्योंकि उसके बजनेसे चन्द्रमाका) रथ (इस भाँति) थक (चलते-चलते रुक) गया है, मानो

(उसके वाहन) मृग मोहित हो गये हों और इस कारण (उस) चन्द्रका ढलना (अस्त होना) नही हो रहा हो। प्रेमके फंदेमें पडना बड़ा दारुण होता है; जिसपर यह बीतती है, वही (इसकी पीड़ा) जानता है। जिसके प्राणनाथ वियुक्त हो जाते हैं, उसके नेत्रोसे आँसू गिरना नहीं रुकता। उसे शीतल चन्द्रमा अग्निके समान (दाहक) लगता है। (फिर) बतलाओ तो किस प्रकार धैर्य धारण किया जाय। उन सुन्दर कमल-लोचनका वियोग हो जानेपर (सुखके) सब उपायोंका करना झूठा (व्यर्थ) है।

राग केदारी

(२३५)

विधु वैरी सिर पै बसै, निसि नींद न परई।
हरि सुरभानु सुभट बिना, इहि को बस करई?
गगन सिखर उतरै-चढ़ै, गरबहि जिय धरई।
किरनि-सकति भुज भरि हनै, उर तै न निकरई॥
उडु-परिवार पिसुन-सभा अपजसहि न डरई।
सोइ परपंच करै सखी, अबला ज्यौं बरई॥
घटै-बढ़ै इहि पाप तैं, कालिमा न टरई।
सूरदास समुझावहीं, त्यौं-त्यौं जिय खरई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) इस शत्रु चन्द्रमाके सिरपर निवास करनेके कारण (मुझे) रात्रिमें नीद नही आती। श्यामसुन्दर या राहुके बिना इस (चन्द्रमा) को कौन वशमें कर सकता है? यह आकाशरूपी शिखरपरसे उतरने-चढनेके कारण बडा गर्वीला हो गया है, अतः अपनी किरणरूपी शक्तिको भुजाके पूरे बलसे (ऐसी) मारता है, (जो) हृदयमे (चुभकर) निकलती नही। (इसका) तारागणोका परिवार तो मानो परनिन्दकोकी सभा है, जिसमे बैठा यह

अपकीर्तिसे डरता नही। सखी ! यह वही प्रपञ्च किया करता है, जिससे स्त्रियाँ जलती रहे। इसी पापसे घटता-बढता रहता है और इसकी कालिमा दूर नही होती। जैसे-जैसे (हम) इसे समझाती है, वैसे-वैसे यह चित्तमे और क्रोध करता है।

राग मलार

(२६६)

कोउ, माई ! बरजै री या चंदहि।
अतिहीं क्रोध करत है हम पै, कुमुदिनि-कुल आनंदहि॥
कहाँ कहौ बरषा-रबि-तमचुर, कमल बलाहल कारे।
चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे॥
निंदति सैल उदधि पंनग कौं, श्रीपति कमठ कठोरहि।
देति असीस जरा देवी कौं, राहु-केतु किन जोरहि॥
ज्यौं जल-हीन मीन तन तलफति, ऐसी गति ब्रजबालहि।
सूरदास अब आनि मिलावहु, मोहन मदन-गुपालहि॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) 'सखी ! कोई इस चन्द्रमाको मना तो करो, यह हमपर तो अत्यन्त क्रोध करता है और कुमुदिनीके कुलको आनन्द देता है। क्या कहूँ, वर्षा, सूर्य, मुर्गे, कमल और काले बादल—सभीको बुलाकर (हार गयी—कोई नही आया और यह) चञ्चल चलता ही नही, अपने रथको स्थिर बनाये वियोगिनियोके शरीरको जला रहा है।' वह (गोपी) पर्वत (मन्दराचल), क्षीरसागर, वासुकि नाग, भगवान् विष्णु और कठोर कच्छपकी (जिनके सहयोगसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ) निन्दा करती है। जरा देवीको आशीर्वाद देती (और प्रार्थना करती) है कि वे राहु-केतुको क्यों नही जोड़ देती (जिससे वह इसे ग्रस ले)। जैसे पानीसे रहित मछलियाँ तड़पती है, ऐसी दशा व्रजनारियोकी हो रही है। इसलिये वे कहती है कि 'अब तो (मन) मोहनेवाले मदनगोपालको लाकर मिला दो।'

राग विहागरो

(२६७)

माई, मोकौं चंद लग्यौ दुख दैन।
कहँ वे स्याम, कहाँ वे बतियाँ, कहँ वे सुख की रैन॥
तारे गनत-गनत हौं हारी, टपकन लागे नैन।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु बिरहिनि कौं नहिं चैन॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी! मुझे चन्द्रमा दुख देने लगा है। वे श्यामसुन्दर कहाँ है, (उनके मिलनकी) वे बातें कहाँ है और वे सुखद रात्रियाँ कहाँ है। मै तारे गिनते-गिनते थक गयी, नेत्रोसे अश्रु टपकने लगे। स्वामी! तुम्हारे दर्शनके बिना (मुझ) वियोगिनीको शान्ति नही है।

राग मलार

(२६८)

अब हरि कौन सौं रति जोरी।
काके भए, कौन के ह्वैहै, बँधे कौन की डोरी॥
त्रेता जुग इक पतिनी-व्रत कियौ, सोऊ बिलपत छोरी।
सूपनखा बन ब्याहन आई, नाक निपाति बहोरी॥
पय पीवत जिन्ह हती पूतना, स्रुति-मरजादा फोरी।
बहुतै प्रीति बढ़ाइ महरि सौं, छिनक माँझ दै तोरी॥
आरजपंथ छिड़ाइ गोपिकनि, अपने स्वारथ भोरी।
सूरदास करि काज आपनौ, गुडी-डोर ज्यौं तोरी॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी! सच-सच बता,) श्यामसुन्दरने अब किससे प्रीति जोडी है? वे भला, किसके हुए है, (आगे) किसके होगे और किसके प्रेमकी रस्सीमे बँधे है। त्रेतायुगमे उन्होने एकपत्नीव्रत किया; पर उस (पत्नी) को भी विलाप करती छोड़

दिया तथा शूर्पणखा वनमें उनसे विवाह करने आयी तो उसकी नाक काटकर उसे लौटा दिया। जिन्होंने वेदोंकी मर्यादा तोड़कर दूध पीते हुए (धायके समान) पूतनाको मार दिया और व्रजरानी यशोदाजीसे बहुत ही प्रीति बढ़ाकर उसे भी एक क्षणमें तोड़ दिया। गोपियोंको आर्यपथ (कुलीनताके मार्ग) से हटाकर अपने स्वार्थके लिये भुलावा दिया और (उनसे) अपना काम पूरा करके पतंगकी डोरीके समान (उनके प्रेमकी डोरी भी) तोड दी।

(२६९)

अब या तनहि राखि का कीजै।
सुनि री सखी, स्यामसुंदर बिनु, बाँटि बिषम बिष पीजै॥
कै गिरिऐ गिरि चढ़ि, सुनि, सजनी, सीस संकरहि दीजै।
कै दहिऐ दारुन दावानल, जाइ जमुन धँसि लीजै॥
दुसह बियोग बिरह माधौ के, को दिन-ही-दिन छीजै।
सूर स्याम प्रीतम बिन राधे सोचि-सोचि कर मींजै॥

(कोई गोपी कह रही है—'सखी !) अब इस शरीरको रखकर क्या करूँगी ? अरी सुन ! श्यामसुन्दरके बिना अब हम परस्पर बाँटकर क्यों न दारुण विष पी लें। अथवा सखी ! सुन, पर्वतपर चढ़कर भृगु-पतन कर लें, (रावणकी तरह) शंकरजीको अपने मस्तक (काटकर) अर्पित कर दें, अथवा भयानक दावाग्निमें जल जायँ या फिर जाकर यमुनामें कूद पड़ें। माधवके असह्य वियोगरूप विरहकी इस पीड़ामें कौन दिनों-दिन क्षीण होता रहे।' सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार श्रीराधा अपने प्रियतम श्यामसुन्दरका बार-बार चिन्तन करती हुई हाथ मलती (पश्चात्ताप करती) हैं।

राग भोपाल

(२७०)

हमहि कहा,सखि,तन के जतन की, अब या जसहि मनोहर लीजै।
सकल त्रास सुख याही बपु लौं, छाँड़ि दिए ते कछू न छीजै॥

कुसुमित सेज कुसुम-सर-सर बर, हरि कैं प्रान प्रानपति जीजै।
विरह-थाह जदुनाथ सबनि दै, निधरक सकल मनोरथ कीजै॥
सबनि कहति मन रीस रिसाऐं नहिंन बसाइ, प्रान तजि दीजै।
सूर सुपति सौं चरचि चतुरई तुम्ह यह जाइ बधाई लीजै॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) सखी ! इस शरीरको रखनेके प्रयत्नसे हमे क्या लाभ ? अब (हमारी मृत्युके) इस सुयशको वे सुन्दर (श्याम) ही लें। सभी यातनाएँ और सुख इसी शरीरतक हैं और इसे छोड़ देनेसे (हमारी) कुछ भी हानि होती नहीं। पुष्पोंकी शय्या तो कामदेवके श्रेष्ठ (तीखे) बाणके समान लगती है, अतः हमारे प्राण हरण करके वे हमारे प्राणनाथ जीवित रहें। हम सबोंको अथाह वियोग देकर स्वयं संकोचहीन बने श्रीयदुनाथ अपनी सब अभिलाषाएँ बिना किसी भयके पूरी कर लें। सबसे कहती हूँ कि क्रोध करके मनमें रुष्ट होनेसे कुछ काम नही चलेगा। अतः अच्छा है, प्राण त्याग कर दें। सखी ! उन उत्तम स्वामीसे इस (हमारी प्राण-त्यागकी) चतुरताकी चर्चा करके तुम उनके पास जाकर बधाई ले लेना। (हमारे प्राण-त्यागके बाद उन्हे जाकर यह समाचार सुना देना)।

राग केदारो

(२७१)

जियहिं क्यौं कमलिनि काँदौ-हीन।
जिन सौं प्रीति हुती री सजनी, तिनहुँ बिछुरि दुख-दीन॥
सागर-कूल मीन तरफति है, हुलस होत जल जीन।
स्याम-वारि-विधि लई बिरद तजि, हम जु मरतिं लव-लीन॥
ससि-चंदन औ अंभ छाँड़ि गुन, बपु जु दहत मिलि तीन।
सूरदास-प्रभु मौन सबै ब्रज, बिनु जंत्री ज्यौं बीन॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) भला कमलिनी

कीचड़से (जलसे) रहित होकर कैसे जीवित रह सकती है। अरी सखी ! जिनसे प्रीति थी, उन्होंने भी बिछुडकर (मुझे अत्यन्त) दुःख ही दिया। (जिस भाँति) समुद्रके किनारे मछली तड़पती है, किंतु जलके हृदयमें (उससे) मिलनेका उल्लास नहीं होता, उसी प्रकार श्यामसुन्दरने भी प्रेमका व्रत छोड़कर (उस) जल (सागर) की विधि अपना ली और हम उनके प्रेममें निमग्न हो मर रही हैं। चन्द्रमा, चन्दन और जल—ये तीनों अपना गुण (शीतलता) छोड़ परस्पर मिलकर मेरे शरीरको जलाते हैं। स्वामी ! (तुम्हारे बिना) सम्पूर्ण व्रज ऐसा मौन (शब्दहीन) हो रहा है जैसे बजानेवालेके बिना वीणा (मौन हो)।

राग मलार

(२७२)

ऐसौ सुनियत है द्वै माह।
इतने में सब बात समुझबी चतुर-सिरोमनि नाह ॥
आवन कह्यौ, बहुत दिन लाए, करी पाछिली गाह।
हमहि छाँड़ि, कुबिजा मन बाँध्यौ, कौन बेद की राह ॥
एतेहुँ पै संतोष न मानत, परे हमारे डाह।
सूरदास-प्रभु पूरौ दीजै, दिन दस मानी साह ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) ऐसा सुना जाता है कि इस वर्ष (एक नामके) दो महीने (पुरुषोत्तममास) हैं, हे चतुरशिरोमणि स्वामी ! इतनेमें ही सब बात समझ लेना। आपने आनेको कहा था, पर बहुत दिन लगा दिये, (यह तो) पीछेसे पकड़ना (छल) हुआ। इतना ही नहीं, हमको छोड़ आपने कुब्जामे मन लगा लिया, यह कौन-सा वैदिक मार्ग है ? इतनेपर भी संतोष नहीं, सतानेके लिये पीछे पड़ गये हो। अतः स्वामी ! अपनी बात पूरी कीजिये, दस दिन (हमने आपकी) शाख मान ली (आपकी प्रामाणिकतापर विश्वास कर लिया)।

राग सारंग

(२७३)

ऐसौ सुनियत है द्वै सावन।
वहै सूल फिरि-फिरि सालत जिय, स्याम कह्यौ हो आवन॥
तब कत प्रीति करी, अब त्यागी, अपनौ कीन्हौ पावन।
इहिं दुख, सखी! निकसि तहँ जइऐ, जहँ सुनिऐ कोउ नावँन॥
एकहिं वेर तजी मधुकर ज्यौं, लागे नेह बढ़ावन।
सूर सुरति क्यौं होति हमारी, लागी नीकी भावन॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी!) ऐसा सुना जाता है कि (इस वर्ष) दो श्रावण महीने हैं, वही वेदना बार-बार चित्तको पीड़ा देती है कि श्यामसुन्दरने सावनमे ही आनेके लिये कहा था। उन दिनो (उन्होने हमसे) प्रेम क्यो किया और (क्यों) अब छोड़ दिया। उन्होंने स्वयं ही तो हमें अपनाकर पवित्र किया था। सखी! इस दुःखसे तो (जीमे आता है कि) कहीं ऐसे स्थानपर यहाँसे निकलकर चला जाना चाहिये, जहाँ कोई (हमारा) नाम न सुन पाये। (पहिले तो वे) स्नेह बढाने लगे थे; पर अब उन्होंने हमें भ्रमरके समान एक ही वार (सर्वथा) छोड़ दिया। अब भला उन्हें हमारी स्मृति क्यों होने लगी, उन्हे तो (नगरकी) अच्छी (नारियाँ प्रिय) लगने लगी हैं।

राग कान्हरी

(२७४)

काहे कौं पिय-पियहि रटति हौ, पिय कौ प्रेम तेरौ प्रान हरैगौ।
काहे कौं लेति नैन जल भरि-भरि, नैन भरें कैसैं सूल टरैगौ॥
काहे कौ स्वास-उसास लेति हौ, वैरी बिरह कौ दवा बरैगौ।
छार सुगंध सेज पुहुपावलि, हार छुऐं हिय हार जरैगौ॥
वदन दुराइ वैठि मंदिर में, बहुरि निसापति उदय करैगौ।
सूर सखी अपने इन नैननि, चंद चितैं जनि, चंद जरैगौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई अन्य गोपी कह रही है—सखी !) बार-बार 'प्रियतम ! प्रियतम !' (कहकर) क्यों पुकारती है, (यह) प्रियतमका प्रेम तेरा प्राण ले लेगा। बार-बार नेत्रोंमें जल (अश्रु) क्यों भर लेती है, (इस प्रकार) नेत्र भर लेनेसे वेदना कैसे दूर होगी ? बार-बार दीर्घश्वास क्यों लेती है ? इससे शत्रु विरहकी दावाग्नि प्रज्वलित होगी। सुगन्ध और पुष्पोंसे सजी शय्या तथा माला छूनेसे (तो तेरा) हृदय हताश होकर उसी प्रकार जल जायगा जैसे गर्म राखको छूनेसे। अब मुख छिपाकर घरके भीतर बैठ जा; क्योंकि फिर चन्द्रमा उदय होगा। अरी सखी ! अपने इन नेत्रोंसे चन्द्रमाको मत देखना, नहीं तो चन्द्रमा जल जायगा।

(१७५)

अब हरि निपटहिं निठुर भए।
फिरि नहिं सुरति करी गोकुल की, जिहि दिन तैं मधुपुरी गए॥
कबहुँ न सुन्यौ सँदेस स्रवन हम, करत फिरत नित नेह नए।
ऐसी बधू चतुर वा पुर की, छल-बल करि मोहन रिझए॥
हम जानतिं हैं स्याम हमारे, कहा भयौ जौ अनत रए।
सूरदास हरि कछू न लागै, छंद-बंद कुबिजा सिखए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) अब श्यामसुन्दर अत्यन्त निष्ठुर हो गये हैं। जिस दिन वे मथुरा गये, तबसे फिर गोकुलका स्मरण (ही) नहीं किया। हमने कभी कानोंसे भी उनका संदेश नहीं सुना, (वे तो) नित्य नया प्रेम करते फिरते हैं। उस नगरकी बहुएँ (नायिकाएँ) ऐसी चतुर हैं कि उन्होंने छल-बल करके मोहनको रिझा लिया (मोहित कर लिया) है। हम जानती हैं कि श्यामसुन्दर हमारे हैं, क्या हो गया जो वे अन्यत्र अनुरक्त हो गये। श्यामसुन्दरका तो कोई दोष नहीं है, उन्हें यह छल-कपट कुब्जाने सिखाया है।

राग मलार

(२७६)

हौं कछु बोलति नाहीं लाजन।
एक दाउँ सारिबौ पै, मरिबौ नंद-नँदन के काजन॥
तजि ब्रज-बाल, आपनौ गोकुल, अब भाए सुख राजन।
कागद लिखि पतियौ नहिं पठवत, पायौ जिय कौ साजन॥
जे गृह देखि परम सुख होतौ, बिनु गोपाल भय-भाजन।
कासौं कहौ, सुनै को यह दुख, दूरि स्याम-सौ साजन॥
कारी घटा देखि धुरवा जनु, बिरह लयौ कर ताजन।
सूर स्याम नागर बिनु अब यह कौन सहै सिर गाजन॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) मैं लज्जाके मारे कुछ बोलती नही; पर एक दाव (अवश्य) लगाऊँगी (एक बार अन्तिम प्रयत्न करूँगी), चाहे नन्दनन्दनके लिये मर ही जाऊँ। व्रजनारियों और अपने गोकुलको छोड़कर उन्हे राज्य-सुख सुन्दर लगने लगे है। (और तो और, वे) कागजपर लिखकर पत्र भी नही भेजते, अपने मनकी मौज (जो उन्होने) पा ली है। जिन घरोको देखकर हमें आनन्द होता था, वे ही गोपालके बिना भयके पात्र (भयानक) हो गये। किससे कहूँ, मेरा यह दुःख कौन सुने, श्यामसुन्दर-जैसे (मनकी सुननेवाले) प्रियतम (तो) दूर हैं। काली घटाके बादलोंको देखकर (ऐसा) लगता है, मानो वियोगने (हमे मारनेके लिये) हाथमे कोड़ा ले रखा हो। (उन) परम चतुर श्यामसुन्दरके बिना अब यह सिरपर (नित-प्रति) (वियोग-रूपी मेघ का) गरजना कौन सहे ?

राग गौरी

(२७७)

वहु दिन ऐसौइ हौ री।
ह्वै जाते मेरे आँगन मोहन, यह बिरियाँ सो री॥

बाल-दसा की प्रीति निरंतर, परी रहति ही ढौरी।
राधा-राधा नंद-नँदन मुख लागि रहति यह लौ री ॥
बेनु पानि गहि मोहि सिखावत, मोहन गावत गौरी।
सूरजदास स्याम-सारँग तजि, वह सुख बहुरि न भौ री ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कह रही हैं—सखो !) वह दिन भी ऐसा ही था; यह समय (भी) वही है, जब मोहन मेरे आँगन (द्वारपर) से होकर जाते थे। बचपनसे प्रेम होनेके कारण निरन्तर (सर्वदा उन्हीकी) धुन लगी रहती थी, (उस समय) नन्दनन्दनके मुखसे भी 'राधा, राधा' यही रट लगी रहती थी। वे मोहन हाथमे वंशी लेकर मुझे (बजाना) सिखलाते थे और स्वयं गौरी राग गाते थे। उन प्यारे श्यामसुन्दररूपी चन्द्रमाके छोड़कर चले जानेके बाद वह आनन्द फिर कभी नही मिला।

(२७८)

माधौ, दरसन की अवसेरि।
लै जु गए मन संग आपने, बहुरि न दीन्हौ फेरि ॥
तुम्हरे बिना भवन नहिं भावै, मन राखैं अवढेरि।
कमलिनि हतीं हेम ज्यौं हम, अति कासौं कहैं दुख टेरि ॥
तुम्ह बिछुरें सुख कबहुँ न पायौ, सब जग देखति हेरि।
सूरदास सब नातौ ब्रज कौ आए नंद निबेरि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है–) माधव ! तुम्हारे दर्शनके लिये हम व्यग्र रहती हैं। तुम अपने साथ जो हमारा मन ले गये, उसे फिर तुमने [illegible] ी। तुम्हारे बिना हमें घर अच्छा नही लगता फिर भी [illegible] म फँसाये रखती हैं। जिस भाँति [illegible] पाला नष्ट [illegible] भाँति आपने हमारे प्रति किया, (महान्) [illegible] कहे। सारा संसार [illegible]

लिया; फिर भी तुम्हारा वियोग होनेके बादसे हमने सुख कभी नहीं पाया। (क्या श्यामसुन्दरके साथ) व्रजका सारा सम्बन्ध नन्दजी सदाके लिये निबटा (तोड़) आये।

राग आसावरी

(२७९)

सखि री, बिरह यह बिपरीति।
बिरहिनी ब्रज-बास क्यौं करै, पावसहि परतीति ॥
नित्य नवला साजि नव-सत, अरु सु भावक राखि।
नाहिं जान्यौ नृपति प्रानन-पति, कहा रुचि आँखि ॥
सूरदास गुपाल की सब अवधि गई बितीति।
बहुरि कब वह देखिबौ सुख, यह तुम्हारी नीति ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी! इस वियोगकी बड़ी उलटी दशा है। इस वर्षाऋतुका (कि इसी समय श्यामसुन्दर अवश्य आ जायँगे) विश्वास कर (हम) वियोगिनियाँ व्रजमें कैसे निवास करें? नवयुवतियाँ नित्य सोलहो शृङ्गार किये अपनेको अत्यन्त सुरुचिपूर्ण रखती हैं; क्योंकि वे नहीं जानती कि उनके राजा—प्राणनाथके नेत्रोंको क्या प्रिय लगे। गोपालकी (लौटकर आनेकी) सब अवधियाँ बीत गयी, (हम) फिर कब उस सुखको देखेंगी? यह तुम्हारी नीति (उचित) नहीं।

राग बिलावल

(२८०)

तउ गुपाल गोकुल के वासी।
ऐसी बातैं बहुतै कहि-कहि, लोग करत हैं हाँसी ॥
मथि-माथि सिंधु सुरनि कौं पोषे, संभु भए बिष-आसी।
इन्हि हति कंस राज औरहि दै, चाहि लई इक दासी ॥
बिसरी हमैं बिरह-दुख अपनो. चली चाल ऑरासी।
ऐसी बिहँगम प्रीति न देखी, प्रगट न परखी-खासी ॥

आरज-पंथ छुड़ाइ गोपिका कुल-मरजादा नासी।
आजु करत सुख-राज सूर-प्रभु हमैं देत दुख-गाँसी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे कोई गोपी कह रही है—'सखी ! कैसे भी है) फिर भी गोपाल गोकुलके निवासी हैं—लोग ऐसी बातें अनेकों बार कहकर हँसी उड़ाते हैं। जैसे (नारायणने) समुद्र-मन्थन करके (अमृत पिलाकर) देवताओको पुष्ट किया और शंकरजीको विष-भोजन करनेवाला (हलाहल-पायी) बना दिया, इसी प्रकार इन्होने कंसको मारकर राज्य तो दूसरे (उग्रसेन) को दे दिया और स्वयं इच्छा करके एक दासी (कुब्जा) को ले लिया। (श्यामसुन्दरने मथुरा जाकर) ऐसी विचित्र चाल चली कि हमे अपना वियोग-दुःख भूल गया; ऐसी अस्थिर प्रीति तो पक्षियोमे भी नही देखी गयी और न प्रत्यक्षमें भली प्रकार परखी गयी। उन्होंने गोपियोसे कुलीनताका श्रेष्ठ मार्ग छुड़ाकर (उनके) कुलकी मर्यादा नष्ट कर दी और अब हमारे स्वामी (स्वयं) सुखपूर्वक राज्य करते है तथा हमें दु.खकी बर्छी मारते हैं।

राग सारंग

(२८१)

उन्ह ब्रजदेव नैकु चित करते।
कछु जिय आस रहति बिधि बस जौ बहुरहु फिरि-फिरि मिलते ॥
का कहिऐ, हरि सब जानत हैं, या तन की गति ऐसी।
सूरदास-प्रभु हित चित मिलियौ, नातरु हम गरिऐ-सी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—'सखी ! यदि) वे ब्रजदेव (व्रजेश) तनिक भी (हमारी ओर) ध्यान देते (हमारा कुछ खयाल करते) तो हमारे चित्तमें कुछ आशा रहती कि वे लौटेंगे अथवा बार-बार अवसर पानेपर आकर मिल जाया करेंगे। क्या कहा जाय, वे हृदयहारी (श्यामसुन्दर) सब जानते हैं कि इस शरीरको ऐसी (दुःखद),

दशा हो रही है। हे स्वामी! आपसे (हमने) हितके सहित चित्त मिला दिया (एकाकार कर दिया) है, नही तो (हम) नष्ट हुई-सी तो हैं ही।

राग बिलावल

(२८२)

स्याम बिनोदी रे मधुबनियाँ।
अब हरि गोकुल काहे कौं आवत, भावति नव-जोबनियाँ॥
वे दिन माधौ भूलि गए, जब लिऐं फिरावति कनियाँ।
अपने कर जसुमति पहिरावति तनक काँच की मनियाँ॥
दिना चारि तै पहिरन सीखे पट पीतांबर तनियाँ।
सूरदास-प्रभु वाकें बस परि, अब हरि भए चिकनियाँ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) अब मथुरामें श्यामसुन्दर आमोद-प्रमोद करनेवाले हो गये हैं। अब वे मोहन गोकुल किस लिये आने लगे, उन्हे तो (मथुराकी) नवयुवतियाँ प्रिय लगने लगी हैं। माधव वे दिन भूल गये, जब यशोदाजी उन्हे गोदमें लेकर घुमाती थी और अपने हाथोसे काँचकी छोटे दानोवाली माला पहिनाती थी। अरे, अभी चार दिनो (थोड़े समय) से (ही) तो (उन्होने) पीताम्बर ओढना और तनियाँ बाँधना सीखा है; और अब हमारे वे स्वामी उस (कुब्जा) के चक्करमे आकर छैल चिकनियाँ (सजीले) बन गये?

राग धमार

(२८३)

कहौ री! जो कहिबे की होइ।
प्राननाथ बिछुरे की बेदन और न जानै कोइ॥
तब हम अधर-सुधा-रस लै-लै, मगन रही सुख जोइ।
जो रस सिव-सनकादिक दुरलभ, सो रस बैठीं खोइ॥

कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुख सपनौ भौ सोइ।
हम सौं कठिन भए कमलापति, काहि सुनाऊँ रोइ॥
बिरह-बिथा, अंतर की बेदन सो जानै जिहि होइ।
सूरदास सुख-मूरि मनोहर लै जु गए मन गोइ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कहने लगी—) सखियो ! जो बात कहने योग्य हो (कही जा सके) वह कहो। प्राणनाथके वियोगकी पीड़ा दूसरा कोई नही जान सकता। उस (मिलनके) समय तो हम उनके अधर-सुधारसको ले (पी)-ले (-पी), उनका मुख देखकर आनन्द-मग्न रहती थी, किंतु जो आनन्द शंकरजी और सनकादि ऋषियोको भी दुर्लभ था, (आज हम) उसी आनन्दको खो बैठी है। क्या कहूँ, कुछ कहा नही जाता; वह सुख तो स्वप्न हो गया। वे लक्ष्मीनाथ हमारे प्रति निष्ठुर हो गये, किससे रोकर यह (दुःख) सुनाऊँ। यह वियोगकी पीड़ा (और) हृदयकी वेदना तो जिसे होती है, वही समझता है; (वे) आनन्दके मूल परम सुन्दर हमारा मन चुरा जो ले गये।

राग सारंग

(२८४)

बिछुरे री ! मेरे बाल-सँघाती।
निकसि न जात प्रान ए पापी, फाटत नाहिंन छाती॥
हौं अपराधिनि दही मथति ही, भरि जोबन मदमाती।
जो हौं जानति हरि कौ चलिबौ, लाज छाँड़ि सँग जाती॥
ढरकत नीर नैन भरि सुंदरि ! कछु न सोह दिन-राती।
सूरदास-प्रभु-दरसन कारन, सखियनि मिलि लिखि पाती॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—) 'सखी ! मेरे बाल्यकालके साथी (मुझसे) वियुक्त हो गये, (फिर भी) ये पापी प्राण

निकल नहीं जाते और न यह छाती ही फट जाती है। मैं ही दोषी हूँ, युवावस्थाके मदसे मतवाली हुई दही मथती रही (जाते समय मोहनसे मिली नहीं)। यदि मैं श्यामके जानेकी बात जान पाती तो लज्जा छोड़कर उनके साथ (चली) जाती।' (इस भाँति कहती हुई वह) सुन्दरी (अब तो) नेत्र भर लेती है तथा आँसू ढुलकाती रहती है, दिन-रात कुछ अच्छा नहीं लगता। (तब) स्वामीके दर्शनोंके लिये सखियोंसे मिलकर (सलाह करके) पत्र लिखा।

राग मलार

(२८५)

हरि ! परदेस बहुत दिन लाए।
कारी घटा देखि बादर की, नैन नीर भरि आए॥
बीर बटाऊ! पंथी हौ तुम्ह कौन देस तें आए।
यह पाती हमरी लै दीजो, जहाँ साँवरे छाए॥
दादुर-मोर-पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाए।
सूर स्याम गोकुल तै बिछुरे, आपन भए पराए॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपीने पत्रमें लिखा—) 'श्यामसुन्दर ! (तुमने) परदेशमें बहुत दिन लगा दिये, यहाँ बादलोंकी काली घटा देखकर मेरे नेत्रोंमें जल भर आया है (मैं रो रही हूँ)।' (यह पत्र लिखकर उसने पथिकसे कहा—) 'भैया पथिक ! तुम तो यात्री हो (यहाँ) किस देशसे आये हो ? यह हमारा पत्र ले जाकर जहाँ श्यामसुन्दर निवास करते हैं, वहाँ उन्हें देना (और कहना वहाँ) मेढक, मोर और पपीहोंने बोल-बोलकर सोये हुए मदन (काम) को जगा दिया है। श्यामसुन्दर गोकुल छोड़कर चले गये—(आज) अपने (भी) पराये (दूसरोंके) हो गये।'

(२८६)

हमारे हिरदै कुलिसहु जीत्यौ।
फटत न सखी! अजहुँ उहि आसा, बरप-दिवस परि बीत्यौ॥
हमहू समुझि परी नीकैं करि, यह असितन की रीत्यौ।
बहुरि न जीवन-मरन सौं साझौ, करी मधुप की प्रीत्यौ॥
अब तौ बात घरी पहरन की, ज्यौं उदवस की भीत्यौ।
सूर स्याम-दासी सुख सोवहु, भयौ उभै मन-चीत्यौ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी! हमारे हृदयोंने (कठोरतामें) वज्रको भी जीत लिया है। (मोहनके लौटनेकी) उस आशामे अब भी यह फटता नही, (एक-एक दिन करके) पूरा वर्ष बीत गया। अब हमारी समझमें भी यह बात भली प्रकार आ गयी कि कालोंकी यही रीति है। उन्होने फिर (हमारे) जीवन-मरणसे कोई सम्बन्ध नही रखा, भौरेकी-सी प्रीति की। खँडहरकी दीवालकी तरह हमारे नष्ट होनेकी बात तो अब घडी-प्रहरोंकी है (उसमें अधिक देर नही)। अब श्यामसुन्दर और दासी (कुब्जा) दोनो सुखपूर्वक सोयें, उन दोनोके मनकी चाही बात (कि हम नष्ट हो जायँ) हो गयी।

राग सारंग

(२८७)

एक द्यौस कुंजन में माई।
नाना कुसुन लै जु अपने कर दिए मोहि, सो सुरति न जाई॥
इतने में घन गरजि बृष्टि करि, तन भींज्यौ मो, भई जुड़ाई।
काँपत देखि उढ़ाइ पीत पट, लै करुनामय कंठ लगाई॥
कहँ वह प्रीति-रीति मोहन की, कहँ अब धौं एती निठुराई।
अब बलबीर सूर-प्रभु, सखि री! मधुबन बसि सब रति बिसराई॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधा कहती हैं—) सखी ! एक दिन कुञ्जमें मोहनने अपने हाथसे अनेक प्रकारके पुष्प लेकर (तोडकर) मुझे दिये, (उस दिनकी) वह स्मृति (मुझे) भूलती नहीं । इतनेमे (ही) बादल गर्जना करके वर्षा करने लगे, (जिससे) मेरा शरीर भीग गया और मुझे ठंड लगने लगी । उन करुणामयने मुझे काँपते देखकर अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया तथा (मुझे) लेकर गलेसे लगा लिया । कहाँ तो मोहनकी वह प्रीतिकी रीति और कहाँ अब (उनकी) यह इतनी निष्ठुरता ! अरी सखी ! हमारे स्वामी (उन) बलरामजीके छोटे भाईने अब मथुरामें निवास करके हमारा सब प्रेम विस्मृत कर दिया ।

राग कान्हरौ

(२८८)

हौं जानौ, माधौ हित कियौ ।
अति आदर आतुर अलि ज्यौं मिलि, मुख-मकरंद पियौ ॥
बरु वह भली पूतना, जाकौ पय सँग प्रान लियौ ।
मनु मधु अँचे निपट सूने तन, यह दुख अधिक दियौ ॥
देखि अचेत, अमृत अवलोकन चले जु सींचि हियौ ।
सूरदास-प्रभु वा अधार तैं, अब लौं परत जियौ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) मैंने तो समझा था कि माधवने (मुझसे) प्रेम किया था, जब उन्होंने भ्रमरकी भाँति मिलकर अत्यन्त आदरपूर्वक उत्सुकता (आतुरता) के साथ (मेरे) मुखका मकरन्द पान किया था । इसमे तो वह पूतना अच्छी थी, जिसका दूध पीनेके साथ (उन्होंने) प्राण ले लिये; (किंतु हमारी तो ऐसी दशा बना दी) मानो (भ्रमरने पुष्पका सारा) मधु पी लिया और सर्वथा शून्य देह करके छोड दिया हो, यह दुःख ऊपरसे उन्होंने दे दिया । (श्यामसुन्दर अपने जाते समय) हमे अचेत (मूर्छित) होते देखकर अपनी

अमृतभरी दृष्टिसे हमारे हृदयको सिक्त करके चले गये। प्रभु! उसी आधारपर अबतक (हमको) जीना पड़ रहा है।

राग सारंग

(२८९)

नाहिंनैं अब ब्रज नंद-कुमार।
परम चतुर सुंदर सुजान, सखि! या तनु के प्रतिहार॥
रूप-लकुट रोके जु रहत अलि, अनु-दिन नैननि-द्वार।
ता दिन तैं उर-भवन भयौ सखि! सिव-रिपु कौ संचार॥
दुख आवत कछु अटक न मानत, सूनौ देखि अगार।
अंसु उसास जात अंतर तैं, करत न कछू बिचार॥
निसा निमेष कपाट लगे बिनु, ससि मूसत सत सार।
सूर प्रान लटि लाज न छाँड़त, सुमिरि अवधि-आधार॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी! इस शरीरके द्वार-रक्षक परम चतुर, सुन्दर और समझदार श्रीनन्दकुमार अब व्रजमें नहीं हैं, जो सखी! अपने सौन्दर्यरूपी डंडेको हाथमें लिये सर्वदा नेत्रके द्वार रोके रहते थे। (किंतु अब जिस दिनसे वे गये) सखी! उसी दिनसे (मेरे) हृदयरूपी भवनमें कामदेवका प्रवेश हो गया। भवनको सूना देखकर (उसमें आते हुए अब) दुःख भी कोई रुकावट नहीं मानता तथा आँसू और निःश्वास (हृदयके) भीतरसे (निकलकर) चले जाते हैं, (वे भी जानेमें) कुछ विचार नहीं करते। रात्रिमें पलकरूपी किवाड़के लगे बिना (निद्रा आये बिना) चन्द्रमा (हमारे) सत्त्वका सार (धैर्य) चुरा लेता है; किंतु फिर भी (हमारे) प्राण (श्यामसुन्दरके लौटनेकी) अवधिके आधारका स्मरण करके (इस क्षीण शरीरमें) लटके हुए लज्जाके कारण साथ नहीं छोड़ते।

(२९०)

ऐसे समय जो हरि जू आवहिं ।
निरखि-निरखि वह रूप मनोहर, नैन बहुत सुख पावहिं ॥
तैसिय स्याम घटा घन-घोरनि बिच बगपाँति दिखावहिं ।
तैसेइ मोर-कुलाहल सुनि-सुनि, हरपि हिंडोरन गावहिं ॥
तैसीऐ दमकति दामिनि, अरु मुरलि मलार बजावहिं ।
कबहूँ संग जु हिलि-मिलि खेलहिं, कबहूँ कुंज बुलावहिं ॥
बिछुरे प्रान रहत नहिं घट में, सो पुनि आनि जियावहिं ।
अब कैं चलत जानि सूरज-प्रभु, सब पहिलें उठि धावहिं ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) ऐसे समयमें यदि श्यामसुन्दर आ जायँ तो उनका वह मनोहर रूप बार-बार देखकर हमारे नेत्र बहुत सुखी हों । (पहलेके समान) वैसी ही काली घटा है, बादल गर्जना कर रहे हैं और बीच-बीचमें बगुलोंकी पंक्ति दीख रही है । हम (भी) उसी भाँति बारंबार (उनके) मयूरोंका कोलाहल सुनकर और हर्षित होकर झूलोंपर (झूलती हुई) गावें । वैसी ही बिजली चमक रही है और वे (वैसे ही) वंशीमें मलार राग गायें, कभी हमारे साथ भली प्रकार मिलकर क्रीड़ा करें तथा कभी हमे कुंजोमे बुलायें । हमारे प्राण उनका वियोग होनेसे शरीरमें रहते नही दीखते, उन्हे आकर वे जीवित करें । इस बार (हम उन) अपने स्वामीको जाते जानकर सब (-की-सब) पहले ही उठकर (उनके साथ) दौड़ पड़ेंगी ।

राग रामकली

(२९१)

ब्रज कहा खोरी ।
छत अरु अछत एक रस अंतर मिटत नहीं, कोउ करौ करोरी ॥
बालक ही अभिलापनि लीला, चकित भई कुल लाजनि छोरी ।
विरुध विवेक गोप-रस परि करि, बिरह-सिंधु मारत तै ओरी ॥

जद्यपि हौ त्रैलोक के ईस्वर, परसि दृष्टि चितवत न वहोरी।
सूरदास-प्रभु प्रीति-रीति कत, ते तुम सबै अब रहे तोरी ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) व्रजमे क्या दोष है, जो मोहन इमे छोडकर चल दिये। (माना कि उनके लिये) लाभ और हानि समान है, किंतु कोई करोडो प्रयत्न करे तो भी उनका अन्तर तो मिटेगा नही। वचपनमे ही उन्होने ऐसी अभिलाषापूर्ण लीलाएँ की (कि हम सब) कुल-मर्यादा और लज्जा छोडकर आश्चर्यमे पड़ गयी। (यही नही) हमारे ज्ञानरूपी बिरवे (नन्हे पौदे) को (अपने गोपवेशकी) क्रीड़ाके आनन्दमे निमग्नकर वियोगरूपी समुद्रमें डूबनेसे बचा लिया था। यद्यपि (आप) त्रिलोकीके स्वामी है, तथापि (अब) एक वार (भी) हमारा दृष्टिसे स्पर्श करनेके लिये फिर हमारी ओर आँख उठाकर भी नही देखते। हमारे स्वामी ! प्रेमकी जो रीति है, उसे पूरी-की-पूरी तुम अब क्यो तोड़ रहे हो।

राग सारंग

(२९२)

हरि विन कौन सौं कहिऐ।
मनसिज-विथा अरनि लौ जारति, उर-अंतर दहिऐ ॥
कानन-भवन रैनि अरु वासर, कहूँ न सचु लहिऐ।
मूक जु भई जग्य के पसु लौं, कोलौ दुख सहिऐ ॥
कबहूँ उपजै जिय में ऐसी, जाइ जमुन वहिऐ।
सूरदास-प्रभु कमलनैन विनु, कैसें व्रज रहिऐ ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दरके विना (यह मनकी वात) किससे कही जाय कि कामदेवकी पीड़ा अरणि (यज्ञमे अग्नि उत्पन्न करनेवाला काष्ठ) के समान जला रही

है। (अब तो) हृदयके भीतर-ही-भीतर जलते रहना है। वनमें या घरमे, रातमे या दिनमे—कही भी शान्ति नही मिलती। यज्ञके (बलिदान होनेवाले) पशुके समान (मैं) मूक होकर कबतक (यह) दुःख सहूँ ? कभी ऐसी बात मनमे उठती है कि जाकर यमुनामे डूब जाऊँ। कमललोचन स्वामीके बिना व्रजमे कैसे रहूँ ?

राग मारू

(२९३)

किते दिन हरि-दरसन बिनु बीते।
एक न फुरत स्यामसुंदर बिनु, बिरह सबै सुख जीते॥
मदनगुपाल बैठि कंचन-रथ, चितै किए तन रीते।
सुफलक-सुत लै गए दगा दै, प्राननिहू तैं प्रीते॥
कहि धौं घोष कबहिं आवैंगे, हरि-बलभद्र सहीते।
सूरदास-प्रभु बहुरि कृपा करि, मिलहु सुदामा मीते॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) हरिके दर्शन बिना कितने दिन बीत गये ! श्यामसुन्दरके बिना (वियोग-निवारणका) एक भी उपाय तो (मेरी) समझमे नही आता। (इस) वियोगने हमारे सारे सुख जीत लिये (समाप्त कर दिये)। मदनगोपालने (जाते समय) सोनेके रथमे बैठकर और (हमारी ओर) देखकर हमारे शरीर सूने बना दिये तथा हमे धोखा देकर हमारे प्राणोसे भी प्रिय मोहनको अक्रूर ले गये। (अब) बतलाओ, श्यामसुन्दर श्रीबलरामके साथ व्रजमे कब आयेंगे ? स्वामी ! फिर कृपा करके हमसे वैसे ही मिलो, जैसे (आगे चलकर द्वारकामें) अपने मित्र सुदामासे मिलोगे।

राग सारग

(२९४)

बिरह भर्‌यौ घर-आँगन-कौने।
दिन-दिन बाढ़त जात सखी री ! ज्यौं कुरुखेत के सोने॥

तव वह दुख दीन्हौ, जब बाँधे, ताहू कौ फल जानि।
निज कृत चूक समझि मन-ही-मन, लेति परस्पर मानि॥
हम अवला अति दीन हीन-मति, तुम सबही बिधि जोग।
सूर वदन देखते अहूठै, यह सरीर कौ रोग॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! मेरे घरमें आँगनमें (ही नहीं) प्रत्येक कोनेमे वियोग भर गया है। जैसे कुरुक्षेत्रका स्वर्ण बढ़ता जाता था *वैसे ही यह (वियोग-दुःख) दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। जव माताने उन्हें (ऊखलसे) बाँधा था, तब तो वह (एक) दुःख (व्रजमें उन्हे) दिया गया था। माना कि यह (वियोग-दुःख) उसी का फल है और उसे अपनी को हुई भूल समझकर हम परस्पर मन-ही-मन उसे मान लेती है। किंतु (श्यामसुन्दर !) हम तो अत्यन्त दीन-हीन अवलाएँ हैं और तुम सभी प्रकारसे योग्य (समर्थ) हो। इसलिये यह हमारे शरीरका (विरहरूपी) रोग (उनके) श्रीमुख-अवलोकन करते ही नष्ट हो जायगा।

राग मलार

(२९५)

जौ पै कोउ माधौ सौं कहै।
तौ यह बिथा सुनत नँदनंदन कित मधुपुरी रहै॥
पहिलेंहीं सब दसा बतावै, पुनि कर-चरन गहै।
यह प्रतीति मेरे चित अंतर, सुनत न प्रेम सहै॥
यहै सँदेस सूर के प्रभु सौं को कहि जसहि लहै।
अब की बेर दयाल दरस दै, यह दुख आनि दहै॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) यदि कोई

* कुरुक्षेत्रमें जैसे-जैसे योधा काम आते जाते थे, वैसे-वैसे उनके आभू... रूपमें स्वर्णराशि बढ़ती जाती थी।

माधवके पास जाकर कहे तो हमारी यह पीड़ा सुनते ही श्रीनन्दनन्दन मथुरा कैसे रह सकते हैं (अर्थात् नही रह सकते)। वह संदेशवाहक पहिले हमारी सब दशा बताये और फिर हाथोसे उनके चरण पकड़ ले तो मेरे हृदयमे यह विश्वास है कि उसे सुनकर (मोहनका वह) प्रेम सहन नही कर सकेगा। (अरी !) स्वामीसे यह सदेश कहकर कौन यश ले कि दयालु ! अवकी बार दर्शन देकर यह दुःख भस्म कर दो।

राग गौरी

(२९६)

सुरति करि ह्वाँ की रोइ दियौ।
पंथी एक देखि मारग में, राधा बोलि लियौ॥
कहि धौं बीर ! कहाँ तै आयौ, हम जु प्रनाम कियौ।
पा लागौं, मंदिर पग धारौ, सुनि दुखियान लियौ॥
गदगद कंठ, हियौ भरि आयौ, बचन कह्यौ न दियौ।
सूर स्याम अभिराम ध्यान मन, भरि-भरि लेत हियौ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कहने लगी—तू ठीक कह रही है, सखी !) सचमुच प्राण-प्रीतम एक दिन यहाँ (व्रज) की याद करके रो पड़े। एक यात्रीको मार्गमें जाते देखकर श्रीराधाने जो बुलवा लिया था, उससे वे बोली—'भैया ! बतलाओ तो कि तुम कहाँसे आये हो, जो तुमने हमें प्रणाम किया। मै तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, भवनमे पधारो ! हम दुःखिनी नारियोंकी बात सुन लो !' (इतना सुनते ही उनका) कण्ठ गद्गद हो गया, हृदय भर आया, कोई बात कह नही सके। मनसे परमसुन्दर श्याम (व्रज) का ध्यान करके बार-बार हृदय भर लेते (व्याकुल हो जाते) हैं।

राग मलार

(२९७)

हरि ! कहँ इते दिन लाए।
आवन कौ कहि गए सु तौ, अजहूँ नहिं आए॥

चलत चितै मुसकाइ कैं, मृदु बचन सुनाए।
तेही ठग मोदक भए, धीरज छिटकाए॥
जग-मोहन जदुनाथ के गुन जानि न पाए।
मनहुँ सूर इहि लाज तैं, नहिं चरन दिखाए॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—) श्यामसुन्दर ! इतने दिन (तुमने) कहाँ लगा दिये ? आनेके लिये (तुम) कह गये थे, वह तो अबतक आये नही। चलते समय (हमारी ओर) देखते हुए तुमने जो मुस्कराकर मधुर वाणी सुनायी थी, वह (अन्तिम शब्द हमारे लिये भुलावा देनेवाले) ठगके लड्डू (के समान) हो गयी है और उसने हमारे धैर्यको अस्त-व्यस्त कर दिया है। समस्त विश्वको मोहित करनेवाले श्रीयदुनाथके गुण जाने नही गये, मानो इसी लज्जासे (उन्होने) यहाँ अपने चरणोका दर्शन नही दिया (मथुरामें जो उलटे-सीधे कार्य किये, उसी लज्जासे वे नही आते)।

(२९८)

यह दुख कौन सौं कहौं।
जोइ बीतति, सोइ कहति, सयानी ! नित नव सूल सहौं॥
जे सुख स्याम संग सब कीन्हे, गहि राखे इहिं गात।
ते अब भए सीत या तनु कौं, साखा ज्यौं द्रुम-पात॥
जो हुति निकट मिलन की आसा, सो तौ दूरि गई।
जथा-जोग ज्यौं होत रोगिया, कुपथी करत नई॥
यह तन-त्यागि मिलन यौं बनिहै, गंगा-सागर-संग।
अब सुनि सूर ध्यान ऐसौ है, स्याम-राम इक रंग॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) यह दुःख किससे कहूँ ? चतुर सखी ! मुझपर जो बीत रही है, वही कहती हूँ— (अब) नित्य नवीन वेदना सहती हूँ। श्यामसुन्दरके साथ जितने

आनन्द किये, उन सबको इस शरीरने (स्मृतिरूपमें) पकड़ रखा था। वे ही सब इस शरीरके लिये ऐसे शीतप्रद (दुःखद) हो गये हैं, जैसे वृक्षकी शाखा एवं पत्तोंको (जलानेवाला पाला) होता है। जो (मोहनके) समीप रहनेके कारण मिलनेकी आशा थी, वह (इस भाँति) दूर चली गयी, जैसे रोगी व्यक्ति नित्य नवीन कुपथ्य करनेसे यथार्थ्य (स्वास्थ्य-लाभ समझकर) अधिक रोगी होता जाता है। (अब) इस शरीरको छोडकर उनसे ऐसे मिलना होगा, जैसे समुद्रमें गङ्गा। सुनो, अब मेरा ऐसा ध्यान (विचार) है कि श्याम और बलराम—दोनो भाई एक ही रंगके (एक समान निष्ठुर) है।

(२९९)

गोविंद अजहूँ नहिं आए री, जान एहू दिन लागे।
उन्ह कौं दोप कहा, सखि ! दीजे, ब्रज के लोग अभागे॥
प्रीतिहि के माते जे सोए, सरबस हरत न जागे।
अब कहि सूर कहा बस्याइ हम, अनत कहूँ अनुरागे॥

(सूरदासजीके शब्दोमें एक गोपी कह रही है—सखी !) ये दिन भी बीतने लगे, पर गोविन्द (अब भी) नही आये। सखी ! उनको क्या दोष दिया जाय, (हम) व्रजके लोग ही भाग्यहीन हैं। (हम) प्रेमके मदसे मतवाले होकर (ऐसे) सो गये (असावधान रहे) कि अपना सर्वस्व-हरण होते समय भी जागे नही। अब बतलाओ, हमारा क्या वश चल सकता है। वे तो कही अन्यत्र प्रेम कर चुके है।

राग सारंग

(३००)

हम सरघा, व्रजनाथ सुधानिधि,
राखे बहुत जतन करि सचि-सचि।
मन-मुख भरि-भरि, नैन-ऐन ह्वै,
उर प्रति कमल-कोस लौं खचि-खचि॥

सुभग सुमन सब अंग अमृतमय,
तहाँ-तहाँ राखति चित रचि-रचि ।
मोहन मदन सुरूप सुजस-रस,
करत सु गुप्त प्रेम रस पचि-पचि ॥
सूरदास पीयूप लागि तिहि,
पठयौ नृपति, तेहु गए बचि-बचि ।
अब सोई मधु हर्‌यौ सुफलक-सुत,
दुसह दाह जु उठत तन तचि-तचि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) हम (गोपीरूप) मधुमक्खियोंने श्रीव्रजनाथरूप अमृतकोषको बहुत प्रयत्नसे संचित करके रखा था, मनरूपी मुखमें (उनकी शोभा) बार-बार भरकर नेत्ररूपी मार्गसे हृदयरूपी प्रत्येक कोषमें उसे ठूँस-ठूँसकर रखा था । उनके सभी मनोहर अङ्ग अमृतमय पुष्पोंके समान थे, उन-उन अङ्गोंमें हम अपना चित्त भलीप्रकार लगाये रखती थी और उनके कामदेवको भी मोहित करनेवाले उत्तम सौन्दर्य एवं सुयश (रूपी) रस (मकरन्द) में (हम) बार-बार प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त गुप्त प्रेम करके आनन्द लेती थी । इस अमृतके लिये राजा (कंस) ने (जिन-जिनको यहाँ) भेजा, वे (सब उससे) वञ्चित रहे; किंतु वही हमारा मधु (रूपी मोहनका आधार) अक्रूरने हरण कर लिया, अब असहनीय संतापसे (हमारा) शरीर बार-बार संतप्त होता रहता है ।

राग बिलावल

(३०१)

तुम्हरी प्रीति, हरि ! पूरब जनम की,
अब जु भए मेरे जियहु के गरजी ।
बहुत दिनन तैं बिरमि रहे हौ,
संग बिछोहि हमैं गए बरजी ॥

जा दिन तैं तुम्ह प्रीति करी ही,
घटति न वढ़ति तौल लेहु नरजी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन विनु,
तन भयौ व्यौंत, विरह भयौ दरजी ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) श्यामसुन्दर! (हमसे) तुम्हारा प्रेम (आजका नही) पूर्वजन्मका है; किंतु (पता नहीं, अव क्यों तुम) मेरे प्राणोके ग्राहक हो गये हो। वहुत दिनोसे (तुम मथुरामे) हमारा साथ छोड़कर रम रहे हो और हमे (वहाँ आनेसे) रोक गये हो। जिस दिनसे (हमने) तुमसे प्रेम किया, तवसे वह घटा है, वढा नही है; भले ही (तराजू लेकर) उसे तौल लो। हे स्वामी! तुम्हारे मिलनके विना हमारा शरीर विरहरूप दर्जीके द्वारा सिया जानेवाला वस्त्र वन गया है।

राग सारंग

(३०२)

(माई) वै दिन इहिं देह अछत, विधिना जौ आनै री।
स्यामसुँदर संग रंग जुवति-वृंद ठानै री ॥
जद्यपि अक्रूर सूर परम गति पठावै री।
प्रान-नाथ कमल-नैन वाँसुरी वजावै री ॥
कहा कहौं, कहत कठिन, कहे कौन मानै री।
सूरदास प्रेम-पीर विरहि मिलें जानै री ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है–) सखी! इस शरीरके रहते कही विधाता वह दिन ला दे कि श्यामसुन्दरके साथ हम युवतियोका समूह आनन्दक्रीडा करता हो। (उस समय) यदि अक्रूर आ जायँ तो (हम) उन्हे जडसहित परमगतिको भेज दें, (क्योंकि) हमारे णनाथ कमललोचन वंशी जो वजाते होगे। क्या कहूँ, कहनेमें बहुत

कठिन बात है और मेरा कहना मानेगा कौन ? यह प्रेमकी पीड़ा तो वियोग प्राप्त होनेपर ही जानी जाती है ।

राग मलार

(३०३)

हरि कौ मारग दिन प्रति जोवति ।
चितवत रहत चकोर चंद ज्यौं,
सुमिरि-सुमिरि गुन रोवति ॥
पतियाँ पठवति, मसि नहिं खूटति,
लिखि-लिखि मानहुँ धोवति ।
भूख न दिन, निसि नींद हिरानी,
एकौ पल नहिं सोवति ॥
जे-जे बसन स्याम सँग पहिरे,
ते अजहूँ नहिं धोवति ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु,
बृथा जनम सुख खोवति ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) राधा प्रतिदिन श्यामसुन्दरका मार्ग ही देखती है । जैसे चन्द्रमाको चकोर देखता है, उसी प्रकार (वह उनके लौटनेका मार्ग) देखती और उनके गुणोंका बार-बार स्मरण करके रोती रहती है । चिट्ठियाँ भेजती है, पर स्याही समाप्त नहीं होती । (पत्र ऐसे आँसूसे भीग जाते हैं) मानो बार-बार उन्हें लिखकर धो देती है । (उसे) दिनमें न तो भूख लगती है और रातमें निद्रा खो गयी है, एक पल भी सोती नहीं । श्यामसुन्दरके साथ रहनेपर जो-जो वस्त्र (उसने) पहिने थे, उन्हें अब भी धोती नहीं । स्वामी ! आपके दर्शनके बिना वह जीवनके समस्त आनन्द व्यर्थ खो रही है ।

राग सारंग

(३०४)

बिनु माधौ राधा-तन, सजनी ! सब विपरीत भई ।
गई छपाइ छपाकर की छवि, रही कलंकमई ॥
अलक जु हुती भुवंगमह-सी, बट लट मनहुँ भई ।
तनु-तरु लाइ बियोग लग्यौ जनु, तनुता सकल हई ॥
अँखियाँ हुतीं कमल-पँखुरी-सी, सुछवि निचोरि लई ।
आँच लगे च्योनो सोनो-सौ, यौं तनु धातु धई ॥
कदली-दल-सी पठि मनोहर, मानौ उलटि ठई ।
संपति सब हरि हरी सूर-प्रभु, विपदा देह दई ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—) सखी ! माधवके बिना श्रीराधाके शरीरकी सब उलटी दशा हो गयी—उनकी चन्द्रमाके समान शोभा तो छिप गयी (दूर हो गयी)। केवल कलङ्ककी कालिमा-मय रह गयी है। उनकी अलकें, जो सर्पके समान (काली एव लहरदार) थी, वे (आज) उलझकर मानो लटें (जटाएँ) हो गयी हैं और (वे लटें) शरीररूपी वृक्षमें (इस भाँति ज्ञात होती है) मानो (उस तनरूपी वृक्षमे) वियोगरूपी लपट लग गयी हो। उसकी दुर्बलताने सब शक्ति नष्ट कर दी है। आँखें जो कमलकी पंखुडियोके समान थी, उनकी सुन्दरता (मानो किसीने) निचोड ली है। जैसे अग्निका ताप लगनेपर सोना पिघल जाता है, उस प्रकार उनके शरीरकी धातुएँ जल गयी हैं। (वियोगमें अस्थि, मास सब गल जाता है।) केलेके पत्तेके समान उनकी मनोहर पीठ अब ऐसी हो गयी है मानो उसे (पत्तेको) उलटकर रख दिया हो (क्योंकि अब उसमे रीढकी हड्डी दीखने लगी है)। हमारे स्वामीने उसकी सब सुख-सम्पत्ति छीनकर (उसके) शरीरके लिये विपत्ति दे दी।

राग कान्हरौ

(३०५)

कर कपोल, भुज धरि जंघा पै
लेखति माइ! नखनि की रेखनि।
सोच-विचार करति वह कामिनि,
धरति जु ध्यान मदन-मुख-भेषनि॥
नैन नीर भरि-भरि जु लेति है,
धिक-धिक जे दिन जात अलेखनि।
कमल-नैन मधुपुरी सिधारे,
जाने गुन न सहस-मुख सेषनि॥
अवधि झुठाइ कान्ह, सुनु री, सखि!
क्यौं जीवैं निसि दामिनि देखनि।
सूरदास-प्रभु चेटक करि गए,
नाना विधि नाचति नट-पेषनि॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक सखी दूसरी सखीसे श्रीराधाके सम्बन्धमें कह रही है—) सखी! वह कामिनी (मिलनकी चाह रखनेवाली) हथेलीपर कपोल और भुजा (कुहनी) जंघापर रखकर पृथ्वीपर नखोसे रेखाएँ लिखती (बनाती) और सोच-विचार (चिन्ता) करती है। उन कामदेवके समान सुन्दर मुख एवं वेशवाले मोहनका ध्यान धरती रहती है। (वह) बार-बार नेत्रोमे जल भर लेती है (और कहती है—) 'बिना गणनाके ये जो दिन (श्यामके वियोगके कारण व्यर्थ) बीत रहे है, उन्हे धिक्कार है, धिक्कार है; (क्योकि) जिनके गुण सहस्रमुखवाले शेषनाग भी नही जान सके, वे कमललोचन मथुरा चले गये।' सखी! सुन, कन्हैयाने (लौटनेकी) जो अवधि दी थी, वह झूठी निकली; अब रात्रिमे बिजली देखकर (वह) कैसे जीवित रहे। अरी, हमारे स्वामी (तो

उसपर) कुछ ऐसा टोटका (जादू) कर गये है कि नटके समान अनेक प्रकारसे नाचती (व्याकुल होती) दिखायी पड़ती है।

(३०६)

सबै सुख लै जु गए ब्रजनाथ।
बिलख वदन चितवति मधुबन तन, हम न गईं उठि साथ॥
वह मूरति चित तै विसरति नहिं, देखि साँवरे गात।
मदनगुपाल ठगौरी मेली, कहत न आवै बात॥
नंद-नँदन जु बिदेस गवन कियौ, बैसी मींजति हाथ।
सूरदास-प्रभु ! तुम्हरे बिछुरें, हम सब भईं अनाथ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) ब्रजनाथ हमारे सभी सुख ले गये। हम उदास मुखसे मथुराकी ओर देखती रही, पर उठकर उनके साथ नही गयी। (अरी, उनके) श्याम शरीरको (एक बार) देख लेनेपर हृदयसे वह मूर्ति भूलती (हटती) नही; क्योकि उन मदनगोपालने (अपने सौन्दर्यका) कुछ ऐसा जादू डाल दिया है कि कोई बात कहते नही बनती। नन्दनन्दन तो विदेश चले गये और हम हाथ मलती बैठी रह गयी। हे स्वामी ! तुम्हारे वियुक्त होनेमे हम सब अनाथ हो गयी हैं।

(३०७)

करिहौ, मोहन ! कहूँ सँभारि, गोकुल-जन-सुखहारे।
खग, मृग, तृन, वेली वृंदावन, गैया, ग्वाल बिसारे॥
नंद-जसोदा मारग जोवैं, निसि-दिन दीन-दुखारे।
छिन-छिन सुरति करत चरनन की, बाल-बिनोद तुम्हारे॥
दीन-दुखी ब्रज रह्यौ न परिहै, सुंदर स्याम लला रे।
दीनानाथ, कृपा के सागर, सूरदास-प्रभु प्यारे॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) गोकुलके लोगोंको सुख देनेवाले मोहन ! कभी इनकी सँभाल करोगे ? (ओह !) तुमने तो वृन्दावनके पक्षी-पशु, तृण-लता, गायें और गोपोंको विस्मृत (ही) कर दिया। (अत्यन्त) दीन एवं दुखी होकर बाबा नन्द और मैया यशोदा तुम्हारा मार्ग देखती है और क्षण-क्षणमे तुम्हारे चरणोका तथा तुम्हारी बालोचित क्रीड़ाओका स्मरण करती है। सुन्दर श्यामलाल ! (तुम्हारे बिना) दीन-दुखी होकर व्रजमें रहा नही जाता; हमारे प्यारे स्वामी ! (तुम) दीनोके नाथ और कृपाके समुद्र हो (कभी तो कृपा करोगे ही)।

(३०८)

उन्ह कौं व्रज बसिबौ नहिं भावै।
ह्वाँ वे भूप भए त्रिभुवन के, ह्याँ कित ग्वाल कहावै ॥
ह्वाँ वे छत्र-सिंघासन राजत, को बछरन सँग धावै।
ह्वाँ तौ विविध बस्त्र पाटंबर, को कमरी सचु पावै ॥
नंद-जसोदा हू कौ बिसरयौ, हमरी कौन चलावै।
सूरदास-प्रभु निठुर भए री, पातिहु लिखि न पठावै ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) उनको (अब) व्रजमे रहना अच्छा नही लगता; क्योंकि वहाँ वे तीनो लोकोके राजा हो गये है। यहाँ (व्रजमे आकर) गोप क्यो कहलायें। वहाँ तो वे छत्र लगाकर सिंहासनपर शोभित होते है; (भला, अब) बछड़ोके साथ कौन दौड़े। (साथ ही) वहाँ तो अनेक प्रकारके रेशमी वस्त्र हैं, (तब) कंबलपर कौन संतोष करे। वे तो नन्द-यशोदाको भी भूल गये, फिर हमारी कौन चर्चा है। (सखी !) हमारे स्वामी ऐसे निष्ठुर हो गये है कि (अब) पत्र लिखकर भी (यहाँ) नही भेजते।

राग मलार

(३०९)

तब तैं बहुरि न कोऊ आयौ।
वहै जु एक बेर ऊधौ सौं कछु संदेसौ पायौ ॥

छिन-छिन सुरति करत जदुपति की, परत न मन समझायौ।
गोकुलनाथ हमारे हित लगि लिखिहू क्यौं न पठायौ॥
यहै विचार करौं धौं, सजनी! इतौ गहरु क्यौं लायौ।
सूर स्याम अब बेगि न मिलहू, मेघन अंबर छायौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी!) जबसे श्यामसुन्दर मथुरा गये, तबसे फिर कोई (मथुरासे) नही आया। वही एक बार उद्धवके हाथ (उनका) कुछ संदेश मिला था। बार-बार (उन) श्रीयदुनाथका स्मरण करती हूँ, (फिर भी) मन समझानेसे भी नही मानता। उन गोकुलके स्वामीने हमारे प्रेमके लिये (हमारे प्रेमका ध्यान करके कुछ भी तो) लिखकर नही भेजा। सखी! यही विचार करती हूँ कि उन्होने इतनी देर क्यो लगायी। हे श्यामसुन्दर! अब जल्दी आकर क्यो नहीं मिलते? (देखो) आकाशमें मेघ छा रहे है।

राग गौरी

(३१०)

बहुरौ हो ब्रज बात न चाली।
वहै सु एक बेर ऊधौ कर कमल-नैन पाती दै घाली॥
पथिक तिहारे पा लागति हौं, मथुरा जाहु, जहाँ बनमाली।
कहियो प्रगट पुकारि द्वार ह्वै, कालिंदी फिरि आयौ काली॥
तब वह कृपा हुती, नँदनंदन रुचि-रुचि रसिक प्रीति प्रतिपाली।
माँगत कुसुम देखि ऊँचे द्रुम, लेत उछंग गोद करि आली॥
जब वह सुरति होति उर अंतर, लागति काम-बान की भाली।
सूरदास-प्रभु प्रीति पुरातन सुमिरत दुसह सूल उर साली॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी!) व्रजमें (श्यामसुन्दरका संदेश आनेकी) फिर कोई चर्चा नही चली। वही एक बार उद्धवके हाथ कमललोचन (श्यामसुन्दर) ने पत्र देकर भेजा था। पथिक!

मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ; तुम मथुरा, जहाँ श्रीवनमाली हैं, जाओ और उनके द्वारपर जाकर तथा पुकारकर प्रत्यक्ष (जोरसे) कहना—'यमुनामें फिर कालिय (नाग) आ गया है।' नन्दनन्दन ! तब (पहिले) तो (हमपर) तुम्हारी वह (प्रेममयी) कृपा थी और अत्यन्त रुचिपूर्वक रसिक बनकर हमारे प्रेमको (भी) तुमने पुष्ट किया था तथा सखियोंके (मुझसे) पुष्प माँगनेपर (वे) वृक्षको ऊँचा देखकर मुझे गोदमें उठा लेते थे (कि मैं स्वयं पुष्प तोड़ लूँ)। किंतु (अब) जो (सखी !) वह स्मृति हृदयमें होती है तो कामदेवके बाणकी नोक (-सी) चुभ जाती है। हमारे स्वामीकी (तुम्हारी) उस पुरानी प्रीतिका स्मरण करते ही असहनीय वेदना हृदयको पीड़ित करती है।

राग धनाश्री

(३११)

तुम्हरे देस कागद-मसि खूटी।
भूख-प्यास अरु नींद गई सब, बिरह लयौ तन लूटी॥ १
दादुर, मोर, पपीहा बोलै, अवधि भई सब झूठी।
पाछैं आइ तुम कहा करौगे, जब तन जैहै छूटी॥
राधा कहति सँदेस स्याम सौं, भई प्रीति की टूटी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, सखी करति हैं कूटी॥

(मोहन ! क्या) तुम्हारे देशमें कागज और स्याही समाप्त हो गयी ? (कि एक पत्र भी यहाँ नहीं भेजते।) (यहाँ तो) भूख, प्यास और निद्रा (भी) चली गयी; वियोगने शरीरसे (इन) सबको लूट लिया है। मेढक, मोर और पपीहा बोल रहे हैं और (तुम्हारे लौटनेकी) सब अवधि (भी) झूठी [illegible]। अरे, जब शरीर छूट जायगा (हम मर जायँ [illegible] तुम क्या करोगे।' (इस प्रकार [illegible]) [illegible] के [illegible] [illegible]दरसे संदेश कहती हैं (उन्हें

है कि—) क्या तुम्हारे पास प्रेमकी कमी पड़ गयी ? स्वामी ! तुम्हारे मिलनेके बिना सखियाँ (मुखपर) व्यंग करती हैं ।

(३१२)

पथिक कह्यौ ब्रज जाइ, सुने हरि जात सिंधु-तट ।
सुनि सब अँग भए सिथिल, गयौ नहिं बज्र हियौ फट ॥
नर-नारी घर-घरनि सबै यह करति बिचारा ।
मिलिहैं कैसी भाँति हमें अब नंद-कुमारा ॥
निकट बसत हुति आस, कियौ अब दूरि पयाना ।
बिना कृपा भगवान उपाइ न सूरज आना ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें) किसी यात्रीने व्रजमें जाकर कहा—'सुना जाता है कि श्यामसुन्दर (अब) समुद्र-किनारे जा रहे हैं ।' यह सुनते ही (व्रजके लोगोंके) सारे अङ्ग शिथिल हो गये; पर वज्रके समान (उनका) हृदय फट नहीं गया । सभी पुरुष-स्त्री घर-घरमें यही विचार (चिन्ता) करने लगे कि अब हमें श्रीनन्दनन्दन कैसे मिलेंगे ! समीप रहते तो (मिलनकी कुछ) आशा थी, पर अब तो (वे) दूर जा रहे हैं । भगवान्‌की कृपाके बिना अब (मिलनका) दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

राग गौरी

(३१३)

हमारे हरि चलन कहत हैं दूरि ।
मधुबन बसत आस हुति, सजनी ! अब तो मरिहैं झूरि ॥
कौनैं कह्यौ, कौन सुनि आई, किहिं रुख रथ की धूरि ।
संगहिं सबै चलौ माधौ कै, ना तरु मरहु बिसूरि ॥
दच्छिन दिसि इक नगर द्वारिका, सिंधु रह्यौ भरि पूरि ।
सूरदास अबला क्यौं जीवैं, जात सजीवन मूरि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) हमारे (हृदय-हरण करनेवाले) हरि दूर जानेके लिये कहते हैं। (ठीक है; किंतु) सखी ! मथुरामें रहते थे तो (मिलनकी) आशा थी, अब तो (हम उनके वियोगमे) सूख-सूखकर मर जायँगी। किंतु यह बात किसने कही ? कौन सुनकर आयो है ? और (उनके) रथकी धूलि किस ओर उड़ रही है ? (अब) या तो सब माधवके साथ चलो, नहीं तो (यहीं) रोती हुई मरो। दक्षिण दिशामें एक द्वारका नगरी है, जिसके चारो ओर समुद्र पूर्णत भरा है। (जब हमे जिलानेवाली) संजीवनी जड़ी (श्याम ही) जा रहे हैं, (तब हम) अबलाएँ कैसे जीवित रहेंगी !

(३१४)

हम तै कमल-नैन भए दूरि।
चलन कहत मधुबनहु तै, सजनी ! इन नैनन की मूरि॥
चलत कान्ह सब देखन लागीं, उड़त न रथ की धूरि।
सूरदास प्रभु उतर न आवै, नैन रहे जल-पूरि॥

(कोई गोपी कह रही है—सखी !) हमसे कमललोचन (श्यामसुन्दर) दूर हो गये और सखी ! इन नेत्रोंकी औषधि (रूप वे अब) मथुरासे भी जाना कहते है। श्यामसुन्दरके जानेकी बात सुनकर सब देखने लगीं कि उनके रथकी धूलि उडती तो नही है ! सूरदासजी कहते है—'मेरे स्वामी ! उनसे कुछ उत्तर देते नही बनता, उनके नेत्रोमे जल (अश्रु) भरा हुआ है।'

राग धनाश्री

(३१५)

नैना भए अनाथ हमारे।
मदनगुपाल उहाँ त, सजनी ! सुनियत दूरि सिधारे॥
वे समुद्र, हम मीन बापुरी, कैसे जीवै न्यारे।
हम चातक, वे जलद स्याम-घन, पियति सुधा-रस प्यारे॥

मथुरा बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे।
सूरदास हम कौं उलटी बिधि, मृतकहु तैं पुनि मारे॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) हमारे नेत्र अब (और) अनाथ हो गये; (क्योंकि) सखी ! सुना जाता है कि मदनगोपाल वहाँ (मथुरा) से भी दूर चले गये हैं। वे समुद्र और हम बिचारी (असहाय) मछलियाँ हैं, उनसे पृथक् होकर (हम) कैसे जीवित रह सकती हैं ! हम सब चातक हैं और वे घनश्याम मेघ हैं; हम (उन) प्रियतमके अमृत-रसको (ही) पीती हैं। जबतक (वे) मथुरामे रहते थे, तबतक दर्शनकी आशा थी। (हमारे) नेत्र उनका रास्ता देखते थक गये; किंतु हमारे लिये तो विधाता उलटा हो गया है। हम मृतकोको (भी) उसने फिरसे मारा है।

(३१६)

अब निज नैन अनाथ भए।
मधुबन तैं माधौ, सखि ! सुनियत, औरौ दूरि गए॥
मथुरा बसत हुती जिय आसा, औ लगतौ ब्यौहार।
अब मन भयौ भीम के हाथी, सुनियत अगम अपार॥
सिंधु-कूळ इक नगर बसायौ, ताहि द्वारिका नाउँ।
यह तन सौंपि सूर के प्रभु कौ, और जनम धरि जाउँ॥

(सूरदासजीके शब्दोमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) अब हमारे नेत्र (एकदम) अनाथ हो गये। सखी ! सुना जाता है कि माधव मथुरासे और दूर चले गये। उनके मथुरा रहनेपर चित्तमे (मिलनकी) आशा थी और (व्रजसे उनका) सम्बन्ध भी चलता था; अब तो हमारे मनसे वे भीमके (द्वारा फेंके गये) हाथी* हो गये। सुना जाता है कि वे

* एक कथा ऐसी आती है कि भीमसेनने महाभारत-युद्धके समय बहुतसे हाथियोको आकाशमे इतने जोरसे फेंक दिया कि वे पृथ्वीपर गिरे ही नहीं।

अपार दूर अगम्य स्थानपर गये हैं। (उन्होंने) समुद्रके किनारे एक नगर बसाया है, जिसका नाम द्वारिका है। (अब तो मैं) यह शरीर अपने स्वामीको सौंप (उनके निमित्त त्याग) कर और दूसरा जन्म लेकर वहाँ (द्वारिका) जाऊँगी।

(३१९)

उती दूर त को आव री।
जासौं कहि संदेस पठाऊँ, सो, कहि, कहन कहा पावै री॥
सिंधु-कूल इक देस बसत है, देख्यौ-सुन्यौ न मन धावै री।
तहँ नव-नगर जु रच्यौ नंद-सुत, द्वारावति पुरि जो कहावै री॥
कंचन के बहु भवन मनोहर, रंक तहाँ नहिं त्रिन छावै री।
ह्वाँ के बासी लोगन कौं क्यौं ब्रज कौ बसिबौ मन भावै री॥
बहु बिधि करति बिलाप बिरहिनी, बहुत उपायनि चित लावै री।
कहा करौं, कहँ जाउँ, सूर प्रभु ! को हरि पिय पै पहुँचावै री॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) उतनी दूरसे अब (यहाँ) कौन आता है। जिसके द्वारा संदेश कहलाकर भेजूँ, वह बता तो, वहाँ क्या कहने पायेगा ? (वहाँ वह पहुँच भी गया तो उस राजदरबारमे जाकर कह कैसे सकेगा।) समुद्रके किनारे एक देश है, जिसे न देखा है न (उसका वर्णन) सुना है और न मनकी ही (वहाँ) पहुँच है (मनमें उसकी कल्पना भी नहीं आती)। वहाँ नन्दकुमारने एक नवीन नगरका निर्माण किया है, जो द्वारकापुरी कहलाती है। (वहाँ) सोनेके बहुत-से सुन्दर भवन हैं, (इसलिये) वहाँ कोई गरीब फूसकी झोपड़ी नही छाता। अतएव वहाँके निवास करनेवाले लोगोंको (भला) व्रजमें रहना कैसे अच्छा लग सकता है। इस प्रकार वियोगिनी अनेक प्रकारसे विलाप करती (मोहनसे मिलनके) अनेक उपायोंको चित्तमें लाती है (तथा

कहती है—) 'कहाँ जाऊँ, क्या करूँ और कौन (हमें) हमारे स्वामी प्रियतम हरिके पास पहुँचाये ।'

राग सारंग

(३१८)

हौं कैसें कै दरसन पाऊँ ।
सुनौ, पथिक ! उहिं देस द्वारिका जौ तुम्हरे सँग जाऊँ ॥
बाहर भीर बहुत भूपनि की, बूझत बदन दुराऊँ ।
भीतर भीर भोग भामिनि की, तिहिं ठाँ काहि पठाऊँ ॥
बुधि बल जुक्ति जतन करि उहिं पुर हरि पिय पैं पहुँचाऊँ ।
अब बन बसि निसि कुंज रसिक बिनु कौनै दसा सुनाऊँ ॥
स्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिं, मन मैं भले मनाऊँ ।
नव-किसोर मुख मुरलि बिना इन्ह नैनन कहा दिखाऊँ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) हे पथिक ! सुनो, यदि मैं तुम्हारे साथ उस द्वारिकादेशमें जाऊँ भी, तो कैसे श्यामसुन्दरके दर्शन पाऊँगी ? (क्योंकि वहाँ) बाहर (तो) राजाओंकी बहुत भीड़ होगी, इसलिये किसीके पूछनेपर (कि तुम कौन हो) मैं अपना मुख छिपा लूँगी और (राजभवनके) भीतर भी अपार (सुख-) भोगों तथा रानियोंकी भीड़ होगी, उस स्थानपर किसे भेजूँगी ? (फिर भी) यदि बुद्धि-बलसे (कुछ) उपाय और प्रयत्न करके उस नगरमें प्रियतम श्यामसुन्दरके पास (अपना संदेश) पहुँचाऊँ भी तो अब (वे) वृन्दावनमें रहकर रात्रिमें कुञ्जोंमे क्रीडा करनेके रसिक (श्याम तो हैं नहीं, उन) के बिना किसे अपनी दशा सुनाऊँ ! परिश्रम करके यदि स्वामीके पास चली जाऊँ तो अपने मनको (उनका राजसी ठाट दिखलाकर) भले मना लूँ; किंतु मुखपर वंशी रखे नवल किशोरके बिना इन नेत्रोंको क्या दिखाऊँगी (नेत्र तो केवल वंशीधर श्यामको ही देखना चाहते हैं) ।

राग नट

(३१९)

मानौ विधि अब उलटि रची री।
जानति नहीं, सखी! काहे तैं उहीं न तेज तची री॥
बूड़ि न मुई नीर नैननि के, प्रेम न प्रजरि पची री।
बिरह-अगिनि अरु जल-प्रवाह तैं, क्यौं दुहुँ बीच बची री॥
जो कछु सकल लोक की सोभा, लै द्वारिका सची री।
ह्वाँ के बारिधि बड़वानल में, रेतनि आनि खची री॥
कहिऐ संकरषन के भ्राता कीरति कित न मची री।
सूर स्याम-माया जग मोह्यौ, सोइ मुख निरखि नची री॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) विधाताने अब मुझे मानो फिरसे बना दिया है। सखी ! नहीं जानती कि किस कारणसे उसी (वियोगकी) ज्वालामें जल नहीं गयी, नेत्रोंके जलमें डूबकर मर नहीं गयी और न प्रेमकी अग्निमें प्रज्वलित होकर समाप्त हुई। वियोगकी अग्नि और (नेत्रोंके) जल-प्रवाह—इन दोनोंके बीचमें पड़कर भी कैसे बच गयी ! सम्पूर्ण लोकोंकी जो कुछ शोभा थी, (वह सब) लेकर श्यामने द्वारिकामें एकत्र कर दी है। (मैं) वहींके समुद्र और बड़वानलमें (जाकर) रेतके समान आकर अटक गयी हूँ। क्या कहा जाय, (उन) श्रीबलरामके छोटे भाईका सुयश कहाँ नहीं हो रहा है। श्यामसुन्दरकी मायाने सम्पूर्ण जगत्को मोहित कर लिया है। (मैं उनका) वही मुख देखकर विमुग्ध हुई हूँ।

राग मारू

(३२०)

आयौ नहिं, माई ! कोइ तौ।
सुनि री, सखी ! सँदेसहु दुरलभ, नैन थके, मग जोइ तौ॥

मथुरा छाँड़ि निवास सिंधु कियौ, प्रान-जिवन-धन सोइ तौ।
द्वारावती कठिन अति मारग, क्यौं करि पहुँचै लोइ तौ॥
मिटी मिलन की आस, अवधि गइ, ब्रजवनिता कहि रोइ तौ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, तृपति कहूँ नहिं होइ तौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) 'सखी ! (मोहनका संदेश लेकर) कोई भी तो नहीं आया। अरी सखी ! सुन ! उनका संदेश भी (अब) दुर्लभ हो गया है। उनका मार्ग देखते-देखते नेत्र थक गये। जिन्होंने मथुरा छोड़कर (अब) समुद्र (के भीतर द्वारिका) में निवास बनाया है, वही हमारे प्राण तथा जीवन-धन हैं। (उस) द्वारिकाका मार्ग (तो) अत्यन्त कठिन है, वहाँ लोग कैसे पहुँच सकते हैं ! (आपके) लौटनेकी अवधि बीत गयी और आपके मिलनेकी आशा भी समाप्त हो गयी।' यह कहकर व्रजवनिता रोने लगी और कहने लगी—'हे प्रभु ! तुम्हारे मिले बिना कहीं भी (हमें) तृप्ति नहीं होती है।'

राग मलार

(३२१)

तातैं अति मरियत अपसोसनि।
मथुराहू तैं गए सखी री, अब हरि कारे कोसनि॥
यह अचरज सु बड़ौ मेरें जिय, यह छाँड़नि, वह पोपनि।
निपट निकाम जानि हम छाँड़ी, ज्यौं कमान बिन गोसनि॥
इक हरि के दरसन बिन मरियत, अरु कुबिजा के ठोसनि।
सूर सुजरनि कहा उपजी जो, दूरि होति करि ओसनि॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) सखी ! इसलिये हम सब चिन्तासे मरी जाती हैं कि श्यामसुन्दर अब मथुरासे भी काले कोस (अत्यधिक) दूर चले गये। मेरे चित्तमें यही बड़ा आश्चर्य है कि उनका वह (निष्ठुरतापूर्वक हमें) छोड़ देना और वह (पहले प्रेमपूर्वक) पोषण

करना (दोनों स्थितियोंमें क्या मेल !) । हमें (तो उन्होंने) सर्वथा अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया, जैसे नोकरहित धनुषको लोग छोड़ देते हैं । एक तो हम श्यामसुन्दरके दर्शन बिना मरी जाती हैं, दूसरे कुब्जाकी ठसक (पीड़ा देती है) । यह जो अत्यन्त संताप उत्पन्न हो गया है, (वह क्या) ओसके द्वारा दूर हो सकता है ?

राग मारू

(३२२)

जौ पै लै जाइ कोउ मोहि द्वारिका के देस ।
संग ताके चलौं सजनी, जटाहू करि केस ॥
बोलि धौं हरबाइ पूछें, आपनें सनमेष ।
जैसेंही जो कहै कोऊ, बनौं तैतौ भेष ॥
जदपि हम ब्रजनारि, जुबती-जूथ-नाथ, नरेस ।
तदपि सूर कुमोदिनी ससि बढ़ें प्रीति-प्रबेस ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) सखी ! यदि कोई मुझे (इतनेपर भी) द्वारिकाके देश ले चले, तो मैं अपने केशोंकी जटा बनाकर भी उसके साथ चलनेके लिये तैयार हूँ । (यदि कोई) अस्त-व्यस्त (बात) बोलकर (कुछ) पूछेगा तो अपने जान ठीक ही उत्तर दूँगी; जो कोई जैसा भी कहेगा, वैसा ही वेश बना लूँगी । यद्यपि हम व्रजकी नारियाँ (ग्रामीणा) हैं और वे (श्यामसुन्दर) युवतियोंके झुंड (सोलह सहस्र नारियों) के स्वामी हैं तथा राजा हैं (वहाँ हमारी कोई पूछ नहीं है) फिर भी कुमुदिनी तो चन्द्रमाके बढ़नेपर ही प्रेमसे प्रफुल्लित होती है (उनके वैभवकी वृद्धिसे हमें दुःख नहीं, प्रसन्नता ही है) ।

राग सारंग

(३२३)

उघरि आयौ परदेसी कौ नेहु ।
तब जु सबै मिलि कान्ह-कान्ह करि फूलति हीं, अब लेहु ॥

काहे कौं सखि अपनौ सरवस हाथ पराएँ देहु।
उन्ह जु महा ठग मथुरा छाँड़ी, समुद कियौ गेहु॥
का अब करौं, अगिनि तन उपजी, बाढ़्यौ अति संदेहु।
सूरदास बिह्वल भइ गोपी, नैनन बरषत मेहु॥

(एक गोपी कह रही है—सखी !) 'परदेशीका प्रेम (उसके प्रेमकी वास्तविकता) प्रकट हो गया। उस समय जो सब मिलकर 'कन्हैया ! कन्हैया !' कहकर प्रसन्न होती थी, अब उसका फल चखो। सखी ! अपना सर्वस्व दूसरेके हाथ क्यों देती हो ? उन महाठगने अब मथुरा (भी) छोड़ दी और समुद्रमें जाकर घर बना लिया। अब क्या करूँ, शरीरमें अग्नि (संताप) उत्पन्न हो गयी और संदेह अत्यन्त बढ़ गया। सूरदासजी कहते हैं—(वह) गोपी इतना (कहते-कहते) अत्यन्त व्याकुल हो गयी और (उसके) नेत्रोंसे (आँसूकी) वर्षा होने लगी।

राग मलार

(३२४)

माई री ! कैसैं बन हरि कौ ब्रज अवन।
कहियत है, मधुबन तैं, सजनी !
कियौ स्याम कहुँ अनत गवन॥
अगम जु पंथ दूरि दच्छिन दिसि,
तहँ सुनियत, सखि ! सिंधु लवन।
अब हरि हाँ परिवार सहित गए,
मग में मार्यौ कालजवन॥
निकट बसत मतिहीन भई हम,
मिलिहु न आईं सु त्यागि भवन।
सूरदास तरसत मन निसि-दिन,
जदुपति लौ लै जाइ कवन॥

(सूरदासजीके शब्दोमे कोई गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दर-का (अब) व्रजमे आना कैसे बने ? सखी ! कहा जाता है कि श्यामसुन्दर मथुरासे कही अन्यत्र चले गये है। दूर दक्षिण दिशामें, जहाँका मार्ग अगम्य है, सखी ! सुना जाता है कि एक क्षार समुद्र है। अब श्यामसुन्दर वहाँ परिवारके साथ चले गये और (जाते समय) मार्गमे इन्होने काल-यवनको समाप्त कर दिया। जब वे समीप रहते थे, तब हम ऐसी बुद्धिहीन हो गयी कि घर छोडकर उनसे मिल भी नहीं आयी। अब तो मन रात-दिन तरसता (लालायित) रहता है। हमें यदुनाथके पासतक (अब) कौन ले जाय !

राग धनाश्री

(३२५)

सुनियत कहुँ द्वारिका बसाई।
दच्छिन दिसा, तीर सागर के, कंचन कोट, गोमती खाई ॥
पंथ न चलै, सँदेस न आवै, इती दूरि नर कोउ न जाई।
सत जोजन मथुरा तै कहियत, यह सुधि एक पथिक पै पाई ॥
सब व्रज दुखी, नंद-जसुदाहू, इकटक स्याम-राम लौ लाई।
सूरदास-प्रभु के दरसन बिनु, भई बिदित व्रज काम-दुहाई ॥

(सूरदासजीके शब्दोमे एक गोपी कह रही है—सखी !) सुना जाता है कि (श्यामसुन्दरने) कही द्वारिका (नगरी) बसायी है। वह दक्षिण दिशामे समुद्रके किनारे है, सोनेकी उसकी चहारदीवारी है और गोमती नदी उसे चारो ओरसे खाईंकी तरह घेरे हुए है। वहाँका मार्ग चलता नहीं, (इसीसे) कोई संदेश नही आता और न उतनी दूर कोई मनुष्य जाता ही है। कहा जाता है कि वह मथुरासे सौ योजन (चार सौ कोस) दूर है, (मैने) यह समाचार एक यात्रीसे पाया है। सारा व्रज (इस बातसे) दुखी है और श्रीनन्दजी तथा यशोदाजी भी (दुखी है); (सब)

श्याम-बलराममे चित्त लगाये (उन्हें देखनेको) अपलक बने हुए हैं। स्वामीके दर्शनोंके बिना व्रजमे (तो) कामदेवकी विजय-घोषणा हो रही है।

राग केदारो

(३२६)

दधि-सुत ! जात हौ उहिं देस।
द्वारिका हैं स्याम सुन्दर, सकल भुवन नरेस॥
परम सीतल अमृत-दाता, करहु यह उपदेस।
कमलनैन वियोगिनी कौ, कह्यौ इक संदेस॥
नंदनंदन जगत-बंदन, धरे नटवर-भेष।
काज अपनौ सारि, स्वामी रहे जाइ बिदेस॥
भक्तवच्छल बिरद तुम्हरौ, मोहि यह अंदेस।
एक बेर मिलौ कृपा करि, कहै सूर सुदेस॥

(एक गोपी कह रही है—) मेघ ! (क्या) तुम उस देश जा रहे हो, जहाँ श्रीकृष्ण द्वारिकामे सम्पूर्ण लोकोंके नरेश है। तुम तो अत्यन्त शीतल हो, अमृत (के समान जल) के देनेवाले हो। (वहाँ जाकर मोहनको) यह उपदेश करो कि कमललोचन ! वियोगिनी (व्रज गोपियो) ने एक संदेश कहा है—'हे सम्पूर्ण जगत्‌के वन्दनीय श्रीनन्द-नन्दन ! आप श्रेष्ठ नटके समान वेश धारणकर और स्वामी ! अपना काम बनाकर (अब) विदेशमे जाकर रह गये हो। आपका जो भक्त-वत्सलताका सुयश है, वह झूठा न पड़ जाय—मुझे इसीकी चिन्ता है, अतः एक बार कृपा करके मिल जाओ।' यही बात भली प्रकारसे सूरदासजी भी कहते हैं।

राग मलार

(३२७)

बीर बटाऊ, पाती लीजो।
जब तुम्ह जाहु द्वारिका नगरी, हमरे रसाल गुपालहिं दीजो॥
रंगभूमि रमनीक मधुपुरी रजधानी, ब्रज की सुधि कीजो।
छार समुद्र छाँड़ि किन आवत, निरमल जल जमुना कौ पीजो॥
या गोकुल की सकल ग्वालिनीं देति असीस, बहुत जुग जीजो।
सूरदास-प्रभु हमरे कोतै नंद-नंदन के पाइँ परीजो॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—) भैया यात्री ! यह पत्र ले लो, जब तुम द्वारिका नगरीमे जाओ तो (इसे) हमारे रसिक श्रीगोपालको दे देना। (उनसे कहना) रङ्गभूमि (नाटकके रङ्गमञ्च) के समान सजी हुई अत्यन्त मनोहर मथुरा और अपनी (निजी) राजधानी व्रजका स्मरण कीजिये तथा (उस) खारे समुद्रको छोड़कर यहाँ चले क्यों नही आते ? (यहाँ आकर) यमुनाका निर्मल जल पीजिये। इस गोकुलकी सभी गोपियाँ बहुत आशीर्वाद दे रही हैं कि 'तुम युगोंतक जीवित रहो !' (यह कहकर पथिक !) हमारी ओरसे (तुम) हमारे स्वामी श्रीनन्दनन्दनके पैर पड़ना।

(३२८)

स्याम बिनु भई सरद-निसि भारी।
हमैं छाँड़ि प्रभु गए द्वारिका, ब्रज की भूमि बिसारी॥
निरमल जल जमुना कौ छाँड़यौ, सेव समुद-जल खारी।
कहियौ जाइ पथिक जैसै आवैं, चरनन की बलिहारी॥
अबला कहा जोग की जानैं, ब्रजवासिनि जु बिचारी।
सूरदास-प्रभु ! तुम्हरे दरस कौं रटति राधिका प्यारी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी !) 'श्यामसुन्दरके बिना शरद् ऋतुकी रात भारी (कष्टदायिनी) हो गयी । वे स्वामी व्रजभूमि को विस्मृत कर तथा हमें छोडकर द्वारिका चले गये । (उन्होंने) यमुनाका निर्मल जल तो छोड दिया और समुद्र के खारे पानीका सेवन करते हैं । अतः पथिक ! जिस भाँति वे आयें, वैसी ही बात जाकर कहना, हम तो उनके चरणोंपर न्योछावर हैं। (उनसे यह भी कहना—) हम बेचारी व्रजवासिनी अबलाएँ योगकी बातें क्या जानें (जो तुमने उद्धवसे यहाँ योगका संदेश भेजा था) । स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके लिये (तुम्हारी यह) प्रिया राधा क्रन्दन करती रहती है ।'

(३२९)

व्रज पै मँडर करत है काम ।
कहियो, पथिक ! स्याम सौं, राखैं आइ आपनौ धाम ॥
जलद कमान बारि दारू भरि, तड़ित पलीता देत ॥
गरजन अरु तड़पन मनु गोला, पहरक में गढ़ लेत ॥
लेहु-लेहु सब करत बंदि-जन, कोकिल, चातक, मोर ।
दादुर-निकर, करत जो टोवा, पल-पल पै चहुँ ओर ॥
ऊधो मधुप जसूस देखि गयो, टूट्यो धीरज पानि ।
राखिबौ होइ तौ आनि राखिऐ, सूर लोक निज जानि ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमे एक गोपी कह रही है—सखी !) कामदेव (अब तो) व्रजपर मँडराता (चक्कर काटता) रहता है, अतः पथिक ! श्यामसुन्दरसे (जाकर) कहना कि आकर अपने (इस) धामकी रक्षा करें । वह कामदेव मेघरूपी कमान (तोप) मे जलरूपी बारूद भरकर उसमें) बिजलीरूपी पलीता देता है और (उन मेघोंका) गर्जना और तड़कना (ही) मानो गोला है । अब थोडे समयमे ही (वह इस) किलेको (जीत)

लेगा। 'ले लो! ले लो!' (यह पुकार) उसके सब वंदीजन—कोकिल, पपीहे और मयूर कर रहे हैं तथा मेढकोंका समुदाय जो क्षण-क्षणपर चारों ओर शब्द कर रहा है, वह भी मानो वही संकेत-ध्वनि कर रहा है। उद्धव-रूपी भौंरा (तो उसी कामदेवका) जासूस (बनकर प्रथम ही) यहाँ (सब दशा) देख गया कि हमारे हाथसे अब धैर्य छूट गया है। अब यदि वे हमको अपना समझकर (रक्षा करना) चाहें तो आकर रक्षा करें।

(३३०)

ब्रज पै बहुरौ लागे गाजन।
ज्यौं क्यौंहू पति जात बड़े की, मुख न दिखावत लाजन॥
चहुँ-दिसि तैं दल बादर उमड़े, सूनें लागे बाजन।
ब्रज के लोग कान्ह-बल बिनु अब जित-तित लागे भाजन॥
आपुन जाइ द्वारिका छाए, लागे स्याम बिराजन।
सूरदास गोपी क्यौं जीवैं, बिछुरे हरि-से साजन॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी! (ब्रजपर फिर (मेघ) गर्जना करने लगे है। जैसे किसी बड़े (सम्मानित) व्यक्तिका (किसी प्रकार) सम्मान नष्ट हो जाता है तो फिर वह लज्जाके मारे मुख नहीं दिखलाता, इसी प्रकार मोहन ब्रज नहीं आ रहे हैं। चारों ओरसे मेघोंके समूह उमड़ आये हैं और इस सूने ब्रजपर बजने (शब्द करने) लगे है और ब्रजके लोग कन्हैयाके बलके बिना (अब) जहाँ-कहीं (इधर-उधर) भागने लगे हैं। श्यामसुन्दर स्वयं तो द्वारिका जाकर बस गये और वहीं सुशोभित (भी) होने (सुख मनाने) लगे हैं; किंतु श्यामसुन्दर-जैसे प्रियतमका वियोग हो जानेपर (हम) गोपियाँ कैसे जीवित रहें?

राग मारू

(३३१)

अब मोहि निसि देखत डर लागै ।
बार-बार अकुलाइ देह तैं, निकसि-निकसि मन भागै ॥
प्राची दिसा देखि पूरन ससि, ह्वै आयौ तन तातौ ।
मानौ मदन वदन विरहिनि पै, करि लीन्हौ रिस रातौ ॥
भृकुटी कुटिल कलंक चाप मनु, अति रिस सौं सर साँध्यौ ।
चहुँधा किरनि पसारि फाँसि लै, चाहत विरहिनि बाँध्यौ ॥
सुनि सठ सोइ प्रानपति मेरौ, जाकौ जस जग जानै ।
सूर सिंधु बूड़त तैं राख्यौ, ताहू कृतहि न मानै ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—सखी !) अब मुझे रात्रि देखते ही डर लगता है और (इस कारण) मेरा मन बार-बार शरीरसे व्याकुल होकर निकल-निकलकर भागता है । (मेरा) शरीर पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्रमाको (उदित) देखकर (इस भाँति) संतप्त हो उठा है, मानो कामदेवने वियोगिनियोंपर क्रोधकर (अपना मुख) लाल बना लिया है । (उस चन्द्रमाकी) कालिमा ही मानो धनुषके समान टेढ़ी भौंहे है, (जिनपर) अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसने बाण चढ़ा लिया है और चारों ओर किरणोंका फंदा फैलाकर वियोगिनियोंको बाँध लेना चाहता है । अरे दुष्ट (चन्द्र) ! सुन, हमारे प्राणपति वे ही हैं, जिनका सुयश सारा विश्व जानता है । जिसने (इसे) समुद्रमें डूबनेसे बचाया (समुद्रमन्थनके समय निकाला) उस उपकारको भी यह नहीं मानता ।

राग मलार

(३३२)

माधौ! या लगि है जग जीजत ।
जातैं हरि सौं प्रेम पुरातन, बहुरि नयौ करि लीजत ॥

कहँ ह्वाँ तुम्ह जदुनाथ सिंधु-तट, कहँ हम गोकुल-बासी।
वह वियोग, यह मिलन कहाँ अब, काल-चाल-औरासी॥
कहँ रबि-राहु कहाँ यह औसर, बिधि संयोग बनायौ।
उहिं उपकार आज इन्ह नैनन हरि-दरसन सचु पायौ॥
तब अरुअब यह कठिन परम अति, निमिषहुँ पीर न जानी।
सूरदास-प्रभु जानि आपने, सबहिन सौं रुचि मानी॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—) माधव ! इसीलिये हम इस संसारमे जी रही है कि (अपने) मोहनसे (अपने) पुराने प्रेम-को फिरसे नया कर लें (फिर तुम्हारा सानिध्य पायें)। कहाँ तो तुम वहाँ समुद्र-किनारे (द्वारिकामें) यदुकुलके स्वामी (बनकर रहते हो) और कहाँ हम सब गोकुलमे रहनेवाली; कहाँ हमारा वह वियोग और कहाँ यह अब (अकल्पित) मिलन। समयकी गति (ही) चक्रके समान घूमनेवाली है। कहाँ सूर्य और राहु; कहाँ उनके मिलन (ग्रहण) का यह अवसर; किंतु (इस ग्रहणके बहाने हमारे तुमसे मिलनका) यह संयोग विधाताने बना दिया। (विधाताके) उसी (ग्रहणके योग बनाने-रूपी) उपकारके कारण आज इन नेत्रोने श्यामसुन्दरका दर्शन करके शान्ति पायी। तब (वियोगके समय) और अब (मिलनके समय) यह अत्यन्त कठिन (भेदकी) स्थिति है कि उस (अपार) पीड़ाको (यहाँ) एक पलके लिये भी हमने अनुभव नहीं किया। स्वामीने हमे अपना समझकर सबसे (समान) प्रियत्व माना (प्रेम व्यक्त किया)।

राग सारंग

(३३३)

हम तौ इतनें ही सचु पायौ।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, बहुरौ दरस दिखायौ॥

कहा भयौ जो लोग कहत हैं, कान्ह द्वारिका छायौ।
सुनि कैं बिरह-दसा गोकुल की, अति आतुर ह्वै धायौ॥
रजक, धेनु, गज, कंस मारि कैं, कीन्हौ जन कौ भायौ।
महाराज ह्वै मात-पिता मिलि, तऊ न ब्रज बिसरायौ॥
गोपी गोपऽरु नंद चले मिलि, प्रेम-समुद्र बढ़ायौ।
अपने बाल-गुपाल निरखि मुख, नैननि नीर बहायौ॥
जद्यपि हम सकुचे जिय अपने, हरि हित अधिक जनायौ।
वैसैंहिं सूर बहुरि नँदनंदन, घर-घर माखन खायौ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें व्रजवासी लोग कह रहे हैं—) हमने तो इतनेमें ही परम सुख पा लिया कि कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दरने फिरसे हमें दर्शन दिया। क्या हुआ जो लोग कहते हैं कि कन्हैया (अब) द्वारिकामें रहने लगे हैं; किंतु गोकुलकी वियोग (-व्याकुल) दशा सुनकर वे अत्यन्त आतुर (चञ्चल) होकर दौड़ पड़े। (कंसके) धोबी, धेनुकासुर, कुवलयापीड़ हाथी तथा कंसको मारकर उन्होंने अपने भक्तोंका प्रिय कार्य किया, और (यदुकुलके) महाराज हो गये तथा अपने माता-पिता (श्रीदेवकी-वसुदेव) से मिले; फिर भी (उन्होंने) व्रजको विस्मृत नहीं किया। (जब) गोपियाँ, गोप और नन्दजी (सब) मिलकर (मोहनसे मिलने) चले, (तब) उनके मनमें प्रेमका समुद्र उमड़ रहा था और अपने बाल-गोपालके श्रीमुखको देखकर सबके नेत्रोंसे जल बहने लगा। यद्यपि (श्यामसुन्दरके वैभवको देखकर) हम अपने मनमें संकुचित हुए, किंतु श्यामसुन्दरने अधिक प्रेम प्रकट किया। उन श्रीनन्दनन्दनने वैसे ही (पहिलेके समान फिरसे) प्रत्येक घरका मक्खन खाया।

मुद्रक—राय प्रिंटिंग वर्क्स, सी० के० ६३/७९, छोटी पियरी, वाराणसी।